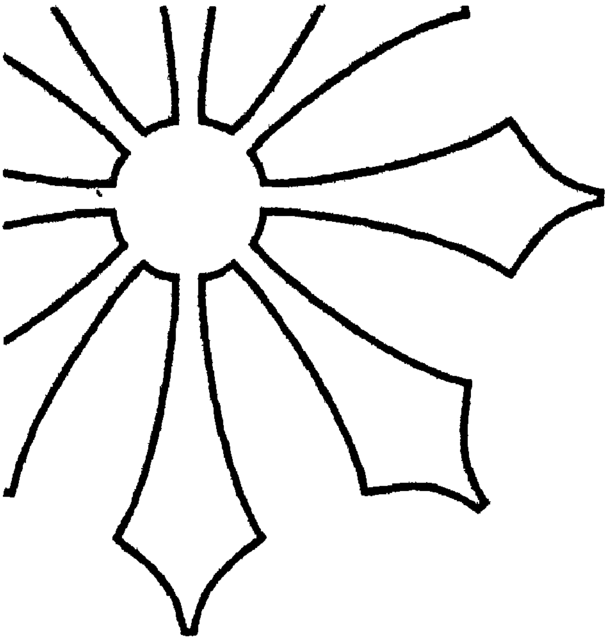
मैनासुन्दरी

भारतीय जैन इतिहास, संस्कृति, मर्यादा और
कर्म से जुड़ी एक राजकुमारी की कहानी

अनुभव प्रकाशन
ग़ाज़ियाबाद • दिल्ली



मैनासुन्दरी

राजबहादुर जैन 'जैनी साहब'

ISBN : 81-89133-56-X

०

प्रकाशक

अनुभव प्रकाशन

ई-28, लाजपत नगर,

साहिबाबाद-201005 गाज़ियाबाद (उ0प्र0)

फोन : 0120-4112210, 2630699, 2635277

09811279368, 09911179368, 09911379368

e-mail . anubhavprakashan@gmail com

०

दिल्ली कार्यालय

बी-73, सूरजमल विहार, दिल्ली-92

०

मूल्य : दो सौ रुपये

प्रथम संस्करण . 2007

मुद्रक : आर. के. ऑफसेट, दिल्ली-32

०

समर्पण

अम्मा-बाबूजी

और

प्रिय अनिता

के लिये

कर्मों की बात

माँ कुन्दनप्रभा और बेटा श्रीपाल चम्पानगरी के परकोटे पर आमने-सामने खड़े थे। बेटा प्यार और माँ कर्त्तव्य के लिये, दोनों ही अड़े हुए थे। कुन्दनप्रभा, श्रीपाल को बहुत चाहती थी पर कर्त्तव्य की बात थी, पूरे राज्य की बात थी, उसे श्रीपाल से अधिक प्रजा प्यारी थी। इसलिए ही उसने कहा था- "श्रीपाल, तुम और तुम्हारा लश्कर कोढ़ी हो गया है। मैं तुम्हें लश्कर सहित अपने पूरे राज्य की सीमा से निष्कासित करती हूँ।" श्रीपाल अपना अपराध जानना चाहता था। उसने कहा था- "माँ तेरा ये कैसा आदेश है?" तब माँ ने कहा- "श्रीपाल यह मेरा नहीं, तेरे कर्मों का आदेश है।"

कर्म प्रधान है। कर्मों के कारण श्रीपाल को मैनासुन्दरी मिली। कोढ़ दूर हुआ तो वो संसार विजेता बनने के लिये अपनी मैनानगरी से निकल पड़ा। धवल सेठ उसका वध करना चाहता था। शंकर लुटेरा धवल सेठ को लूटना चाहता था और धवल सेठ राजकुमारी रैनमन्जूषा का शील भंग करना चाहता था। हाँ, यह सब कर्मों का ताना-बाना है कि सुरसुन्दरी हरिवाहन को छोड़ कर भाग आयी और हरिवाहन उसकी यादों में मर गया, फिर वह करण की माँ बनी और स्वादु राजकुमारी की तरह जयदेव से शादी कर बैठी और निरंजन की माँ बनी, विरक्त हुई तो जैन अर्जिका बन गयी।

हमारे भारतीय साधुओं में जैन मुनियों की अद्वितीय साधना के कारण उनका विशिष्ट स्थान रहा है। जैन धर्म में चक्रवर्ती सम्राटों से लेकर हर धर्म, वर्ग, जाति से ऐसे लोग प्रचारक बन कर आये हैं, जो विरक्त हो गये थे जो सत्य-असत्य, पाप-पुण्य, मोह-माया का भेद जानते थे और अपने उपदेशों से जैन धर्म का ही नहीं पूरे भारतीय समाज का कल्याण चाहते थे। चौबीसवें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी जी की तरह झूठ, चोरी, कुशील, हिंसा और परिग्रह इन पाँच पापों से बचना चाहते थे। देह त्याग चुके श्री सुशील श्वेताम्बर मुनि और दिगम्बर जैन मुनियों के आचार्य विद्यानन्द मुनि चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी के पद् चिन्हित किये रास्तों पर चल कर जैन समाज को ही नहीं पूरे भारतवर्ष और विश्व भर के

अनगिन देशों को सत्य और अंहिसा का रास्ता दिखा रहे हैं। डेढ़ सौ करोड़ की आबादी वाले भारतीय उपमहाद्वीप में अनगिन गरीब, मजबूर बेसहारा लोग हैं, जो पेट भर रोटी नहीं खा पाते। ये लोग समय के आगे झुक कर तिरछे हो गये हैं। इनकी आवाज़ दुनिया के शोर में खो गयी है फिर भी ये लोग श्रम करते हुए धर्म-कर्म के भरोसे नये सूर्योदय की लालसा में आश्वत हुये बैठे हैं।

हिन्दुस्तान के करोड़ों और विदेशों में जा बसे हजारों जैन परिवार चौथे युग की 'मैनासुन्दरी' की कहानी से अनजान नहीं हैं। धर्म, कर्म पर आरूढ हुई बैठी यह जैन राजकुमारी नारियों का आभूषण, पथदर्शक और मसीहा थी। मैनासुन्दरी पर सैकड़ों साल पहले हिसार निवासी न्यामत सिंह जैन और दिल्ली निवासी, किशनलाल बूरा वाले ने अलग-अलग छंदों में नाटक लिखे हैं, पर इन नाटकों में 'मैनासुन्दरी' की पूरी कहानी नहीं है। मैनासुन्दरी की बहन सुरसुन्दरी का एक स्थान पर जिक्र करके बाकी कहानी को छोड़ दिया गया है। मैंने मैनासुन्दरी की इस कहानी से सुरसुन्दरी, उसके बेटे करन, निरन्जन को भी जोड़ा है। समुन्द्री लुटेरे शंकर को भी इस कहानी में शरीक किया है, जो बाद में मुनियों के आचार्य बने थे।

कहा जाता है- आज नारी युग है और नारियों पर पुस्तकें लिखने और सीरियल बनाने वालों की भी कमी नहीं है। एकता कपूर जैसी कुछ नारियाँ भारतीय नारियों की प्रतिष्ठा का मलियामेट करने में लगी हैं। नारियों को हाशिये पर रख कर हमारे वालीवुड और टीवी साम्राज्य ने नारियों को अदना बौना बना दिया है, जो बुरी बात है। लगता है हमारे देशवासी जो आज भी पचासों भारतीय देवियों की पूजा करके अपने को धन्य समझते हैं, नारियों के शौर्य, पराक्रम, बलिदान और मर्यादा को भुला बैठे हैं और नारियों के वजूद का उन्हें एहसास नहीं रहा, जबकि नारियों का इतिहास तो बहुत पुराना है और मानव सृष्टि से जुड़ा है। 'मैनासुन्दरी' कहानी भी भारतीय नारियों के इतिहास की एक कड़ी है, जो आज भी नारियों के लिये कर्म, धर्म, प्रेरणा, प्रेम, आस्था, मर्यादा और विश्वास का एक खूबसूरत आइना है।

'मैनासुन्दरी' के प्रकाशन में प्रख्यात लेखक डॉ0 श्याम निर्मम का पर्याप्त सहयोग मिला, उसके लिए मैं हृदय से उनका आभारी हूँ। साथ ही 'अनुभव प्रकाशन' का भी आभार व्यक्त करता हूँ कि मेरे इस उपन्यास को इतने सुन्दर और आकर्षक रूप में आप सब तक पहुँचाने का उसने दायित्व निर्वहन किया।

आइये, अब कहानी पढ़ना शुरू करें।

आपका अपना ही

राजबहादुर जैन 'जैनी साहब'

I

सतयुग के चौथे काल में भारतवर्ष में एक बहुत बड़ा शहर था जिसका नाम चम्पानगरी था। वहाँ के राजा अरीदमन थे। उनकी पटरानी का नाम कुन्दनप्रभा और पुत्र का नाम श्रीपाल था। वे एक न्यायप्रिय, कुशल और बहादुर शासक के रूप में जाने जाते थे। उनकी चम्पानगरी में खूबसूरत भवनों की कतारें थी। राजमार्ग के अंतिम सिरे पर राज प्रसाद थे। राजा अरीदमन का राजमहल, कोषागृह, न्याय कक्ष, जहाँ राजा बैठ कर न्याय करते थे। सभी कुछ तो था। राजा ने अपने राज्य में न्याय-प्रणाली की व्यवस्था अच्छी प्रकार कर रखी थी। उन्होंने राज्य को आठ हिस्सों में बाँटा हुआ था, जिनके नाम क्रमशः दरसरूल, अयोजर, बेमना, सिंहदार, बाजला, नेमा, अमध और राजधानी चम्पानगरी था। राजा ने प्रत्येक शहर में एक-एक न्यायकक्ष बनवा कर उनमें सुयोग्य न्यायधीशों की नियुक्ति की हुई थी। ये न्यायधीश अपने शहरों के नागरिकों की समस्याओं को सुन कर अपना निर्णय दिया करते थे। शहरों में से जनता की ओर से उनके प्रतिनिधि भी चुने जाते, जो राजधानी चम्पानगरी में राजा के मंत्री और सभासदों के साथ बैठते थे। राजा की सेना की स्थिति भी सुदृढ़ थी, उनकी सेना में बलिष्ठ और युवा लोग थे, जिन्हें प्रतियोगिता के आधार पर चुना जाता था।

राजधानी चम्पानगरी और दूसरे शहरों की सुरक्षा के लिए राज्य की सरहदों पर एक प्राचीन दीवार थी और आने-जाने के लिए उत्तर और दक्षिण में दो मजबूत द्वार थे। पड़ोसी राज्यों के हमले से बचने के लिए दोनों द्वारों को बड़ी मजबूती से बनाया गया था। राजा के सैनिक उन पर तैनात रहा करते। चम्पानगरी का पूरा राज्य तो मानों एक किले की सुदृढ़ सुरक्षा के घेरे में था। राज्य के चारों ओर की दीवारों का निर्माण राजा अरीदमन के पूर्वजों ने किया था। शायद विदेशी हमलों और पड़ोसी राजाओं के नित्य नये-नये आक्रमणों को रोकने के लिए यही एक अच्छा

तरीका रहा होगा। ऊँची-ऊँची दीवारों में खतरे के घंटे बँधे हुए थे। दीवारों की बुर्जिओं पर सैनिक खड़े रहते। जिनकी चौकन्नी आँखें दूर-दूर तक जंगलों में खतरे को सूँघती रहती। सभी नगरों के लिए कुछ छोटी बस्तियाँ भी थीं, जिनमें श्रमिक और किसान रहते थे। राजा महीने में एक दो बार इन सब लोगों से मिलने जाया करता और उनके दुःख दूर करने के लिए प्रयास किया करता।

चम्पानगरी में सभी वर्ग के क्षत्री, ब्राह्मण, शूद्र और वैश्य लोग थे। इन लोगों का अपना-अपना धर्म था। किसी भी धर्म पर राजा की ओर से कोई बंदिश नही थी। राजा हर धर्म के लोगों को प्यार किया करता था। अधिकांश हिन्दू, खासकर वैश्य लोग जैन धर्म के अनुयायी थे। राजा खुद भी जैन धर्म का अनुयायी था। उसने नगर में बड़े-बड़े जैन मंदिर बनवाये थे। राजा के पिता और दादा के जमाने के भी कई जैन मंदिर बहुत पुराने थे, जिनकी दीवारों की राजा मरम्मत करवा रहा था। राज्य में जैन मंदिरों की गिनती कई सहस्त्र थी, जिससे अनुमान लगाया जाता था कि यह राज्य पहले से ही जैन धर्म का समर्थक रहा है।

राजधानी चम्पानगरी में जैन मुनियों के सिंगाड़े (दल) देखे जाते। इन वस्त्र विहीन मुनियों की साधना अद्वितीय थी। शरद और ग्रीष्म ऋतु में नग्न रहकर तपस्या करना इतना सम्भव नही था जैसा कि मुनियों को करते हुए देखा जाता। मुनियों के प्रताप से राज्यों में न सूखा पड़ता था और ना ही बाढ़ आती थी। चारों ओर खुशियाँ ही खुशियाँ थी। प्रसन्नचित्त राजा अपने राज्य का वैभव देख कर फूला न समाता था।

राजा का एक छोटा भाई भी था जो राजा की तरह उदार प्रवृत्ति का न होकर प्रजा पर राज्य की ओर से करों की छूट और लगान न वसूल करने का विरोधी था, पर भाई के आगे वह कुछ नहीं कर पाता, बस मौके की तलाश में रहता कि वह कब और कैसे चम्पानगरी का राज्य हथिया ले। कुशाग्र बुद्धिमान मंत्री और सभासद उसकी कुदृष्टि से राजा अरीदमन को परिचित कराते रहते, पर राजा अपने भाई की नादानी समझ कर इन बातों को टाल जाया करता।

समय के पहिये लुढ़क रहे थे और राजा अरीदमन अस्वस्थ रहने लगे थे।

एक रोज जब अंधकार अपने बेरहम बुरूश से पृथ्वी को काला

कर रहा था, राजा अरीदमन अपने शयन कक्ष में शैय्या पर लेटे थे। उनके पास उनकी पटरानी कुन्दनप्रभा और युवराज श्रीपाल बैठे थे। वे आज बहुत चिंतित थे, उनके लाल सुर्ख रहने वाले चेहरे पर आज उदासी थी। सुर्ख आकर्षक आँखों में पानी के नन्हें-नन्हें दीपक जल रहे थे।

"आप रो रहे है प्राणनाथ।" कुन्दनप्रभा ने कहा।

"हाँ प्रिये, लगता है अन्तिम समय आ गया है।"

"नही प्राणनाथ ऐसा मत कहो" कुन्दनप्रभा का स्वर काँपने लगा। युवराज अभी अबोध है। "पिताश्री" कहता हुआ श्रीपाल भी लपक कर राजा के चरणों मे आ बैठा। उसकी आँखों से टप-टप-टप आँसू गिरने लगे।

"युवराज रो रहे हो?" राजा ने कहा- "तुम तो बहादुर बाप के बहादुर बेटे हो।"

"पिताजी आपको रोगग्रस्त देखता हूँ तो आँखें बहने लगती है। राजवैद्य भी कह रहे थे, आप कब स्वस्थ होंगे, यह अब निश्चिंत नही है।"

"युवराज प्रजा की देखभाल तुम करते हो। प्रजा तुम्हें प्यार करती है। तुम्हें अपना राजा मानती है, क्या यह कम है? राज-काज चलाने के लिए तुम दक्ष हो। तुम्हारी सलाहकार तुम्हारी माँ है, वह भी कम अनुभवी नही।" राजा के कहते-कहते फिर आँखों से मोती लुढ़क आये।

"पिताश्री" युवराज रोने लगा आप भी कैसी बातें करते है? क्या कभी मै आपके बिना रहा हूँ। "नही, मै आपके बिना नही रह सकता, क्या आप चाचा जी को नही जानते, जो आवारों की तरह घोड़े पर बैठे हुए पूरे दिन इधर-उधर दौड़ते रहते है।"

"मुझे सब पता है। युवराज यह सब हमारे कर्मों का फल है। मैने पिछले जन्म मे जरूरी कोई बुरा काम किया होगा, जो मुझे बीरदमन जैसा भाई मिला। अच्छे कर्मों से तुम्हारी माँ मिली और तुम जैसा पुत्र। मनुष्यों की तकदीर लिखने वाले कर्म होते है। हम सब तो कठपुतली है। कर्मों के हाथों में हमारे जीवन की बागडोर है। हमें कर्म नचाते रहते है और हम कुछ नही कर पाते। हाँ, कुछ नही कर पाते। हम जो कर्म करके आये है, उसे तो भुगतना होगा। युवराज, तुम हमेशा कर्मों को याद रखना। सुख के ऐश्वर्य में दुःख को न भूल जाना। बुरे वक्त में

जब तुम निराश और हताश हो जाओ तो कर्मों को जरूर याद कर लेना। कर्म कम भी हो जाते है, अगर धर्म में आस्था है। जैन ग्रन्थों में लिखा है कि धर्म करने से बुरे कर्मों का नाश होता है और बुरे कर्मों के अंत पर एक नया सूर्योदय होता है। एक नयी प्रभात आती है। पुण्य का सूर्य चमकता है और भाग्य की चमकीली किरणें मनुष्य के जीवन में प्रकाश फैला देती है। जानते हो यह सब कब होगा?" राजा ने युवराज से पूछा।

युवराज की दृष्टि उठी, राजा ने कहा- "जैन धर्म मे लिखा है, जियो और जीने दो। अहिंसा परमो धर्म, प्रिय पुत्र यह झूठ नही है। एक ऐसा सत्य है, जिससे हमें परिचित होना है। जैसे हम जी रहे है, इसी तरह हर प्राणी को जीने का अधिकार है। हमें यह याद रखना है कि हम अपने से छोटों को, अबोधो को, दुर्बलों को और साधनहीनो को जिंदा रहने के लिए उनकी मदद करें। हमें अज्ञात लोगों के ह्रदय में ज्ञान के स्रोत पैदा करने चाहिए। हमें किसी का दिल दुखा कर उसकी सम्पत्ति लूट लेने का कोई अधिकार नही है। हमारे ह्रदय मे अगर दया नही है, तो हम एक पाषाण जैसे है। जिसका स्थान पहाड़ियों और खारे समुद्र में होता है और ऐसे पाषाणों से अच्छे लोग बच कर चला करते है।"

"पिताश्री" कहते रहो ना पिताश्री। आज आपने मेरे मन के अँधेरे में ज्ञान का प्रकाश फैला दिया है।

"नही युवराज, अर्द्धरात्रि का समय है। जाओ विश्राम करो, शुभरात्रि।" राजा ने कहा।

"शुभरात्रि," युवराज बोले।

रानी ने मुरझाते हुए राजा का चेहरा देखा। शुभरात्रि और वह यह कह कर रोती सुबकती अपने शयनकक्ष की ओर चली गई।

))X(2)X((

आकाश में सूर्योदय हो रहा था। चम्पानगरी राजधानी का श्वेत पीताम्बर तिरंगा झुका हुआ था। राजा अरीदमन स्वर्ग की यात्रा पर चले गये थे।

पटरानी कुन्दनप्रभा फर्श पर सर दे-दे कर मार रही थी और रो रही थी।

"माँ ऐसा मत करो माँ।" युवराज श्रीपाल ने रोती हुई पटरानी माँ को सांत्वना दी। "ऐसे कैसे होगा, देखो माँ तुम्हारे आगे कितने बरसाती बादल खड़े है।"

कुन्दनप्रभा की दृष्टि उठी, उसने देखा। सफेद परिधान में लिपटी राजधानी की हजारों महिलायें खड़ी है, जो भरी हुई आँखों से कुन्दनप्रभा को ताक रही है।

"भैया-भैया" कहता और बिलखता हुआ बीरदमन, राजा के शव पर गिर पड़ा।

"इसे रोको," कुन्दनप्रभा ने कहा। "क्या यह इनका आघात सह सकेगा?"

अर्थी बाँधी जा रही थी। सभासद, मंत्री और क्या नर-नारी सभी रोने लगे। कुन्दनप्रभा ने देखा, युवराज श्रीपाल भी रो रोकर पछाड़ खा रहे थे।

"पिताश्री उठो पिताश्री" युवराज पागलों की तरह चीखने चिल्लाने लगे। "पिताश्री को नही जाने दूँगा।"

"भैया, उठो भैया देखो मै अब जो आप कहेंगे, वही करूँगा।" बीरदमन बोला- "भैया मै आपके रास्ते पर चला करूँगा। उठो भैया, देखो जीते जी मै तुम्हें अर्थी पर नही जाने दूँगा।"

"इन्हें रोको" कुंदनप्रभा कह रही थी और रो रही थी।

"अर्थी उठी और चलने को हुई तो युवराज रास्ता रोक कर खड़े हो गये।"

"युवराज, रास्ता छोड़ दो।" मंत्री ने कहा।

"मंत्री दादा, नही मै अपने पिताश्री को नही जाने दूँगा।"

"युवराज, यहाँ कोई सदा के लिए रहने नहीं आता। यह शहर, यह संसार तो एक मुसाफिर खाना है। कर्मानुसार लोग आते है, ठहरते है और चले जाते है। यहाँ से सबको जाना है, मुझे भी जाना है। हम सब यहाँ से जाने वाले है। बस हमें कर्म के बुलावे की प्रतीक्षा है।" मंत्री ने ढाढस बँधाया।

कर्म, हाँ कर्म ही तो प्रधान है उसे याद है। पिताश्री ने कहा था मनुष्यों की तकदीर कर्म लिखते है। हम तो कर्मों के हाथों में कठपुतली जैसे है। हमें कर्म नचाते है, हम चाह कर भी कुछ नहीं कर पाते। हाँ, हम कुछ नही कर पाते।

युवराज रास्ते से हट गये। बीरदमन ने लपक कर अर्थी को रोकना चाहा। युवराज ने कहा- "चाचा जी कर्मों से हम हार गये है, पिताश्री जा चुके है। हाँ, पिताश्री जा चुके है। शरीर तो एक छलावा है, इन्हें मत रोको, जाने दो।"

"बेटा" कुन्दनप्रभा ने दर्द से परेशान हो श्रीपाल को पुकारा।

"माँ, मेरी प्यारी माँ" और रोते बिलखते युवराज को कुन्दनप्रभा ने अपनी बाहों में भर लिया।

))X(3)X((

महाराजा के क्रिया-कर्म और श्राद्ध के बाद श्रीपाल विरक्त-सा हो गया। वह एक समय भोजन करता और खाली समय में जैन ग्रन्थों में खोया रहता। कभी-कभी वह मुनियों के दर्शनार्थ भी अपने राज्य से बाहर तीर्थ स्थानों पर चला जाता। युवराज को जीवन से विरक्त होते हुए देख कर कुन्दनप्रभा चिन्तित हो जाती। वह सोचा करती कि अगर श्रीपाल ने संन्यास ले लिया, तो स्वर्गवासी महाराजा का सपना कैसे पूरा होगा? वे स्वर्ग में बैठे क्या अपने राज्य की अव्यवस्था को देख कर दु:खी नहीं होंगे। वंश चलाने के लिए श्रीपाल को बदलना होगा। उसके मन में जीने की चाह पैदा करनी होगी।

उन्होंने स्वर्गीय महाराजा के अतरंग मित्र महाराजा पहुपाल को एक पत्र लिखा, जो इस प्रकार था-

भैया,

महाराजा के स्वर्गवासी हो जाने से युवराज संन्यासियों जैसा जीवन जी रहे है। एक समय भोजन करते है और पूरे दिन जैन ग्रन्थों में खोये रहते है। वे कभी भी मुझसे या मंत्री सभासदों से राज-काज की बात नहीं करते। लगता है उनका दिल राज्य की ओर से विरक्त हो गया है। महाराजा के छोटे भाई बीरदमन, महाराजा के स्वर्गवासी होने पर कुछ बदले तो है, पर अपनी रंगीनियों को नही छोड़ पाये। प्रजा उन्हें पसन्द नहीं करती और मुझ पर राज्य-काज सँभाले नहीं सँभलता।

महाराजा के समय में ही युवराज ने राज्य को चलाने का तरीका सीख लिया था। काश वे अपनी प्रजा के हित के लिए राजमुकुट बाँध कर सिंहासन पर बैठ गये होते। सिंहासन खाली रहने से मंत्री और

सभासद मनमानी करने लगेंगे और फिर प्रजा बगावत कर देगी। अगर ऐसा हुआ तो मुझे आत्महत्या करनी होगी, जो धर्मानुकूल नही होगा।

भैया तुमने तो सदा मुझे बहन माना है। महाराजा के श्राद्ध पर भी तुमने मुझसे कहा था कि दीदी मै तुम्हारा सौभाग्य तो नही लौटा सकता, पर अपना मुकुट, राज्य, हीरे पन्ने सब कुछ अपनी दीदी पर वार सकता हूँ। अब इस समय तुम्हारी दीदी अपने स्वर्गीय पति के शोक को भुला कर प्रजा के दायित्वों के प्रति चिन्तित है। युवराज के प्रति चिन्तित है। अब तुम ही कहो, तुम्हारी दीदी क्या करे?

क्या युवराज के मन को बदलने की योजना बना सकते हो, भैया इस बारे मे लिखना नही भूलियेगा।

तुम्हारी दीदी

कुन्दनप्रभा

कुन्दनप्रभा ने चिट्ठी बंद करके उस पर मालवा देश के उज्जैनी राज्य का पता लिखा और शाही मोहर लगा दी। अपनी दासी सुनयना से उन्होंने अपने विश्वासपात्र डाकिये सोनू को बुला लाने को कहा। सोनू भी आकर महारानी के पैरों पर बैठ गया। महारानी उसे दुलारती रही और समझाती भी रही।

))X(4)X((

संदेश देकर सोनू लौट आया था, वह अकेला नही आया था, उसके साथ राजा पहुपाल का डाकिया चितकबरा शहबाज भी था। वह सोनू की तरह फुर्तीला और लड़ाकू था। कुन्दनप्रभा को उसने कोरनिश (प्रणाम) करके महाराजा पहुपाल का संदेश दे दिया, जिसमें लिखा था–

दीदी,

महाराजा का ग़म क्या तुम्हारा अपना ग़म है? मै भी तो उस ग़म को लिये हुए बैठा हूँ। काश, महाराजा की वापसी हो पाती, पर कर्म बुरे होते है। अच्छे लोगों को काल का ग्रास बनाना इन्हें खूब आता है। शायद स्वर्ग में भी अच्छे लोगों की जरूरत रहती होगी, तभी तो महाराजा को अधूरी जीवन-यात्रा पर जाना पड़ा। युवराज श्रीपाल अगर आपका पुत्र है, तो मेरा भी धर्मपुत्र है। मै नही चाहता वह भरी जवानी

में संन्यासी बने। युवा उम्र में संन्यासी सिर्फ वे ही बनते है, जो अनाथ होते है, या गरीबी की मार से विरक्त हो जाते है। अभी उसने सांसारिक सुखों का ऐश्वर्य ही कहाँ देखा है? सांसारिक सुखों को देखेगा तो जीने की चाह करने लगेगा। जीने की इच्छा रखने वाले संसार से मुक्त नही हो पाते, यह तो तुम्हें भी पता है।

राजा वीरदमन रंगीनियों में डूबे है, पढ़कर दुःख होता है। पता नही कोटिभट कुल की मान-मर्यादाओं को डुबो कर उन्हें क्या मिलेगा? क्या वह भाई की असमय हुई मृत्यु को भूल गये? काश, आदिनाथ भगवान उन्हें सद्‌बुद्धि दें।

मैंने एक बात सोची है। जो न कभी महाराजा से कह पाया था और न ही तुमसे। सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी से तो तुम परिचित हो। दोनों को मैंने बड़े लाड़ प्यार से पाला है। अगर श्रीपाल उनमें से किसी एक को पसन्द कर ले तो हम दोनों धर्म भाई बहन (मैं और तुम) एक नया रिश्ता कायम कर लेंगे। दोस्ती अश्नाई में बदल कर हम अपना भविष्य निश्चिंत कर सकते है। ऐसा होगा, तो तुम श्रीपाल की ओर से भी फिक्रमंद नही रहोगी। किसी तरह श्रीपाल को उज्जैनी भेजने का बंदोबस्त कर दो और बाकी क्या करना है, यह तुम मुझ पर छोड़ दो।

तुम्हारा धर्म भाई

पहुपाल

कुन्दनप्रभा भरी हुई आँखों से पत्र को पढ़ती रही।

स्वर्गीय महाराजा भी तो राजा पहुपाल की बेटी को बहू बना कर लाना चाहते थे। काश, आज महाराजा राजा पहुपाल का पत्र अपने हाथों में लेकर पढ़ते तो कितने खुश होते। पूरे शहर में रोशनी कराते, मिठाईयाँ बँटवाते, वह क्या कुछ नही करते, कुन्दनप्रभा सोचती रही थी और रोती रही थी।

आज उसे महाराजा की बहुत याद आ रही थी। पिछली बातें, प्यार की बातें, रूठने-मनाने तकरार की बातें, बिछोह की बातें, एक-एक घटना मानो आँखों के आगे आ ठहरी थी। जिस दिन महाराजा स्वर्गवासी हुए थे, राजघराने की औरतों ने उसके हाथों से रंग-बिरंगी चूड़ियाँ उतार दी थी। उसने चूड़ियों के बाद स्वर्ण आभूषणों को भी उतार फेंका था और खूबसूरत जरी कोटे के लाल लहंगे चुनरी की जगह सफेद साड़ी पहन ली थी।

अब बाकी क्या है? उसका तो सर्वस्व लुट गया। राजप्रसाद, रंगमहल, सोने का सिंहासन, चम्पानगरी का विस्तृत साम्राज्य, चम्पानगरी का खजाना, तेज दौड़ने वाले अरबी घोड़े, उसके लिए सब बेकार है। जब उसका सुहाग ही नहीं रहा, तो वह इस इकट्ठे हुए ऐश्वर्य को कैसे भोगे, उसकी चाहत का दीपक तो बुझ गया है। एक अँधेरी रात ने उसके जीवन में सदा के लिए अँधेरा कर दिया है। वह तो पति के साथ सती होना चाहती थी, पर युवराज की ममता ने उसे ऐसा करने नहीं दिया और भाग्य पर विहँसती कुन्दनप्रभा आहट लेने लगी। श्रीपाल के चल कर आने की पद्चाप उसके कानों में निरन्तर सुनायी पड़ रही थी। क्या वह अपने बहादुर बेटे के सामने रोक उसे उदास करेगी, नहीं, उसने स्वयं से कहा और आँखें पोंछने लगी।

5

माँ, माँ युवराज श्रीपाल ने दूर से ही कुन्दनप्रभा को आवाज दी। उसकी आवाज को सुन कर लगता था मानो युवराज अभी अबोध हो और माँ का संरक्षण पाने को मचल रहा हो।

बेटे को बाँहों में भर लेने के लिए कुन्दनप्रभा पुत्र की ओर दौड़ी पर उसे अधिक नहीं दौड़ना पड़ा, "युवराज क्या कोई नई बात है?" कुन्दनप्रभा ने नजदीक आकर पूछा।

"हाँ, माँ, कर्म के बारे में जानना चाहता हूँ।" युवराज ने कहा।

"कर्म के बारे में क्या जानना चाहते हो", कुन्दनप्रभा हँसी।

"मुझे क्या कर्म करना चाहिए?"

"क्या तुमने जैन ग्रन्थों में नहीं पढ़ा?"

"पढ़ा है।"

"जैन गुरूओं से सलाह नहीं ली?"

"वह भी ली है।"

"फिर मुझे गुरू और ग्रन्थों के बीच में क्यों लाना चाहते हो?" कुन्दनप्रभा हँसी।

"नहीं माँ, तुम ग्रन्थ और गुरू दोनों से बड़ी हो। माँ तुम आदरणीय और पूज्यनीय होने के साथ-साथ मेरी संरक्षक भी हो। मैं जानता हूँ, तुम मेरा सही मार्गदर्शन करोगी। बोलो माँ, मुझे क्या करना

चाहिए?''

''चम्पानगरी के खाली सिंहासन पर महाराजा का स्वर्ण मुकुट बाँध कर बैठो।'' कुन्दनप्रभा ने अपने मन की बात कही।

''माँ, सोना तो मिथ्या है। ग्रन्थ और गुरू दोनों ने सोने को छूने से मना किया है।''

''युवराज ऐसी बातें ना करो। क्या अपने पिताश्री के राज सिंहासन को खाली रहने दोगे?''

''माँ राज्य करने के लिए युद्ध किये जाते है और युद्ध में हजारों सैनिक मरते है। ग्रन्थ और गुरू ने हत्या करने के लिए साफ मना किया है।''

''हूँ'', कुन्दनप्रभा ने कहा और अपने बेटे को (जो दार्शनिक लग रहा था) जी भर कर देखा। वह तो ज्ञान का अपार भंडार लिये खड़ा था।

''चुप क्यों हो गई हो माँ?'' युवराज ने कहा- ''मुझे आज्ञा दो। मै कुछ ऐसे कर्म करूँ, जिससे आपको अपार शांति मिले और मेरे कोटिभट कुल की रोशनी समस्त संसार में सूर्य की किरणों की तरह फैले। माँ, श्रीपाल तो तेरा सूर्य है।''

''बेटा, कर्म करने के बारे में अभी मत सोचो। अभी मै तुम्हें कुछ सलाह नही दे पाऊँगी। तुम्हारे पिता की यादों को मै भुला नहीं पा रही हूँ। सुनो, तुम्हे मेरी एक बात माननी होगी।''

''कह कर तो देखों माँ, तेरा बेटा कोटीभट है। करोड़ों पुरुषों का पौरूष रखने वाला एक महाबली, जिसे देख कर मौत भी सहम जाती है।'' श्रीपाल ने हँस कर कहा।

कुन्दनप्रभा हँसी और बोली, ''जानती हूँ। जाओ युवराजों जैसी सुन्दर पोशाक पहन लो और मालवा देश जाने की तैयारी करो।''

''मालवा देश क्यों भेज रही हो, माँ?'' श्रीपाल कुछ शंकित हुआ।

''मालवा देश में एक उज्जैनी नगर है, वहाँ के राजा पहुपाल तुम्हारे पिता के अंतरंग मित्रों में से है। उन्होंने तुम्हे बुलाया है।''

''पर माँ, वहाँ जाने से मेरी साधना में बाधा पड़ेगी।''

''सोच लो, नही जाओगे तो तुम मातृआज्ञा का उल्लंघन करोगे और मुझे यह भी पता है कि तुम कभी माँ का दिल नही तोड़ोगे।''

"माँ, तुमने यह कैसे मान लिया कि मैं तुम्हारा आदेश नहीं मानूँगा। लो मै अभी सफर की तैयारी किये लेता हूँ। साधना करना और तपस्वी बनना तो लौट कर देखूँगा।" श्रीपाल ने कहा और युवराज की पोशाक पहन ली। दासियों ने श्रीपाल के सफर की तैयारियाँ शुरू कर दीं।

बेटे के सफर पर जाने से पहले, माँ कुन्दनप्रभा ने स्वर्ण थाल में घृत के दीपक जला कर बेटे की आरती उतारी और बेटे का मुँह मीठा कराया। कुन्दनप्रभा को आज युवराज अत्यंत ही रूपवान, कामदेव-सा लगा। किसी दुष्ट औरत की उसको नज़र न लगे, इसलिए उसने युवराज के माथे पर मामूली-सा काला टीका भी लगा दिया।

6

अपने सात सौ दक्ष घुड़सवारों के साथ श्रीपाल मालवा देश की ओर बढ़ा। वह, जिधर से गुजरता, युवा तरुणियाँ उसे देख कर गश खा गिर जातीं। दूसरे देशों की औरतें उसे सपनों का जादूगर कहने लगीं। रास्ते में बहुत से राजाओं ने उससे प्रार्थना की कि वह उनकी पुत्रियों को अंगीकार (स्वीकार) कर ले पर श्रीपाल ने यह कह कर कि वह मालवा से लौट कर जैन मुनि बनेगा, सबको निराश कर दिया।

श्रीपाल का काफिला चलता रहा और मालवा की ओर बढ़ता रहा। वह युवा नारियों में चर्चित होता रहा। हजारों सुन्दर युवा नारियाँ उसको रोक-रोक कर पूछा करती थी कि वह कब लौटेगा?

"प्रतीक्षा करो", श्रीपाल कह कर हँस देता। उसके साथ चलते हुए सात सौ वीर (सैनिक) भी हँस देते।

उज्जैनी नगर नजदीक था। सूर्यास्त हो रहा था। अंधकार की लम्बी-लम्बी चादरें पृथ्वी पर बिछती आ रही थी। नगर में रात में प्रवेश करना श्रीपाल को अच्छा नहीं लग रहा था, तब रात काटने के लिए उसने जंगल में दृष्टि डाली। उसने दूर सामने की ओर एक आश्रम देखा। श्रीपाल और उसके सात सौ सैनिक आश्रम की ओर बढ़े। आश्रम में जैन मुनि समाधि लगाये हुए बैठे थे। श्रीपाल और उसके साथियों ने दूर से ही उन्हें कोरनिश (प्रणाम) किया और वृक्षों की ओर चले आये। श्रीपाल ने सैनिकों से वृक्षों के मुलायम पत्तों का एक लम्बा बिस्तर लगवा कर

कहा, "आओ अब तुम सब भी विश्राम कर लो।"

सैनिक श्रीपाल को पहचानते है। वे जानते है कि युवराज, चम्पा नगरी के भावी सम्राट कम और उनके दोस्त ज्यादा है। वे प्यार के अथाह समुद्र है। उन्हें दूसरों को अपना बना कर प्यार करना आता है। ऐसे मित्र क्या ढूँढने से मिलेंगे, शायद नहीं, वे यही सोचा करते थे।

))X(7)X((

सूर्योदय हो रहा था। श्रीपाल अपने सात सौ सैनिकों के साथ मुनियों के दर्शनार्थ आश्रम में गया और मुनियों के चरणों को छूकर जमीन पर पालथी मार कर बैठ गया। उसके पीछे उसके सैनिकों की कतारें थी।

"राजपुत्र तुम कोटिभट वंश के हो।" श्री मुनि जी बोले, "इस संसार पर तुम्हारा राज्य होगा।"

"श्री मुनि जी मै तो जैन मुनि बनना चाहता हूँ।"

"नहीं, अभी मुनि बनने का योग नहीं है।"

"पर मेरी साधना का क्या होगा? राज्य और गृहस्थ दोनों ही महाबलि शत्रु है। वे मेरा सर्वनाश कर डालेंगे।"

"प्रिय पुत्र, तुम मोक्षगामी जीव हो। इस भव से ही तुम्हें मोक्ष मिलेगा। पर पहले तुम्हें गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना होगा। पृथ्वी से अत्याचारी राजाओं का सहार करना होगा। अपने बाहुबल और कर्मों से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करनी होगी।"

"पर श्री मुनि जी, युद्ध करने से हत्यायें होती है।"

"कर्म प्रधान है श्रीपाल, तुम सिर्फ कर्त्ता हो। अगर धर्म के लिए लड़ोगे तो कर्मों के बंधन नहीं बनेंगे।"

"कर्म, पिताश्री भी तो कर्मों की बात किया करते थे। अवध ज्ञानी श्री मुनि जी सब जानते है। उसका नाम, कोटिभट वंश, भला इनसे क्या छुपा है? मै जब मालवा की इस उज्जैनी नगरी से लौटूँगा तो माँ से साफ कह दूँगा कि माँ राजमुकुट उठा लाओ और मेरे सर पर रख दो, मै चम्पानगरी का सम्राट बनूँगा।"

"चम्पानगरी के भावी सम्राट, क्या तुम्हारे मन में सम्राट बनने की चाह नहीं है?"

"श्री मुनि जी," बुदबुदाता हुआ श्रीपाल श्री मुनि जी के चरणों में नतमस्तक हो गया।

"चम्पानगरी पर तुम अधिक दिन शासन नहीं कर पाओगे। खुद उसका त्याग करके देश छोड़ोगे या राजमाता तुम्हें राज्य की सीमा से निष्कासित कर देगी।"

"मै ऐसा नही होने दूँगा श्री मुनि जी, राज करने का इच्छुक तो मै अभी भी नहीं हूँ।"

"अज्ञानी मत बनो श्रीपाल, मोह-माया तुम्हारे पीछे खड़ी है। जिसको तुम देख नही पा रहे हो। तुम सिर्फ इच्छाओं को दबाये हुए बैठे हो, जो कभी भी उभर कर तुम्हें हैरान कर देगी। इच्छायें मरती नहीं दब जाया करती हैं। दबी हुई इच्छाओं को तूफान मत बनने दो श्रीपाल, लो अपने मन का दर्पण देख लो।"

"दर्पण" श्रीपाल ने दोहराया, वह आश्चर्य से श्री मुनि को देख रहा था, क्या उसकी अभी तक की हुई साधना अधूरी है?

"मैनासुन्दरी," श्री मुनि जी ने आवाज दी।

"जी, श्री मुनि जी" एक अप्सरा-सी कन्या ने दूर से ही श्री मुनि जी की आवाज पर कहा, "आती हूँ।" श्रीपाल इस परियों की राजकुमारी को अपलक निहारता रहा। वह जैसे-जैसे पास आती रही, श्रीपाल को महसूस होता रहा, उसे कुछ हो गया है। वह उसकी ओर एक टक देख रहा था।

"क्या आज्ञा है श्री मुनि जी?" मैनासुन्दरी ने कहा।

"एक बात सुन जाओ बेटी," श्री मुनि जी बोले। "तुमने जो पाया है वह तुम्हारे कर्मों का फल है। तुम और हम सभी तकदीर के मोहरे है। मनुष्य कभी किसी को कुछ नही देता, यह एक बहाना मात्र है।"

"मैने पढ़ा है श्री मुनि जी," मैनासुन्दरी ने कहा।

"अपनी रक्षा के लिए तुम्हें शस्त्रविद्या भी सीखनी होगी। जैन धर्म में बलवान बने रहने और अपनी रक्षा करने की शक्ति भी पा लेने का उल्लेख है। सुनो, तुमने जो पाया है उसको सत्य मार्ग के लिए ही प्रयोग करना बेटी। शक्ति को कभी पाप के लिए प्रयोग करना बुरी बात है।"

"श्री मुनि जी, आपके चरणों में रह कर मैंने बुरे को अच्छाई

में, पाप को पुण्य में, असत्य को सत्य में देखा है। पाप की गठरी को सर पर रख कर चलना तो आग से खेलने के समान है। हमारे कदमों में कर्मों की बेड़ियाँ पड़ी रहती है, जिनसे चलचित्र की तरह पाप-पुण्य का स्वर पैदा होता रहता है। ग्रन्थों में लिखा है, पापी पुरुष को जीवन तो क्या मौत भी दुर्लभ हो जाती है। वह कराहता रहता है और मौत पाने को तरसता रहता है। उसे बेबस देखकर जब मृत्यु हँसती है तो हम सबको उस मरने वाले पर दया आ जाती है और हम बेबस से दूर खड़े उसे तड़पता देखते रहते है। हम न उसे मार पाते है और न ही जीवित कर पाते है।"

"वाह, कर्मों की क्या महिमा है?" श्रीपाल ने हँस कर कहा और पहली बार मैनासुन्दरी ने श्रीपाल और उसके सात सौ सैनिकों के लश्कर को देखा।

"पुरुष है या कामदेव" मैनासुन्दरी ने मन ही मन सोचा- कितना सुन्दर पुरूष है। क्या स्वर्ग से साक्षात् विष्णु उतर आये है।

"मैनासुन्दरी", श्रीपाल ने मानों मन ही मन दोहराया।

मैनासुन्दरी कल्पना के परकोटे से उतर कर श्री मुनि जी को प्रणाम करके उछल कर अपने घोडे पर जा बैठी। रासों को खीच कर घोड़े को ऐड़ देने से पूर्व उसने एक बार फिर श्रीपाल को देखा।

श्रीपाल भी उसे उठ कर देखने लगा। उसे लगा, मानो किसी ने उसका कुछ चुरा लिया हो। क्या चोरी हुआ है, वह निर्णय नही कर पा रहा था?

दोनों ने एक-दूसरे को देखा। जन्म-जन्म के साथी एक-दूसरे को देखते रहे और अपनी-अपनी आँखों में प्यार भरे सपने सँजोते रहे।

"बस मैनासुन्दरी," मन ने मानो उसे डाँट दिया। उसके हाथों की रास खिंचने लगी, दोनों पैरों में कसे हुए जूते घोड़े को दौड़ने के लिए उकसाने लगे।

मैनासुन्दरी का घोड़ा उछला और हवा हो गया।

"श्रीपाल," श्री मुनि जी बोले। "यह तुम्हारा दर्पण है।"

"मै समझा नही मुनि श्री।"

"तुम दोनों जन्म-जन्म के साथी हो, पूर्व जन्मों के साथी। कभी सेठ के यहाँ जन्म ले लेते हो, तो कभी राजा के यहाँ। पिछले सात जन्मों से तुम उसके साथ चलते आये हो।"

"श्री मुनि जी, क्या हम इस जन्म में भी साथी बनेंगे?" श्रीपाल ने पूछा।

श्री मुनि जी हँसे, जिन इच्छाओं को दबा कर तुम संन्यासी होना चाहते थे, वे तुम्हें सताने लगी है। जाओ उज्जैनी नगरी का शासक तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा हुआ है।

"पर श्री मुनि जी, मेरा भविष्य क्या है?"

"वह तुम अपने कर्मों से पूछ लो, जो अथाह समुद्र में किश्ती की तरह नाच रहे है। यह तुम पर निर्भर करता है कि तुम उसको डुबो दो या चप्पू चला कर किनारा पकड़ लो।"

"जाओ वत्स, समुद्र की लहरें शरारती होती है। अपनी किश्ती तूफानों से बचा लो और एक नये अध्याय की शुरूआत करो।"

"आशीर्वाद दो, श्री मुनि जी," श्रीपाल नतमस्तक हुआ।

श्री मुनि जी हँसे, फिर बोले- "आशीर्वाद पाना तो तुम्हारा हक है। आज पूर्णमासी है, पूरा चंदा निकलेगा। जाओ जिसे पाने को तुम व्याकुल हो उठे हो, वह इच्छा जरूर पूरी होगी।" संशय में श्रीपाल को डूबा हुआ देख कर श्री मुनि जी कूच कर गये। श्रीपाल ठगा-सा बैठा रह गया था।

))((8))((

अब, श्रीपाल से उसके सैनिकों ने पूछा।

कूच करने की तैयारी करो। ठहरो, मुझे पत्र लिखने दो। मेरा पत्र लेकर तुममें से किसी एक को उज्जैनी जाना होगा।

श्रीपाल ने पत्र लिखा और अपने साथी प्रहस्त को पकड़ा दिया। प्रहस्त पत्र लेकर घोड़े पर चढ़ा और उज्जैनी नगर के परकोटे में दाखिल हो गया। कुछ देर बाद श्रीपाल ने प्रहस्त के साथ राजा पहुपाल और उनके मंत्री, सभासदों को आते हुए देखा।

श्रीपाल उठा और राजा पहुपाल के चरणों को छूने दौड़ा। पर पहुपाल ने उसे बीच में रोक कर बाँहों में भर लिया। सब लोग उज्जैनी नगरी की ओर चल दिये।

"दीदी कैसी है?" पहुपाल पूछ रहे थे।

"आप माँ को पूछ रहे है ना", श्रीपाल बोला। "बहुत अच्छी

है। आपको रोज याद कर लेती है।''

"हूँ, हम उनके धर्म भाई जो है", पहुपाल हँसे। फिर बोले, "तुम्हारे चाचा कैसे है? कुछ सुधरे भी है या पहले जैसे ही है।"

"सुरा-सुन्दरी में डूबे रहते है।"

"ओह!" पहुपाल को यह सुन कर आघात-सा लगा। वे भर्रायी हुई आवाज में बोले, "क्या वे भाई के गम को इतनी जल्दी भूल गये?"

"हाँ, भाई का गम सुरा की बोतलों और जवान साँसों में अपनी साँसों को जोड़ कर पूरा कर लेते है।"

"कोटिभट वंश को बीरदमन कलंकित कर रहा है।" यह बुरी बात है।

"पिताजी थे, तो चाचा डरते भी थे। पर अब उन्हें कौन रोकेगा?"

"तुम!" पहुपाल ने मानो दृढ़ता से कहा।

"मै कैसे रोकूँगा। शास्त्रों में लिखा है, अपने से बड़ों का अपमान करना पाप है। फिर वे बड़े होने के साथ-साथ मेरे चाचा भी है।"

"श्रीपाल राजा का कर्त्तव्य प्रजा को सत्यमार्ग की ओर ले जाना है। दुष्टों को दण्ड देना है। हत्यारों और चोरों को जेल मे डालना है।"

श्रीपाल को न सूझा कि वह क्या कहे? वह चुप रह गया। नगर का प्रवेश द्वार आ गया था। उसने देखा पूरी सड़क पर सुगन्धित फूलों को बिछाया गया था। बैंड बाजे वालों की लम्बी कतारें मानो उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। वे श्रीपाल के द्वार में प्रवेश करते ही अपनी धुनें बजाने लगे। सड़कों के दोनों ओर उज्जैनी नगरी के भव्य राजप्रसाद खड़े थे। जिनके झरोखों से खूबसूरत चेहरे उसको और उसके लश्कर को देख रहे थे।

"यह सब क्या है महाराज?" श्रीपाल ने हँस कर पूछा।

"बेटे का स्वागत है।" राजा हँसे, "क्या तुम्हें पसन्द नहीं आया?"

"अहो, बहुत पसन्द है। पर क्या यह सब करना जरूरी था?"

"हाँ शायद तुम नही जानते, मेरा अपना कोई बेटा नही है। सोचता हूँ, तुम्हें अपना बेटा बना लूँ।"

"बना लो, मना कौन करता है?" श्रीपाल जोरों से हँसा। उज्जैनी नगरवासियों को लगा मानो श्रीपाल की हँसी से वहाँ की सड़कें मोतियों से भर गई है। वे इस कामदेव रूपी पुरुष को मदभरी आँखों से देखते और अपने प्यासे मन को तृप्त कर लेते।"

शानदार स्वागत के बाद राजा ने अपने अतिथियों के लिए शानदार जश्न की तैयारी की।

"हम सब शाकाहारी है।" श्रीपाल ने याद दिलाया।

"हम कौन से मांसाहारी है?" राजा पहुपाल खिलखिला कर हँसे। "अरे भाई, मै तो जैन धर्म का अनुयायी हूँ। मेरे पूरे राज्य मे हर व्यक्ति शाकाहारी है।"

"भई वाह", श्रीपाल ने कहा, उसे हैरानी भी हुई। "कमाल है, आपके यहाँ एक भी मांसाहारी नही।"

"हाँ, तुमने सही कहा। हमारे यहाँ एक भी मांसाहारी नही है।"

"फिर तो आपके यहाँ शिकारी भी नही होंगे?"

"अहिंसा के साम्राज्य मे शिकारी क्या करेंगे?"

"आप ठीक कहते है।" श्रीपाल ने कहा- "मै जब अपने देश लौटूँगा, तो अपने राज्य से मांसाहारी लोगों को निष्कासित कर दूँगा।"

राजा हँसे, "अगर वे शाकाहारी बनना चाहेंगे तो?"

"फिर उन्हें रखने में मुझे क्या एतराज होगा?" श्रीपाल हँसा।

वे दोनों बातें करते हुए राजमहल मे आ गये। श्रीपाल ने दौड़ती हुई एक रूपसी की हल्की-सी झलक देखी।

"यह तो मैनासुन्दरी है।" उसने मानो अपने आपसे कहा।

राजा के साथ-साथ श्रीपाल राजमहल के खूबसूरत संगमरमरी रंगमहल में आ पहुँचा, जहाँ महाराजा का अपना रनवास था।

महाराजा की पटरानी निपुर्णसुन्दरी ने स्वर्ण थाल में दीपकों को सजाया और श्रीपाल की आरती उतारी। मुँह मीठा कराया और सर पर सीधा हाथ रख कर आशीष भी दी। श्रीपाल ने देखा, कुन्दनप्रभा जैसी एक और माँ उसके सामने खड़ी थी। वह झुका और निपुर्णसुन्दरी के चरणों को छूने लगा।

निपुर्णसुन्दरी श्रीपाल को बाँहों में भरे हुए स्वर्ण कुर्सी की ओर ले आई। श्रीपाल को स्वर्ण कुर्सी पर बैठा दिया गया।

निपुर्णसुन्दरी, श्रीपाल से कुन्दनप्रभा की कुशलक्षेम पूछ रही थी।

श्रीपाल भी प्रश्नों का उत्तर दिये जाता था। वह अभी मैनासुन्दरी के बारे में सोच ही रहा था कि एक सुन्दर लड़की आई और हाथ जोड़ कर जयजिनेन्द्र करने लगी।

"यह मेरी बड़ी बेटी सुरसुन्दरी है, बड़ी खतरनाक है। अड़ियल और भयकर घोड़े भी इसके हंटरों के आगे सीधे हो जाते है।"

"ओह", श्रीपाल ने सिर्फ इतना ही कहा। सुरसुन्दरी हँसने लगी।

"बैठियेगा", श्रीपाल ने सुरसुन्दरी से कहा, वह हँसती हुई श्रीपाल के सामने आ बैठी। "यह मेरी छोटी बेटी है। श्रीपाल ने राजा पहुपाल का स्वर सुना और देखा, राजा पहुपाल मैनासुन्दरी के साथ खड़े हुए थे।"

"तुम", श्रीपाल ने सिर्फ इतना ही कहा, वह घबरा कर कुर्सी से उठने लगा।

"क्या तुम मैना से पूर्व परिचित हो?" महारानी ने हैरत से पूछा।

हाँ, हम श्री मुनि जी के आश्रम में मिल चुके है।

"हाँ, वहाँ इसने जैन शास्त्रों का अध्ययन किया है। श्री मुनि जी के प्रताप से मेरी मैना ने भी जैन ग्रन्थों को पढ लिया है।"

"बैठो मैनासुन्दरी", श्रीपाल बोला- "तुम्हें सामने देख कर लगता है, मानो मेरा अपना कोई सामने खड़ा है।"

"मैना ही नही, हम सब तुम्हारे अपने है कोटिभट राजा", निपुर्णसुन्दरी कह रही थी।

"सिर्फ बातें ही करते रहोगे, या कुछ पेट पूजा भी करोगे।" सुरसुन्दरी बोली।

श्रीपाल हँसा- "ओह आपको और भोजन, दोनों को तो मै भूल ही गया था।"

"मेरी तुलना भोजन से करते हो?" सुरसुन्दरी नाराज हो गई। "शायद आपको मेरा उपहास करना आता है।"

"नही, मुझे आपका उपहास करने का क्या अधिकार है?" श्रीपाल ने मायूस होकर कहा और भोजन करने के लिए सोने के चम्मचों से खेलने लगा।

भोजन से निवृत्त होकर श्रीपाल ने राजा से लौटने की आज्ञा

चाही।

"अरे, अभी-अभी आये हो। रास्ते की थकान है और फिर क्या उज्जैनी नगरी का वैभव नही देखोगे?"

"सम्राट, अज्ञानता में मेरी आँखें बंद थी। मै कर्त्तव्य से भटक गया था। अपनों को और कोटिभट वंश की मान-मर्यादाओं को भुलाए बैठा हुआ था, अब मै बहुत शीघ्र लौटूँगा।

"मै समझा नही श्रीपाल, तुम कहना क्या चाहते हो?"

"मै आपको कुछ समझा भी नहीं पाऊँगा पिताश्री। बस आप इतना समझ लो, मुझे, आपकी किसी प्रिय वस्तु से मोह हो गया है। मै उसे लेने शीघ्र ही लौट आऊँगा", यह कह कर श्रीपाल ने मैनासुन्दरी की ओर देखा।

"मुझे तो पता चला था कि तुम विरक्त हो गये हो। अपने को और अपनों को पहचानते भी नही हो।" राजा हँसे, "सिर्फ एक पल की मुलाकात से कितने अधीर नजर आते हो। वाह, कोटिभट सुकुमार, बिलकुल बाप पर गये हो। वे भी तो तुम्हारी माँ को एक लम्बी लड़ाई लड़ कर लाये थे। प्यार की खातिर उन्हें वह युद्ध बहुत महँगा पड़ा था।"

"आप कैसे जानते है?" श्रीपाल ने पूछा।

तुम्हारे पिता मेरे अतरंग मित्र थे। फिर कैसे नही यह सब जानूँगा उस युद्ध के बारे में, जो आप से बीस वर्ष पूर्व हुआ था, जो भरत क्षेत्र का एक चर्चित युद्ध कहा जाता है। तुम्हारे पिताश्री ने दीदी कुन्दनप्रभा को अपने वंश की दी हुई सौगंध का वचन पूरा किया था।"

"ओह", श्रीपाल ने कहा, "क्या मैनासुन्दरी के लिए मुझे भी बल प्रयोग करना पड़ेगा। एक ऐसा युद्ध लड़ना पड़ेगा, जिसमें मेरे प्यार की खातिर दोनों ओर से सैकड़ो-हजारों सैनिक मरेंगे।" यह कह कर श्रीपाल ने सम्राट की ओर देखा।

मैनासुन्दरी ने मानो कुछ कहना चाहा।

"मैना और सुरसुन्दरी, तुम दोनों अपने-अपने कक्ष में जाओ। रानी निपुर्णसुन्दरी तुम भी।" पहुपाल ने कहा- "मुझे कोटिभट युवराज से कुछ बातें करने दो।"

अवाक् और हैरान-सी मैना उठी, उसने एक नजरभर कर श्रीपाल की ओर देखा। सुरसुन्दरी तो जैसे श्रीपाल को प्यार से निहारती जाती

थी।

रंगमहल के खूबसूरत कक्ष में श्रीपाल और पहुपाल दोनों अकेले रह गये। राजा पहुपाल ने पूछा, "कर्मों में उलझे हुए युवराज, मेरी मैना को पसन्द करने के पीछे तुम्हारा कोई छल तो नहीं है।"

"पिताश्री", श्रीपाल उत्तेजित हो उठा।

"बेटा नाराज न हों। मेरे गुप्तचरों का कहना है कि तुमने चम्पा नगरी और उज्जैनी के बीच पड़ने वाले हर राज्य की सुन्दर कन्याओं का तिरस्कार किया है। क्या इससे तुम्हारे विरक्त जीवन का एहसास नहीं होता? कन्याओं के पिता राजाओं को तो तुमने मेरे राज्य से लौट कर जैन मुनि बनने वाली बात भी कही है।"

"हाँ, पिताश्री, यह सब सच है। पर जब मैंने अपने दर्पण में अपना चेहरा देखा, तो मुझे भूल का एहसास हुआ। वह मेरा गलत निर्णय था। गृहस्थ प्रवेश और प्रजा कष्ट को जाने बिना संन्यास लेना ठीक नही रहेगा। इसका मुझे ज्ञान हो गया है। और सुनो, मेरा कोई जन्म-जन्म का साथी मेरी प्रतीक्षा में बैठा हुआ है, मै उसे छोड़ कर तपस्या नहीं कर सकूँगा। भरत खंड के सम्राट कोटिभट की शमशीर को देखे बिना, कोटिभट के शौर्य पराक्रम को कैसे मानेंगे? माँ और स्वर्गीय पिताश्री का सपना कैसे पूरा होगा, जो मेरा फर्ज है, इस कर्म को करने के लिये ही तो मै मनुष्य योनि में आया हूँ, भला मै इससे पीछे क्यों हटना चाहूँगा?"

"अरे वाह, जिस पाठ को पढाने तुम्हें बुलाया गया था, वह तो तुम रास्ते में ही पढ़ आये हो।" राजा ने कहा- "दर्पण और जन्म-जन्म का साथी वाली बात सुन कर मुझे हँसी आती है। क्या तुम इन बातों से मैनासुन्दरी को जोड़ते हो?"

"पिताश्री! प्यार महसूस करने और दर्द पाने के लिए होता है। मै इससे अधिक कह कर अपनी और आपकी दूरी को, जो एक प्रतिष्ठा की डोरी से बँधी है, कम करना नही चाहता, अच्छा पिताश्री।"

श्रीपाल यह कह कर पृथ्वी पर झुका। राजा गर्व से मुस्कुरा रहे थे। उन्होंने श्रीपाल को अपने चरणों को छूने से नहीं रोका। श्रीपाल राजा के चरणों को छूकर रगमहल से लौटने लगा। वह महल की सीढियाँ उतरता रहा और मैनासुन्दरी के ख्यालों में उड़ता रहा।

सीढियाँ समाप्त हो गयी थीं। पर उसे मैनासुन्दरी के सपनों से

मुक्ति नही मिली। रह-रह कर उसकी आँखों के सामने वह रूप की अद्वितीय सुन्दरी आ खड़ी होती।

उसने सर उठा कर महल के झरोखों की ओर देखा। झरोखों में कई सुन्दर, खूबसूरत चेहरे थे, पर मैना नही थी। वह उदास हो गया। उसे लगा वह अब कैसे बढ़ेगा? ठीक ही तो है, प्राणों के बिना शरीर चलता थोड़े ही है।

"युवराज क्या सोच रहे हो?" प्रहस्त का स्वर सुन कर वह अपने ख्यालों को झटका देने लगा। उसके सामने उसका विश्वश्त सेनापति और दोस्त प्रहस्त खड़ा था।

"कुछ नही।' सोच रहा था क्या पूर्णमासी का चंदा इतनी जल्दी छिप जाता है। प्रहस्त आज तो पूर्णमासी है।"

"युवराज चंदा तो अभी भी निकला हुआ है। वह देखो रंगमहल के ऊपर चढ़ा बैठा है।"

श्रीपाल ने मायूस होकर पूर्णमासी के चंदे को देखा, जो अपनी जवानी के सफर पर था। फिर उसकी दृष्टि फिसलती हुई रंगमहल के झरोखों में किसी को ढूँढने लगी।

वह एक-एक झरोखे को देखता रहा और अपने को मायूस करता रहा। वह बहुत उदास हो गया था। उसने अपनी उदासी से आकाश में बरसाती बादलों को इकट्ठा कर लिया। उसकी उदासी का साथ देने के लिए बादल रोने-पीटने लगे और युवराज की सुन्दर पोशाक को उनकी नन्हीं-नन्ही उदास बूँदे गीला करने लगी।

वह रंगमहल से बाहर खड़ा वर्षा में भीगता रहा।

लगता है युवराज अस्वस्थ है। प्रहस्त यह सोच कर रंगमहल में राजा पहुपाल को बुलाने दौड़ा।

"अन्दर चलो युवराज", किसी ने उसे मधुर आवाज दी। वह इस प्यार भरी आवाज को सुनते ही घूमा, देखा उसके पीछे मैना खड़ी थी।

"मैना तुम", श्रीपाल हकलाया, "क्या वर्षा में भीगने चली आई हो?"

"नही आपको लेने आई हूँ। वर्षा में मै नही आप भीग रहे है। आओ मेरे साथ, देर न करो, वर्षा तेज हो गयी है।"

"नही, शायद रुक गई है।" श्रीपाल ने मैना को अपलक

निहारते हुए कहा।

"क्या देख रहे हो?" मैना ने डरते हुए पूछा।

"अपने आपको", श्रीपाल ने सिर्फ इतना कहा।

"क्या मै दर्पण हूँ?"

"हाँ, तुम मेरा दर्पण हो।" श्री मुनि जी ने कहा था।

"और क्या कहा था, श्री मुनि ने"- मैनासुन्दरी ने डरते हुए पूछा।

"हम दोनों जन्म-जन्म के साथी है।"

"नही, नही।" मैना ने लजाते हुए कहा।

"क्या, श्री मुनि जी ने झूठ कहा है?" श्रीपाल ने पूछा।

"मैने ऐसा कब कहा? पर आप ऐसे मत कहो। हवा सुन लेगी और मचल-मचल, दौड़-दौड़ कर जमाने को बता देगी।"

"जमाने से डरती हो", श्रीपाल हँसा।

"नही, नारी लाज के सीमित दायरे और समाज द्वारा नारी को मिली मर्यादा से डरती हूँ। आप चले जाइये। हाँ, आप चले जाइये, सर उठा कर देख लो, रंगमहल के हर झरोखे की हम पर नजर है।"

"मैना, क्या तुम मुझे अपना मानती हो?"

"पता नहीं", मैना ने सिर्फ इतना कहा।

"अपने आपको न बहकाओ मैना", श्रीपाल का स्वर काँपने लगा।

"युवराज, हम दोनों तो कर्मों के जालों में है। अपने-अपने सोचने का ढग है। जो अपनों से दूर नही रहना चाहते उन्हें कर्मों ने पास आने से रोका हुआ है। कौन नारी तुम जैसा जीवन साथी नही पाना चाहेगी", हँसी मैना। "अभी तो जिन्दगी की शुरूआत हुई है। कोटिभट राजा को बहुत सी रूपसी राज्य कन्यायें मिलेगी। मैना का क्या है, कर्मों के किनारे बैठी हुई है। मैना के सामने तो नारी आदर्शो का आइना रखा है, जिसमें मैना को अपना प्रतिबिम्ब नजर आता है।"

"उदास न हो, हँस कर रहो मैना।" श्रीपाल ने कहा- "जिन्दगी तो हँस कर जीने के लिए है।"

"ये पुरुषों की बात है। नारियों पर इन्हें लागू न करो तो अच्छा है। अभी नारी युग की बात दोहराना कहाँ तक ठीक है, मै सोच नही पाती। जैन धर्म में पढ़ा है, लड़की को अपने पिताश्री पर आश्वस्त रहना

ही उचित है। उसका अपना निर्णय न उचित है और न ही धर्म के पक्ष में। अभी मैं पिताश्री पर आश्वस्त हूँ और बाद में पति पर आश्वस्त रहूँगी। मेरा पति वो ही होगा, जिसे मेरे पिता चाहेंगे। पिताश्री भी वही चाहेंगे, जो मेरे कर्मों में होगा।"

"मैना। क्या यही हमारे जन्म-जन्म का प्यार है?"

"युवराज, हर जन्म के पीछे कर्मों की मायां तो रही होगी। जाओ, उसी माया के द्वारा मुझे प्राप्त कर लेना। मुझे पता है, जो मेरे कर्मों में होगा, उसे मै पाकर रहूँगी। मेरी तकदीर का हर ऐश्वर्य मेरा होगा।"

"अगर कोई तुम्हारी तकदीर का दर्पण तोड़ दे तो?" श्रीपाल हँस कर पूछने लगा।

"युवराज तकदीर का दर्पण तोड़ने वाले अहंकारी होते है। कहीं उसकी तकदीर उससे कोई मजाक तो नही करने जा रही है?"

"मैना कैसी बातें करती हो? क्या हमारा मिलन सिर्फ कर्मों के आधार पर होगा।" श्रीपाल रूआंसा हो गया।

"हाँ युवराज, आप ठीक ही सोच रहे है, और सुनो हमने जितनी भी बातें अभी तक की है, वे सिर्फ भूलने के लिए है, यह हमें याद रखना है। किसी नारी, पुरुष को मन ही मन चाहना भी एक पाप है। एक ऐसा पाप, जिसे हम बिना श्रम किये ही कमा लेते है।"

"मैना, तुम साक्षात् देवी हो।" श्रीपाल आँखें भर लाया, "जाओ रंगमहल लौट जाओ। आकाश बिल्कुल साफ है। बरसने वाले बादल दायें-बायें छुप गये है।"

"हाँ मुझे पता है", मैनासुन्दरी ने कहा और वह दौड़ती हुई रंगमहल में गायब हो गई।

))X(9)X((

श्रीपाल लौट रहा था और चम्पानगरी की ओर अपने घोड़े को बेतहाशा दौड़ाये जा रहा था।

उसके पीछे उसके सात सौ सैनिकों का लश्कर था।

उसे चम्पानगरी पहुँचना था। अपनी माँ कुन्दनप्रभा के पास, माँ से कहने, माँ तेरा बेटा तेरे लिए बहू पसन्द कर आया है, जो चम्पा

नगरी में आकर सर्वत्र प्रकाश फैला देगी। जिसके पुण्य से पतझड़ के विशाल वृक्षों पर हरियाली आ जाती है। विधवाओं को सुहाग मिल जाते है और पुत्रहीन पुत्र पा जाते है। जो लोग गरीबी की मार से टूट जाते है, वे उसके दर्शन करके ही हर वैभव पा जाते है। वह तो बला की खूबसूरत है, साक्षात् परी है, देवी है। उसके चारों ओर धर्म के मोतियों की चमक-दमक है।"

माँ जब उसकी खूबसूरती के बारे में पूछेंगी, तो वह कैसे उसका वर्णन करेगा?

क्या वह माँ को बता सकेगा कि वो अपने रूप से स्वर्ग की अप्सराओं को भी पराजित कर देती है।

माँ उसके इस बदले हुए चोले पर खूब हँसेगी, झूमेगी, चहकेगी और वह अपनी माँ को अपनी बाँहों में लेकर उसके हर गिले-शिकवे को दूर कर देगा। वह स्वर्गीय पिताश्री महाराज के स्वर्ण मुकुट को माथे पर बाँध कर सोने के सिंहासन पर जा बैठेगा तो क्या माँ खुश नहीं होगी?

वह सपनों को इकट्ठा करता रहा और दौडता रहा।

वह अब ठिठकना नहीं चाहता था, रुकना नहीं चाहता था। अब उसके विरक्त मन में मोह-माया आ गई थी। कुछ अपने परायों से प्यार हो गया था। जिन्हें पाने के लिए उसके पास अनगिनत इच्छाएँ थी। वह हर पल कुछ न कुछ सोचता जाता और अपनी महबूबा से मिलने के सपने सँजोता रहता। कभी-कभी वह म्यान से शमशीर निकाल लेता तो कभी अपनी बलिष्ठ भुजाओं को तोड़ने-मरोडने लगता, वह जैसा करता उसके सात सौ सैनिक भी वैसा ही करते।

सफर कम होता रहा, काफिला बढता रहा।

उसने देखा जो सुन्दर तरूणियाँ उसे देख कर पागल हो जाती थी और उसके पीछे दौड़ने लगती थी, वे मुँह ढक कर उसका रास्ता छोड़ देती है। यह देख कर उसे कुछ अचरज-सा हुआ, पर उसने इसकी परवाह नहीं की और अपना सफर जारी रखा। वह बढ़ता रहा और सुन्दर नारियों के साथ-साथ राह चलते लोगों की उपेक्षा का भी शिकार होता रहा।

वह यह नहीं जान पाया, लोग उसे या उसके लश्कर को देख कर कपड़े से मुँह क्यों ढाँप लेते है। उसके रास्ते से क्यों हट जाते

है? उसे महसूस हुआ जैसे हवा रुक गयी हो और उसके दांये बांये दुर्गन्ध फैलने लगी हो।

क्या वह इस आने वाली दुर्गन्ध के बारे में मालूमात करे? श्रीपाल ने सोचा और ठिठकने को हुआ, पर मैनासुन्दरी के लिए पागल हुए मन को वह समझा न सका और दौड़ता ही रहा, बस दौड़ता ही रहा।

))X((10))X((

श्रीपाल अपने लश्कर के साथ दौड़ता रहा और घोड़े की टापों को खैंच-खैंच कर उसे तेज दौड़ने के लिए भी उकसाता रहा।

दूर चम्पानगरी साम्राज्य का वैभव नजर आ रहा था।

प्राचीन दीवारों की बुर्जियों में चौकन्ने खड़े नगर रक्षकों ने महारानी कुन्दनप्रभा को युवराज के लौट कर आने की सूचना दी।

नगर का प्रवेश द्वार खोल दिया गया। महारानी कुन्दनप्रभा ने अपने बेटे की वापसी पर सड़कों पर सुगन्धित फूलों को बिछवा दिया और बेटे से मिलने नगर कोट की ओर बढ़ी। उसके साथ राजघराने की बहुत सी सुन्दर नारियाँ थीं। सबके हाथों में आरती के लिए दीपों से सजे स्वर्ण थाल थे।

महारानी कुन्दनप्रभा द्वार पर खड़ी युवराज की प्रतीक्षा कर रही थी।

उन्हे एक-एक पल एक-एक वर्ष के समान लग रहा था। उनकी आँखें ममता और प्यार में बाट जोहते-जोहते थक गयी थी।

तभी उनके नथुनों से तेज दुर्गन्ध का झोंका आकर लगा जो उन्हें असह्य हो उठा। उनके साथ खड़ी तरुणियों ने भी दुर्गन्ध भरी हवा आने की शिकायत की।

"माली", महारानी कुन्दनप्रभा ने कर्कश स्वर में कहा- "तेरे ये कैसे सुगन्धित फूल है, जिनसे आने वाली तेज दुर्गन्ध हमसे सही नही जाती है?"

"माताश्री, यह दुर्गन्ध फूलों की नहीं किसी कोढ़ी मनुष्य के शरीर की है। जो प्रवेश द्वार की ओर दौड़ता आ रहा है।" माली से पूर्व द्वार रक्षक बोला।

"द्वार रक्षक, तुम होश में तो हो। द्वार की ओर दौड़ कर आने वाला मेरा पुत्र है, कोई कोढ़ी या भिखारी नहीं, और सुनो क्या तुम मेरे बेटे की सुन्दर और सलोनी काया से परिचित नहीं हो?"

"माताश्री, क्षमा चाहता हूँ। मेरा अपराध क्षमा करें", द्वार रक्षक गिड़गिड़ाया।

द्वार रक्षक चला गया। माली ने राजमार्ग पर पहले से बिछे फूलों को हटाकर दोबारा नये ताजे सुगन्धित फूल बिछा दिये। पर दुर्गन्ध तो हर पल बढ़ती ही जा रही थी।

यह कैसी अनहोनी है, कुन्दनप्रभा ने सोचा, क्या पुत्र किसी भयंकर बीमारी को लेकर लौटा है? तभी उन्होंने युवराज श्रीपाल और उसके लश्कर को आते हुए देखा, उनके नजदीक आने से बड़ी तेज दुर्गन्ध फैल गयी थी। प्राचीर के पहरेदार और द्वार रक्षक तेज दुर्गन्ध के झोकों से डर सहम कर भाग उठे। कुन्दनप्रभा के साथ आई युवा नारियाँ भी भय से चीखती-चिल्लाती चली गईं। पर माँ ने हिम्मत नहीं हारी, वह होने वाली अनहोनी और अपने प्रिय पुत्र की प्रतीक्षा करती रहीं।

घोड़े की पीठ पर बैठा उछलता-कूदता श्रीपाल द्वार पर आकर ठीक महारानी कुन्दनप्रभा के सामने रुका। उसके पीछे उसके सात सौ सैनिक भी थे।

"माँ, मै उज्जैनी नगरी हो आया हूँ। मैनासुन्दरी बहुत सुन्दर है।"

"अच्छा। महारानी कुन्दनप्रभा ने कहा" - बेटे की हालत और बातों पर उसकी आँखें छलछला आयीं।

"राजा पहुपाल मैना की शादी मुझसे करना चाहते है। सुनो माँ, राजा की एक लड़की और भी है, जो मैनासुन्दरी से बड़ी है और सुन्दर भी, पर मुझे न जाने क्यों पसन्द नहीं, न जाने ऐसा क्यों है? इसका जवाब तो मेरे पास भी नहीं है।"

"हाँ हाँ। महारानी कुन्दनप्रभा रो रही थीं, स्वीकार कर रही थीं।

"माँ मुझसे श्री मुनि जी ने कहा है। संन्यास लेने से पूर्व गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना है और स्वर्गीय पिताश्री का राजमुकुट बाँध कर चम्पानगरी का सम्राट बनना है।"

"माँ, मै सम्राट बनूँगा।"

"मै कोटिभट वंश का शेर हूँ, समस्त भरत खंड को मै दिग्विजय करूँगा। समस्त पृथ्वी पर मेरा एक छत्र राज्य होगा। भरत खंड के सभी राजा मेरा लोहा मानेंगे।"

"नही, नही, श्रीपाल नही।" महारानी कुन्दनप्रभा जोर से रो पड़ी।

"माँ मै तो मोक्षगामी जीव हूँ। श्री मुनि जी कहते है, मै इस भव से ही मोक्ष जाऊँगा।"

"नही, यह झूठ है श्रीपाल।" कुन्दनप्रभा चीखी- "तुमने जो कुछ सुना वह सब झूठ है। जो देखा वह भी झूठ है, तुम सम्राट बनना चाहते हो, पर मै तुम्हें चम्पानगरी से ही निष्कासित करती हूँ।"

"क्यों माँ, मुझसे क्या अपराध हो गया है?" माँ से बेटे ने पूछा।

"तुम कोढ़ी हो, तुम्हारा सारा शरीर दुर्गन्ध से भरा है। तुम्हारे साथियों के शरीर से भी कोढ़ चू रहा है। देखते नही हो श्रीपाल, द्वार रक्षक और प्राचीर प्रहरी भी तुम्हारे शरीरों से आने वाली दुर्गन्ध से परेशान होकर भाग रहे है।"

"माँ, यह क्या कह रही हो? माँ", श्रीपाल ने कह कर अनायास ही अपने हाथों, पैरों की ओर देखा।

"आह", उसके मुँह से निकला। वह अपने शरीर की हालत पर बहुत दुखी हुआ और फिर वह अपने वीरों की ओर घूमा। उसके वीर सैनिक पहले की तरह सुन्दर नहीं थे। वे बहुत बदसूरत नजर आ रहे थे। उनके हाथों, पैरो और चेहरों से भी कोढ़ चू रहा था।

"आह", वह कराहा और माँ महारानी कुन्दनप्रभा से बोला- "माँ, हमें नगर में प्रवेश कर लेने दो। हम सब थके हुए है, कुछ विश्राम करेंगे और चले जायेंगे।"

"नही बेटे, जब तुम और तुम्हारे वीरों की दुर्गन्ध से प्राचीर, प्रहरी ही डर कर भागने लगे है तो फिर तुम्हारे नगर में प्रवेश करने पर नगरवासी कैसे जीयेंगे? अगर तुम मेरे बेटे हो, तो मेरी प्रजा भी मेरे बेटे-बेटी है। जाओ, बेटा जाओ, तुम सब लौट जाओ। मै तुम्हें चम्पा नगरी से ही नही, अपने पूरे राज्य से ही निष्कासित करती हूँ। तुम और तुम्हारे सैनिक कोढ़ी है, जो कोढ़ी रहने तक मेरे राज्य की सरहदो को भी न छू सकेंगे।"

"यह आप कैसा आदेश दे रही हो माँ", श्रीपाल सुबकने लगा।

"बेटा, यह आदेश मेरा नहीं, तेरे कर्मों का है। कर्मों से तुम्हारी और तुम्हारे सात सौ सैनिकों की सोने-सी काया कोढ़ी हो गयी है। जाओ, जाओ युवराज", महारानी कुन्दनप्रभा ने कह कर दूर खड़े द्वार रक्षक को आवाज दी और नगर कोट का द्वार बंद कर देने की आज्ञा दी।

प्राचीर का द्वार और सभी झरोखे बंद कर दिये गये।

द्वार के एक ओर चाहत का दामन फैलाये कर्त्तव्य की पटरी पर माँ खड़ी थी, तो दूसरी ओर माँ की ममता में डूबा हुआ उसका कोढ़ी बेटा अपने कोढ़ी लश्कर को लिए हुए खड़ा था। दोनों ही रो रहे थे, कराह रहे थे।

सूर्य डूब रहा था। अँधेरा दौड़ा-दौड़ा आया और माँ बेटे की दर्द भरी सिसकियाँ सुन कर सहम गया, उसने दर्द से परेशान ममता की यह अनोखी कहानी पढ़ी और लौट गया।

अब आकाश में चदा आया। उसके साथ उसके नन्हें-नन्हें बेटे भी थे। उसके नन्हें बेटों ने अपने पिता चन्दा मामा से माँ बेटे के इस अधूरे प्यार को जानना चाहा, जिसे नगर कोट के मजबूत दरवाजे ने बाँट रखा था। चन्दा ने अपने बेटों से सिर्फ इतना कहा-

"यही होना था।"

"क्यों?" सभी बेटों ने एक साथ पूछा।

"कर्मों का पाप उतर आया है। क्या तुमने अपने पिता (मुझे) को कर्मों से जूझते हुए नही देखा, जब राहु मेरा ग्रास करने आ जाता है, तब क्या तुम मुझे अकेला छोड़ कर दुबक नहीं जाते हो?"

मासूम से नन्हें सितारों ने इसके बाद कुछ नही कहा।

श्रीपाल अपने सैनिकों के साथ लौट रहा था। माँ की राजाज्ञा जो थी। रात ही रात में चम्पानगरी की सरहद जो पार करनी थी।

वह अमानुष-सा बना घोडे पर चढ़ा सारी रात दौड़ता रहा।

सारी रात।

वह दौड़ता रहा और सुबकता रहा।

)))((II)))((

जब श्रीपाल चम्पानगरी राज्य की सीमा को पार कर रहा था, सूर्योदय हो रहा था।

आज उसे सूर्य का उदय होना अच्छा नही लगा।

"जाओ सूर्य, जाओ।" श्रीपाल ने उत्तेजित होकर कहा। "मै नही चाहता, लोग मेरे शरीर को कोढ़ी के रूप में देखें और कोटिभट वंशी युवराज को पहचानने का प्रयास करें, जो आज कर्मों की कैद में है।"

फिर वह कर्मों की निंदा करने लगा-

"हे कर्म, तूने मुझसे मेरे पिता को छीना है। तूने मेरे जन्म-जन्म के प्यार को छीना है। क्या मेरा प्यार अब मुझे पहचान सकेगा? मेरी माँ को तुमने ही निर्दयी बनाया है, जो माँ ने ही मुझे राज्य की सीमा से ही निष्कासित कर दिया। कर्म, तुम बहुत कठोर हो। काश, तुम्हें माँ की ममता का पता होता? मेरे दिल को चीर कर देख लो, जिसमें प्यार का अथाह समुद्र है। इस समुद्ररूपी प्यार में आग-सी लगी है। लो मेरे सीने को देखो," श्रीपाल ने कह कर म्यान से तलवार निकाली और चाहा अपने चौडे सीने को दो हिस्सों में बाँट दें।

"युवराज", श्रीपाल से प्रहस्त ने कहा- "अकाल मृत्यु का ग्रास क्यों बनते हो? आप तो मोक्षगामी जीव है। क्या भरतखंड पर अपना शासन नही करोगे? श्री मुनि जी ने यही तो कहा था।"

"मेरी सुन्दर काया को कोढ़ हो गया, तुम लोगों को कोढ़ हो गया। क्या हमारे यही कर्म है। हम आवारा पशुओं की तरह जंगलों में मारे-मारे फिरें। राजघराने के ऐश्वर्य भूल कर भूख से तड़पते हुए दर-दर भिक्षा पाने को भटकना, तरसना तुम्हें अच्छा लगेगा? बोलो प्रहस्त, क्या तुम्हें अपनी प्रिय पत्नी और नन्हें बेटे की याद नही आ रही होगी। तुम्हारी अंधी माँ किसके सहारे जियेगी?"

युवराज की बातें सुन कर प्रहस्त आँखें भर लाया। उसके दूसरे साथी भी अपने परिवारों की यादों में रोने, बिसूरने और घिघियाने लगे।

"ओह, मै यह क्या देख रहा हूँ। रोओ मत मेरे प्यारे वीरो, अगर तुम हिम्मत हारोगे तो यह सब मै कैसे सहूँगा? मै अशांत होकर पगला जाऊँगा, मै मर जाऊँगा। मै जीवन की इस अनहोनी घटना से हार

कर समझ लूँगा कि मेरा अंत करीब आ गया है। मै कोढ़ी बना दर-दर की ठोकरें नही खा सकता" श्रीपाल ने कहा और प्रहस्त से पूछने लगा।

"क्या तुम मेरा एक कहा मानोगे?"

"हाँ-हाँ, मै आपकी हर आज्ञा मानूँगा।"

"आगे बढ़ो और अपनी पैनी तलवार से मेरा वध कर डालो।"

"युवराज, बस हार गये कर्मों से।" आँखों से गिले-शिकवे की भूल भूलैया पैदा करता प्रहस्त हँस पड़ा। "चलो मै ऐसा कर देता हूँ, पर हमारा क्या होगा? मुझे कौन मारेगा? आपके दूसरे साथी भी तो है, जो आपके दायें-बायें खड़े है। इन्हें कौन मारेगा, युवराज क्या तुमने निर्दयी से निर्दयी लोगों को भी कोढ़ी पुरुषों पर शमशीर चलाते हुए देखा है। नही, मुझे पता है ऐसा नहीं होता। कोढ़ी तो दया के पात्र होते है। अब हम दूसरे लोगों की दया पर निर्भर रहेंगे। नहीं, हम भले ही कोढ़ी काया से है, पर हमारे मन में तो वही पहला जैसा उत्साह है। हम धर्म को भी नही भूले है, क्योंकि हमारा कुल, वंश, जाति उच्च वर्ग की है। हम धर्म को कोढ़ की ओट में नही देखेंगे। हम न भिक्षा माँगेगे, न ही लूटमार के भरोसे रहेंगे। जंगलों में जो कन्दमूल खाने को मिलेंगे, उनसे ही जिन्दगी के दिन पूरे कर लिया करेंगे, धर्म को याद रखेंगे और साधना के मत्रों को अपने मन में फूँकते रहेंगे। ये अत्याचारी कर्म कभी तो भागेंगे। हमें कभी तो इनसे मुक्ति मिलेगी।"

"हाँ, प्रहस्त तुमने ठीक कहा है। तुमने मेरे मन में फिर से जीने की चाह पैदा कर दी है। मै कर्म से लड़ाई जारी रखूँगा। मेरा संघर्ष शुरू होता है। आज से तुम या मेरा कोई भी साथी मुझे उदास नही देखेगा। मै कभी नही रोऊँगा। मेरी आँखों में कर्मों के नाम पर कोई प्रतिवाद नही उठेगा। मेरा मन आज से ही हँसता रहेगा" और यों कह ठहाका मार कर हँस पड़ा चम्पानगरी का कोढ़ी युवराज श्रीपाल।

सफर शुरू हो गया था। नयी उमंगों में भरा नयी मंजिल की तलाश में कोढ़ी युवराज अपने सात सौ सैनिकों को लिये चल पड़ा। कौन जाने उसकी इन उमंगों के पीछे तकदीर को क्या खेल खेलना था? दल के बुलद हौसलों से सहमा खडा कर्म, उनसे हट कर पीछे-पीछे चल रहा था।

दल बढता रहा। राज्य, शहर, जंगल आते और निकल जाते। कोढ़ी दल को ठहराने, रोकने की किसी राजा में हिम्मत नही हुई। तेज

दुर्गन्ध से घबरा कर राज्य के सैनिक उन्हें जल्दी से अपने राज्य की सीमा को खाली करने के लिए कहने लगते और निराश श्रीपाल अपने दल के साथ आगे बढ़ जाता। वह एक-एक करके बहुत से राज्यों को पार करता रहा। उत्साही युवराज के उत्साही सैनिक निराश नहीं हुए, वे जानते थे कि कोई न कोई राजा उन्हें पनाह जरूर देगा। सभी राजा तो निर्दयी नहीं निकलेंगे, यों सोच कर वे उमंगों में भर जाते और चल देते तथा सात सौ घोड़े एक साथ दौड़ पड़ते।

श्रीपाल थका हुआ जरूर था पर हिम्मत से भरा था। वह बढ़ता रहा और अपने सैनिकों के हौसले बुलंद करता रहा।

सूर्य उदय होता और अस्त हो जाता। वे ठिठकते, घोड़े से उतरते विश्राम करते, जो कन्दमूल फल मिलते खा लेते और फिर नये सफर की शुरूआत कर देते। यह सिलसिला बाकायदा चलता रहा। हर राज्य के सैनिकों द्वारा उन्होंने वहाँ के राजा से ठहरने की पनाह माँगी थी, पर किसी ने भी उनकी फरियाद नहीं सुनी। श्रीपाल फिर भी निराश नहीं हुआ। हर एक नया दिन, एक नया राज्य, मानो अब वह इस सबका आदी हो गया था।

सफर चलता रहा, दल बढ़ता रहा। उन्होंने उज्जैनी नगरी का भव्य साम्राज्य और चिरपरिचित जंगल देखा। श्रीपाल ने कर्मों को काट देने वाले श्री मुनि जी देखे, वह पागलों की तरह घोड़े से उतर कर रोता-बिलखता हुआ श्री मुनि जी के चरणों की ओर दौड़ा।

"आओ कोटिभट सुकुमार", श्री मुनि जी ने कहा। "बैठो, अपने साथियों से भी कहो कि वे भी आ जायें। सुनो, तुम कर्मों के जालों में उलझ गये हो, जिनकी बेड़ियों में जकड़े हुए तुम दर-दर की ठोकरें खाते फिरते हो।"

"श्री मुनि जी, क्या मैने इस जन्म में कोई पाप किया है, जिसका मुझे ज्ञान नहीं है और कर्मों ने मुझे उसका दंड दे दिया।" श्रीपाल ने पूछा। वह रोने लगा और कहने लगा, "मेरा तो सब कुछ लुट गया। मै कोढ़ी बना मारा-मारा फिरता हूँ। मुझे और मेरे सैनिकों को अपने राज्य में ठहराने की किसी राजा में भी हिम्मत नहीं है।"

"मुझे पता है वत्स, पाप-पुण्य पिछले भी तो हो सकते है? क्या पुनर्जन्म के पापों को तुम भूल गये?"

"पुनर्जन्म के पाप?" श्रीपाल ने दोहराया। "क्या मैने पिछले

जन्म में भी पाप किये हैं?"

"हाँ, तभी तो तुम कोढ़ी हुए मारे-मारे फिरते हो। श्रीपाल हर अंधेरी रात के बाद सूर्योदय होता है।"

युवराज श्रीपाल के मानो ज्ञान चक्षु खुल गये। उसने श्री मुनि जी से कहा- "हाँ मुनिवर मैं हिम्मत से, धैर्य से, अपने पापयुक्त कर्मों को काटूँगा। मुझे नयी प्रभात पाने की प्रतीक्षा रहेगी।"

"जाओ, इस वन के दक्षिण की ओर चले जाओ, वहाँ हिंसक जानवर नहीं है। वहाँ के जंगलों को अपने साथियों के सहयोग से साफ करके अपने ठहरने की व्यवस्था कर लो।"

श्री मुनि जी ने आदेश पर श्रीपाल नतमस्तक हो अपने साथियों के साथ जंगल के दक्षिणी हिस्से की ओर बढ़ा। उसके पीछे उसके सात सौ सैनिक थे, जो कोढ़ के कष्ट से कराहते हुए चल रहे थे।

12

राजा पहुपाल को कुन्दनप्रभा का पत्र मिल गया था। वह भरी हुई आँखों से पत्र पढ़ता रहा और उदास होता रहा। उन्हें इस अनहोनी कर्म लीला से दिली आघात लगा। घबरायी हुई महारानी राजा की ओर दौड़ी।

"श्रीपाल कोढ़ी हो गया है।" राजा ने कहा।

"क्या, यह क्या कह रहे हो?" निपुर्ण सुन्दरी अवाक्-सी हैरान थी। उन्होंने कहा- "अभी कुछ दिन पहले ही तो वे आये थे। सोने जैसी काया, कामदेव के रूप को हाय कैसा ग्रहण लग गया, कुछ बतलाओ तो", अधीर होकर महारानी बोली। टप्-टप् उनकी आँखों से नन्हें मोती लुढ़कने लगे।

"पता नहीं, कुन्दनप्रभा दीदी भी इसके बारे में कुछ नही बता सकी। उन्होंने लिखा है, श्रीपाल ही नहीं उसके सात सौ सैनिक भी कुष्ठ के रोगी हुए है। उन सबके शरीरों से इतनी दुर्गन्ध आती थी कि हवा को सूँघना भी सहन नही होता था। द्वार के प्रहरी और चम्पानगरी राज्य के लोग इस दुर्भिक्ष हवा को सूँघते ही भाग उठते थे। प्रजा हित को देख कर माँ ने बेटे और बेटे के कोढ़ी लश्कर को अपने देश की सीमा से ही निष्कासित कर दिया है।"

"यह सब कर्मों की लीला है।" महारानी ने अफसोस जाहिर किया, "ओह यह तो बुरा हुआ। अब हमारी मैना का क्या होगा? सुर सुन्दरी तो पहले ही श्रीपाल के लिए अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठी है।"

"यह सब मैना से न कहना, मै कुछ उपाय करूँगा, जिससे मैना श्रीपाल के सपने देखना छोड़ दे। मुझे तो पहले ही डर था। सपने भी कही सच्चे होते है। हम अपनी औकात को भूल कर कोटिभट वंश मे अश्नाई करने जा रहे थे। मुझे श्रीपाल के बारे में सुन कर कर्म और तकदीर पर विश्वास नही रहा। यह सब बेकार की चीजें है। क्या एक धर्म समर्थक जैन धर्म अनुयायी सुन्दर काया वाले युवराज का इस तरह कोढ़ी होना इसका प्रमाण नही है कि संसार में न कर्म है, न धर्म। यहाँ पर तकदीर के लिए रोना पीटना बेकार है। हमें जो मिलता है तदबीर से मिलता है। तकदीर और हमारा बाहुबल ही हमें संसार का हर ऐश्वर्य देता है। अब मेरा ऐसा अटल विश्वास हो गया है।

"नही प्राणनाथ नहीं", निपुर्णसुन्दरी ने राजा को टोका, "ऐसा मत कहो, ऐसा कहने से पहले यह तो सोचो, हमे जो मिला है, वह कर्म से ही तो मिला है।"

पर राजा पहुपाल इससे सहमत नही था, वह तो तदबीर और बाहुबल की ही प्रशंसा करता रहा और धर्म-कर्म करने वालों का उपहास उड़ाता रहा।

रानी, राजा के बदलते हुए विचारों पर चिन्तित थी। राजा पहुपाल ने जैन ग्रन्थों को भी पढ़ना छोड़ दिया और जैन मुनियों का उपहास उड़ाने लगा था।

13

राजा पहुपाल अब जैन मंदिरों में नही जाते थे और न ही राजपरिवार से किसी को जाने देते। वे शाकाहारी नही रहे और न ही वे प्रजा के हित की परवाह किया करते। खजाने मे सोना इकट्ठा करना और बंदूक लिये जंगलों में घूमना तो जैसे उनका नित्य का काम हो गया। जो विलासिता उन्होंने छोड़ दी थी, उसे वे फिर अपना बैठे। आये दिन राज दरबार में नाच-गाने के कार्यक्रम होने लगे। इन कार्यक्रमों में

पिता के साथ बड़ी बेटी सुरसुन्दरी भी शरीक रहती थी। रानी निपुर्णसुन्दरी और छोटी बेटी मैनासुन्दरी राज दरबार में होते नित्य के मनोरंजन से दुखी थी, यह जरूर था कि सुरसुन्दरी की हालत में सुधार हो रहा था।

एक रोज कौशाम्भीपुर का युवराज हरिवाहन राजा पहुपाल से मिलने आया। सुरसुन्दरी उस समय राज दरबार में ही थी। वह हरिवाहन पर मोहित हो गयी। राजा पहुपाल ने सुरसुन्दरी से पूछा, "क्या तुम हरिवाहन से शादी करोगी?" सुरसुन्दरी ने झट से "हाँ" कर दी। राजा पहुपाल ने यह सुन हरिवाहन को भरे दरबार में ही तिलक चढ़ा दिया। यह मैनासुन्दरी को अच्छा नही लगा।

"माँ, पिताश्री अनर्थ कर रहे है।" मैना ने अपनी रानी माँ निपुर्णसुन्दरी से कहा।

"कैसा अनर्थ? क्या वे विलासिता का कोई नया प्रबंध कर रहे है?" माँ ने बेटी से पूछा।

"नही, सुरसुन्दरी की शादी कौशाम्भी के आवारा युवराज से कर रहे है।" मैना ने कुढ़ कर कहा।

"क्या सुरसुन्दरी ने इसका प्रतिवाद नहीं किया?" रानी पूछ रही थी।

"नही, पर मै पिताश्री के फैसले के खिलाफ हूँ। अच्छे बुरे वर को देखना तो पिता का काम है। लड़की तो गऊ जैसी है, जिस खूंटे से बाँधोगे बँध जायेगी। वह बेचारी क्या कर सकती है?"

"पर तुम्हारे पिताश्री तो कह रहे थे, सुरसुन्दरी ने हरिवाहन को स्वयं पसन्द किया है और उन्होंने तो ऐसा निर्णय सुरसुन्दरी के हित के लिए लिया है।"

"सुरसुन्दरी मानसिक रूप से पूर्णतय: स्वस्थ नही है, फिर वह हरिवाहन को हँसमुख और सुन्दर पुरुष के रूप में जानती है। वह अन्दर से कितना घिनौना है, यह तो उसके राज्य की युवा नारियाँ ही बता सकती है, जिनकी पीठों पर उसके नाखूनों के निशान रह जाते है और वे बेबस नारियाँ हरिवाहन के बलात्कार की शिकार होकर भी चुप रह जाती है।" मैनासुन्दरी ने कहा।

"हे आदिनाथ", रानी ने सिर्फ इतना ही कहा और चुप रह गयी। राजा पहुपाल उनकी ओर ही आ रहे थे।

"कैसी हो बेटी", पहुपाल ने मैना से पूछा।

"अच्छी हूँ।" मैना हँस कर बोली।

"क्या तुम जानती हो? सुरसुन्दरी ने कौशाम्भी के युवराज को पसन्द कर लिया है?"

"हाँ, मुझे पता है।"

"बेटी, तुम भी किसी राजा के सुन्दर बेटे को पसन्द कर लो। सयानी पुत्री काल समान होती है।"

"पिताश्री, पुत्री से ऐसा कहना आपको शोभा नही देता। पुत्री को काल समझते हो, क्या आज मैना बदल गयी है या आप बदले है। नारी का शृंगार उसका शील होता है। क्या मै घर-घर जाकर अपना पति तलाश करूँगी। मेरे ऐसा करने से क्या नारी मर्यादाएँ भंग नही होगी? पिताश्री मै सुरसुन्दरी नही हूँ। मैने जैन धर्म के ग्रन्थों को पढ़ा है। जिस नारी में लज्जा या संकोच नहीं होता, वह नारी, नारी नहीं होती। मुझे तो नारी मर्यादाओं की सीमा का भी पता है।"

"बेटी", पहुपाल हँसे। "इसमें शील शृंगार की क्या बात है? मन चाहा राजकुमार ढूँढो और मुझे बता दो, मै तेरी शादी उसी राजपुत्र से करवा दूँगा।"

"पिताश्री, धर्म त्याग कर अधर्म की बातें ना करो। मै अपने आप वर ढूढँगी, आप भी कैसी बातें करते है? क्या यह आपके कुल और शान वाली बात होगी? मै लोक-लाज से डरती हूँ, मै ऐसा नहीं कर सकती। आप तो लोक-लाज के डर को भूल गये हो। आपने नन्दा और सुनन्दा की कहानी तो सुनी होगी। क्या उन्होंने इसका विरोध करके शादी करने से इंकार नही किया था? वर माँगने से तो ब्राह्मी ने भी मना कर दिया था और अर्जिका बन गयी थी। मैने इन सतियों की कहानियाँ पढ़ी है। मै इन सतियों की रीत कैसे छोड़ सकती हूँ?"

"बेटी, धर्म कर्म सतियों के रीति-रिवाज और नारी मर्यादाओं के ढोल पीट-पीट कर गीत गाना बेकार है। मेरी मानो तुम अपना मनपसन्द वर पसन्द कर लो। मै तुम्हे दीप-दीपान्तर या बाहर के मुल्कों में जाने को भी मना नहीं करूँगा। क्या सुरसुन्दरी तुम्हारी बहन नहीं है। उसने भी तो राजदरबार में खड़े होकर कौशाम्भी के युवराज को मुझसे माँगा था। ऐसी बातों में शर्म या अफसोस क्यों करती हो?"

मैनासुन्दरी ने कहा- "पिताश्री सुरसुन्दरी की बात रहने दो। यह

तो कुसंगति की सोहबत का असर है, उसने जिस गुरू से शिक्षा ग्रहण की है, वह खुद पाखण्डी, भ्रष्ट, स्वादु पुरुष है, जो गेरूवे वस्त्र धारण करके ढोंगियों की तरह अपन आपको गुरू माने बैठा है। मेरे गुरू तो श्री मुनि जी है, जो दुर्लभ जैन शास्त्रों के महान ज्ञाता, वक्ता है। वे संयम के कैसे पुजारी है, सुनो वे वस्त्रविहीन रह कर भी अपनी इन्द्रियों पर काबू पाये रहते है और चंचल मन के घोड़ों को आत्मा की रस्सी से बाँध कर रखते है। सर्दी, गर्मी और बरसात की ऋतुएँ भी उनके लिए सामान्य दिनों जैसी है। काया कष्ट पाने के लिए उनके पास अपार साहस है। सर के बालों को भी हाथ से नोच-नोच कर निकाल देते है, मानो मन का बर्तन अपनी वेदना से धो रहे हों। मैने तो अपने गुरूओं से कर्मों की बातें सुनी है। जैन गुरू भी तो जैन ग्रन्थों के आधार पर ही हमें रास्ता दिखलाते आये है। जैन शास्त्रों के अनुसार माता-पिता का फर्ज है कि वे अपनी कन्या की शादी उच्च कुल के सुन्दर, निरोग, सुशील, बलिष्ठ युवक से करे और धन-धान्य से उसको रुखसत करें। बाद में वह अपने पति के साथ सुखी रहे या दुखी, यह सब उसके कर्मों की बात है। आप मेरे लिए कैसा भी वर ढूँढे और उससे मेरी शादी कर दें। मै तो तकदीर और धर्म पर आश्वस्त हूँ। जो मेरी तकदीर में कर्मों ने लिखा है, वही होगा। मै खुद वर ढूँढ कर शादी करूँ और अपने शील पर दाग लगा लूँ, भला यह कैसे हो सकता है?"

"मैना", राजा पहुपाल ने अपनी प्यारी बेटी को डाँट कर कहा- "तू इंकार करके मुझसे तकरार क्यों करती है? मेरा कहा मानो और जाकर कही भी अपना वर पसन्द कर लो, *शील श्रृंगार की बातें* रहने दो।"

मैना आँखें भर लायी। उसने राजा से कहा- "पिताश्री मुझ पर क्यों रोष करते हो। मै आपका हर हुक्म मानने को तैयार हूँ। अगर आप चाहे तो अपना सर और जान भी दे सकती हूँ पर मुझे अपना नारी धर्म प्यारा है। इस धर्म के बदले में मै पूरी दुनिया का ऐश्वर्य भी पाना नही चाहूँगी। धर्म के लिए तो मै हर प्यारी वस्तु ठुकरा दूँगी। पिताश्री सुख-दुख तो सब कर्मों के हाथ में है। *क्या* इन पर भी किसी ने अधिकार किया है?"

पहुपाल हँस पड़े। फिर बोले, "चलो मै ही तुम्हारे लिए वर तलाश कर दूँगा। पर तुम मेरे सामने कर्मों द्वारा सुख-दुख पाने की बात

क्यों करती हो, क्या तुम्हें मिलने वाले सुख, ऐश्वर्य मेरे द्वारा नहीं मिले।"

मैना ने कहा- "पिताश्री इस सारे भूखंड पर नदियों, पहाड़ों और चाँद, सूर्य तक कर्मों का जाल फैला हुआ है। कर्मों के कारण स्वयं भगवान भी समय-समय पर आहत होते आये है। तिर्यंच, नर-सुरासुर और ब्रह्मा, ऋषि हरिहर मुनि सभी कर्मों के मारे हुए है और इधर-उधर कर्मों के बँधनों से मुक्ति पाने के लिए दौड़ते रहते है। कर्मों के आगे बड़े-बड़े योद्धाओं की शमशीर टूट जाती है। क्या रावण और हिरण्यकुश को आप भूल गये, जिन्होंने कर्मों का सामना किया था और वे बेमौत मारे गये। कर्मों से लड़ कर किसी ने क्या पाया है, सुख-दुख तो कर्मों के हाथों में है। हम कितना भी प्रयास करें, पर उनसे बच नहीं पायेंगे।"

मैना की इस दलील पर राजा बहुत नाराज हो गया। वह गुस्से से बोला- "जन्म से आज तक सारा सुख जो तुमने पाया है, वह मैने दिया है और तुम कहती हो कि मेरे कर्मों से मिला है। क्या गुरू मुनिवर ने तुझे यही शिक्षा दी है। मै तेरी तकदीर से हैरान हूँ। तकदीर से कुछ नहीं मिलता, हमें जो मिलता है, वह तदबीर से ही मिलता है।"

मैना बोली- "पिताश्री गुरू का अपमान न करो। कर्म कैसी अजीबो-गरीब बातें कर जाते है, शायद आप नहीं जानते है या जान-बूझ कर भूल रहे है। मैने पिछले जन्म में अच्छे कर्म किये होंगे, तभी मेरा जन्म आपके घर हुआ। पिछले जन्म में मै बुरे कर्म करती तो शायद मेरा जन्म किसी नीच के यहाँ हुआ होता और तब मै सर्दी गर्मी में ठिठुरती तो आप क्या करते? क्या आप उस नीच के यहाँ जाकर मेरी सहायता किया करते, नहीं आप तो राजा है, भला आपको यह सब करना कैसे शोभा देता कि आप किसी नीच के यहाँ जायें और उसकी या उसके बच्चें की परवरिश करें। पिताश्री, मैने जो कुछ भी जन्म लेकर पाया है, वह सब मेरे कर्मों का फल है। मुझे सुख देने का अभिमान न करो। अभिमान तो लंका नरेश रावण का भी नहीं रहा था, वह अपने अहंकार में डूबा अपनी सोने की लंका को खो बैठा था। क्या आप लंका नरेश से भी अपरिचित है, जो अहंकार के कारण प्रभु राम जी के हाथों मारा गया था। मान करना अच्छा नहीं होता पिताश्री, आप मान मत करियेगा।"

मैनासुन्दरी की लम्बी चौड़ी बातों से राजा का पारा चढ़ गया। वह तुनक कर बोला- "मै नहीं मानता सुख-दुख कर्मों की देन है। इंसान के सामने कर्म की क्या औकात है? कर्म इंसान का क्या बिगाड़ेंगे? मैना तुम मुझसे जिद करती जा रही हो। सुनो, मै अब तेरे कर्मों को देखूँगा।"

राजा की मैना से हठधर्मी देख कर वहाँ आकर खड़े हुए मंत्री सुमत प्रकाश से चुप न रहा गया। वह राजा से कहने लगा- "राजन यह आपका घरेलू झगड़ा है और इसके बीच में मेरा बोलना भी मुनासिब नही है, पर मुझे आपकी गुफ्तगू अच्छी नही लगी, इसलिए आपसे कहना चाहता हूँ कि मैना आपकी बेटी है। बेटी से इस तरह तकरार करना आपको शोभा नही देता। मैना ठीक कहती है, दुनिया में कर्म प्रधान है। अहंकार करने वाले रावण का आज कहीं अता-पता नही है। सत्य मार्ग को छोड़ कर जो कुकर्मों की राह पकड़ते है, उनकी अन्तिम समय में गति नहीं होती। धर्म के रास्ते पर विजय फूलों का हार लिए खड़ी रहती है। इसलिए राजन गुस्सा न करो और मैना को क्षमा कर दो।"

राजा ने कहा- "मंत्री मै कर्म और तकदीर का कायल नहीं हूँ। मै तो तदबीर को मानता हूँ। तदबीर के आगे की बात तुच्छ है। मैना तकदीर की बात करती है। कर्मों को ही भाग्य का विधाता माने बैठी है। यह तकदीर की हिमायत कर रही है, मै इसकी तकदीर और कर्म दोनों को देखूँगा।"

मैना भी हँस कर बोली- "राजा आप मेरे कर्मों को क्या देखोगे? उज्जैनी नगरी का साम्राज्य और सुख के ये सब ऐश्वर्य जो आपको मिले है, ये सब आपको कर्मों ने ही दिये है। यह आप चाहे मानो या न मानो, पर मै तो जरूर मानती हूँ कि यह आपके कर्मों का करिश्मा है। मुझे तो कर्मों पर अटल विश्वास है। इसलिए मै तो यही कहूँगी, मुझे जो कुछ मिला है, कर्मों से मिला है। कर्मों की राजा विचित्र गति है। ये क्षण भर में राजा को रंक और रंक को राजा बना देते है। इन कर्मों के रास्तों को कोई बदल दे, अभी तक ऐसा सूरमा पैदा नहीं हुआ। कर्मों की बातें देख लो, राजा रामचन्द्र जी को राजतिलक होने वाला था, दरबार खचा-खच भरा था। रामचन्द्र जी राजतिलक के लिए बैठे हुये थे पर कर्म को यह मंजूर नही था। इसलिए राजतिलक वनवास में बदल गया। ऋदिधारी मुनि लोद का महीना गिनना भूल गये।

वे द्वारिका को बचाने के लिए जंगल में तपस्या कर रहे थे। यादव वंशी सुकुमारों ने उन्हें तंग करके उनके कंधे से अग्निपुद्गल की उत्पत्ति करा दी। अग्नि की भयंकर लपटें द्वारिका को जलाने लगी। श्रीकृष्ण तो अवतार थे, पर फिर भी वे द्वारिका को न बचा सके। अग्नि पर काबू पाने के लिए समुद्र से कहा, तो उसने अपना पेट दिखला कर कह दिया कि मै तो खुद प्यासा हूँ। भगवान श्रीकृष्ण तो लीलाधारक थे पर वे अपनी द्वारिका को बचाने के लिए पानी का बंदोबस्त नहीं कर पाये। राजा राम तो सर्वव्यापी थे। क्या वे सीता की पवित्रता से अनभिज्ञ थे पर वे प्रजा को कैसे बहला सकते थे। सीता को अग्नि परीक्षा देनी पड़ी। यह तो कर्म की ही बात है, जब रावण सीता को चुराने आया तो उसकी रक्षा को कोई सुर या असुर नहीं आया। आदित्य भगवान तो तीर्थंकर थे और मोक्षगामी जीव भी, उनकी सेवा में तो तीनों लोक के वासी खड़े थे पर कर्मों के बंधन आ जाने पर बारह महीने तक उन्हें किसी भी घर से अन्न-जल नहीं मिला। राजा ये कर्म तो बहुत बुरे है, जो टाले नहीं टरते। कितने ही उपाय करो, कर्म की होनी को टाला नहीं जा सकता।''

''मैना, बेटी तू मुझे नसीहत न कर, मुझे तेरी सारी बातें उल्टी लगती है, तू कर्म का निश्चय छोड़ दे। वरना मै तेरी तकदीर को पलट दूँगा।''

''प्राणनाथ, आप तो इसके पिता है। क्या जैन धर्म गुरू के पास इसे पढ़ने भेजने की आपकी चाह नही थी। प्राणनाथ, यह तो वह धर्म है, जिसका असर आये बिना नहीं रहता। हर कोई इस धर्म पर आशिक हो जाता है। आप तो नाहक ही अपनी बेटी पर गुस्सा किये जा रहे है। जिनवाणी पढ़ने से कर्मों पर निश्चय तो हो ही जाता है। अभी यह नादान है। छोटी उम्र की है। फिर भी जिनवाणी पर आस्था रखने वाले झूठी बातों का विरोध तो करते ही है और सच्ची बातों पर अड़ जाते है। यह तो आपकी प्यारी बेटी मैना है। इसे क्षमा करके अपने सीने से लगा लो। क्या ऐसा आपने बचपन में नहीं किया है?''

''बचपन की बातें रहने दो महारानी, जिन बातों पर मैना ने मुझसे तकरार की है, क्या वे सिर्फ हवा में उड़ाने के लिए है। मैना की बातों से तो मेरा दिल छलनी हो गया है। मैना अगर कर्मों और तकदीर को नहीं भूलेगी, तो बाद में पछतायेगी। मै इसके कर्मों को जरूर

देखूँगा।" राजा ने रानी निपुर्णसुन्दरी से कहा।

राजा की तुषार भरी बातें सुन कर मैनासुन्दरी अपने खूबसूरत नयनों में बरसाती बादल इकट्ठे कर लायी। वह अपने नयनों से नन्हें-नन्हें मोती लुढ़काती हुई हाथ जोड़ कर बोली, "राजा आप मेरे पिता है, आप जो चाहें करें। मेरा सर उड़ा दें या मुझे सूली पर लटका दे, या आप मुझे बनवास भेज दें, तो भी मुझे खुशी होगी। मै दुखों से डरने वाली नही हूँ और धर्म-कर्म पर अटल रहने वालों मे से हूँ। अगर मेरे कर्मों मे दुख ही लिखा है, तो मै क्या कर सकती हूँ। जब आप ही मेरे दुश्मन बनना चाहते है, तो मै जमाने से क्या शिकायत करूँगी। मुझे पता है, मेरे पिता के दरबार में धर्म और न्याय के द्वार बंद है। इसलिए मै क्या कर सकती हूँ?" यह कह कर मैना तीर की तरह निकली और अपने कमरे में आ बिस्तर पर गिर कर रोने लगी।

14

राजा पहुपाल क्रोध से पागल हुए घोड़े पर बैठे जंगल की ओर जा रहे थे। आज शिकार पर वे अकेले निकले थे। रह-रह कर वे मैना की बातें याद करते और क्रोध से भर जाते। उनकी आँखों में न जाने कैसा आक्रोश था, रानी और मंत्री के सामने मैना ने उनकी तदबीर जो झुठला दी थी।

"मैना मै तेरे कर्मों को जरूर देखूँगा।" राजा बुदबुदाये, तूने मेरा प्यार देखा है। मेरा प्यार पाकर तू भूल गई है कि मै एक ऐसा राजा भी हूँ, जिसके निर्णय को उज्जैनी साम्राज्य में सर आँखों पर स्वीकार किया जाता है।"

"क्या मेरे आदेश की अवहेलना करके तुमने मेरा अपमान नही किया? उफ, ऐसी बेटी पाने से तो न पाना ही अच्छा था। मेरे द्वार हर ऐश्वर्य पाकर अपने कर्मों का रोना रोती है। क्या तुझे यह नहीं मालुम, मुझसे तकरार करके तुझे जिन्दगी भर रोना सिसकना पड़ेगा।"

वह सोचते रहे और बढ़ते भी रहे। अचानक ही उन्हें जंगल के दाहिने हिस्से में एक साफ मैदान और उसमें लगे सैकड़ों तम्बू नजर आये। यह तम्बू किसके हैं, यह जानने के लिए वे अपने घोड़े को उकसाते हुए उस ओर ही बढते गये।

"राजन!" अचानक ही एक स्वर में उन्हें रोक लिया।

"कौन हो तुम?" एक बलिष्ठ कोढ़ी को अपने सामने खड़े हुए देख कर राजा ने पूछा। फिर खुद ही बोले, "अरे तुम तो श्रीपाल हो! क्या ये डेरे तुम्हारे सैनिकों के है?"

"हाँ, कर्म के कारण हम कोढ़ी हो गये है।"

"कर्म-कर्म-कर्म! तुम भी मैना की तरह कर्म का रोना रोते हो। कर्म ने इसमें क्या किया है?" राजा चहके।

"राजन क्या आपने मेरी सुन्दर काया नही देखी थी?" श्रीपाल ने अफसोस के साथ कहा, उज्जैनी से लौटते हुए हमें कोढ़ हो गया। हममें इतनी दुर्गन्ध है, जिसे मेरी रानी माँ भी न सह सकी और हमें देश से निकाल दिया। हमें किसी राजा ने भी अपने राज्य में ठहर जाने की आज्ञा नही दी। राजा, पहले मै विरक्त था, पर आज जब मै कोढ़ी हूँ अपने और अपनों से प्यार करने लगा हूँ। मेरे अन्दर जीने की लालसा समुद्र की चंचल लहरों की तरह हिचकोले ले रही है। मै जीना चाहता हूँ और जिनसे बिछुड़ा हूँ, उनसे मिलना चाहता हूँ। इसलिए तो मैने आपके जंगल में आकर डेरे डाले है। क्या आप मुझे अपने जंगल में बसे रहने दोगे?"

"हाँ, कोटिभट युवराज, जब तक तुम लोग अस्वस्थ हो, यही पर रहो। तुम्हारें यहाँ रहने से भला मेरा क्या अहित होगा? मेरे राज्य का जंगल तो अनेकानेक औषधियुक्त वृक्षों के अस्तित्व से भरा पड़ा है। जहाँ तुम बसे हो, इसके दायें-बायें तो ऐसे वृक्ष है जो तुम सबकी दुर्गन्ध पीकर भी प्यासे रह जाते होंगे। तुम लोगों के शरीरों की दुर्गन्ध मेरे शहरी अस्तित्व को न छू सकेगी। मै तो पहले ही तुम्हें और तुम्हारे सैनिकों को इन हकीमों जैसे औषधियुक्त वृक्षों के साये में बसाने की योजना बना रहा था, पर तुम कहाँ के लिए कूच कर गये हो, इसके बारे में मुझे कुछ पता ही नही था।"

श्रीपाल हँसा, "राजा कोढ़ियों का पता रखने से आपको क्या मिलेगा? काश, मैने पुनर्जन्म में कोई पाप या अन्याय न किया होता, तो आज मेरी यह हालत नहीं हुई होती, कर्मों के बंधन ना हुए होते तो आज हम सब आपके शरणार्थी न हुए होते।"

राजा पहुपाल को श्रीपाल की कर्मों वाली दलील बुरी लगी। वह अन्दर ही अन्दर कुढ़ा और सोचने लगा, यह श्रीपाल भी कर्मों के

धोखे में है। इसलिए यह तकदीर का रोना रोता है, पर वह इस कड़वी बात को आँख बंद करके पी गया और हँस कर बोला- "तुम शरणार्थी नही, मेरे अतिथि हो। अस्वस्थ रहने तक तुम और तुम्हारे सात सौ सैनिक मेरी व्यवस्था में रहेंगे। औषधि, भोजन और वस्त्रों का मै अभी जाकर प्रबंध कर देता हूँ। मुझे पता है मेरे आदर-सत्कार को तुम अन्यथा न लोगे और अपने मन में हीन भावना न आने दोगे।"

श्रीपाल कुछ कहना चाहता था, पर राजा ने उसे यह कह कर संतुष्ट कर दिया कि मै सदा से तुम्हारा था, हूँ और जो अपनी सहायता करें, उसे स्वीकार करने में संकोच नही करना चाहिए।

श्रीपाल को आश्वस्त करके राजा पहुपाल लौट चले। आज उन्होंने शिकार करने का विचार छोड़ कर अपने और मैनासुन्दरी के वाक्युद्ध के बारे में सोच डाला। श्रीपाल तो मानो उन्हें शतरंज का एक मोहरा मिल गया था। वे श्रीपाल द्वारा मैनासुन्दरी को पराजित करने की योजना बनाने लगे। उन्हें पता था कि जब वे शतरंज के खेल पर मैना से खेलने को कहेंगे, तो वह सहम कर अपने कर्म और तकदीर को भूल जायेगी और अपने पिता की तदबीर को मानने लगेगी।

वह मन ही मन जोरों से हँसे। वाह, क्या शानदार चाल होगी। वे सोचते रहे और बढ़ते रहे। राजमहल के द्वार पर सेवक को अपने प्रिय घोड़े अदच्क्षा की रासों को थमा कर वे राजमहल की सीढ़ियों पर चढ़ते रहे। जब वे अपने विश्राम कक्ष में पहुँचे तो उन्होंने रानी, मैना और सुरसुन्दरी को वहाँ बैठा पाया। राजा को देख कर वे सब खड़े हो गये। राजा ने हँस कर सबसे बैठ जाने को कहा और खुद भी आसन ग्रहण करने लगे।

कुछ देर वहाँ मौन छाया रहा। राजा सोचते रहे कि मैना बेटी के साथ शतरंज खेलना भयंकर तो नही होगा। वे जितना सोचते, उलझते जाते। उन्हें अपनी योजना, जिसको वे कार्यरूप देने को उतावले हुए बैठे थे, कुछ अजीब-सी लगी, पर अहंकार की दासता स्वीकार किये बैठे राजा को अपनी हार सहन नहीं थी और फिर वे यों कहने लगे-

"मैना मै तेरे लिए वर ढूँढ आया हूँ। वह वर तेरे कर्मों और तकदीर का दर्पण है। तुम उससे मिली भी हो। पर सुनो, वह अब पहले जैसा कामदेव पुरुष नहीं रहा, कोढ़ी हो गया है। शरीर से इतनी दुर्गन्ध आती है कि सही नहीं जाती। उसके पास तुम रह सकोगी, मुझे बिल्कुल

भी विश्वास नही आता। शरीर से चूने वाले कोढ़ को देख कर तरस जरूर आता है।"

"प्राणनाथ", रानी निपुर्णसुन्दरी ने कुछ कहना चाहा। "तकद्रीर और तदबीर के संघर्ष में बेटी के जीवन से खिलवाड़ न करो। क्या मेरी मैना के लिए इस भरतखंड में रोगी, कोढ़ी वर ही रह गये हैं। यह तो नादान है, आप क्यों इसके साथ नादानी करते है?"

"रानी तुम हम दोनों की तरफदारी नहीं करोगी। संघर्ष पिता और पुत्री का है और फिर तुम्हारी मैना के पास तो अपनी रक्षा के लिए कर्म और तकदीर दो-दो हथियार भी है।" राजा ने कहा।

मैनासुन्दरी ने हँस कर कहा- "पिताश्री प्रतिद्वंदी के कक्ष में बैठ कर शत्रुओं की तरह लड़ते हो और फिर पिता बनने का हक भी पाना चाहते हो, यह बुरी बात है। आप मेरे लिए कोढ़ी वर ढूँढ कर आये है, मेरे लिए वह ही कामदेव है और मुझे स्वीकार भी है। मैना ने युवराज का अद्वितीय रूप देखा है, ऐसा सुन्दर रूप साधारण पुरुषों में नही होता। वे कोढ़ी हो गये है, तो जरूर इसके पीछे कर्मों की माया रही होगी। आप मुझे डराने में शायद हार्दिक सुख की तृप्ति पाते रहे होंगे, तभी तो कहे जाते है कि उनके शरीर की दुर्गन्ध को मै सह नही पाऊँगी और अपने पति को सिसक कर मरने के लिए छोड़ कर भाग आऊँगी। आपको उन पर तरस भी आता है, शायद इसलिए कि वे आपकी पुत्री के पति और आपके जमाता बनने वाले है।"

"मैना", रानी ने बेटी को डाँटा। "क्या पिता से ऐसे ही बात की जाती है?"

"रानी माँ, आप भी मुझे ही डाँटती है। हर पिता अपनी पुत्री के लिए स्वस्थ वर देखता है फिर पंडितों से कुन्डलियों के आधार पर आने वाले सुख-दुख की जानकारी लेता है और फिर पुत्री से बिना कहे ही वर को पुत्री देने का वचन दे देता है। इसके बाद तिलक चढ़ने की रस्म होती है। खुशी के ढोल नगाड़े बजते है। सगाई का मुहुर्त निकाला जाता है। वर से कहा जाता है कि वह इस शादी की सार्वजनिक घोषणा करने के लिए अपने दोस्तों, संबंधियों और नाते रिश्तेदारों को बारात के रूप में लेकर आ जाये। बैड बाजों का शोर होता है और लड़की का पिता भी अपने प्रियजनों को इकट्ठा करता है। बारात लड़की वालों के द्वार पर आ जाती है। रस्मों और रीति-रिवाजों का दौर पूरा करके वर

कन्या अग्नि को साक्षी मान कर अपने-अपने प्रियजनों की मौजूदगी में एक दूसरे के हो जाते है, पर मेरे लिए यह सब जरूरी नही होगा, तभी तो मेरे पिता उज्जैनी नगरी के महाराजा एक ऐसे व्यक्ति को ढूँढ कर आये है, जो कोढ़ी है। पिताश्री कोढ़ी को मेरा पति मान चुके है। उसे मेरा दर्पण कहते है। मै तो कर्मों पर आश्वस्त हूँ, पिताश्री ने कहा और मैने कोढी को ही अपना पति स्वीकार कर लिया। मैने कर्मों के बनते-बिगड़ते खेलों की जैन ग्रन्थों में कहानियाँ पढ़ी है। मै तो अपनी तकदीर के सुदृढ़ पुल पर पालथी मारे हुए बैठी हूँ।"

"मुझसे तकरार मत करं मैना, तेरे कर्मों और तकदीर की दलीलों को सुन कर मै ऊब चुका हूँ' अगर तुम जिद करोगी तो मै तेरी शादी उसी कुष्ठी से कर दूँगा।" राजा परेशान होकर बोला।

"प्राणनाथ। यह आप क्या कह रहे है?" रानी निपुर्णसुन्दरी ने कहा- "इस भोली लड़की पर कहर क्यों बरपाये जाते हैं?"

"यह लड़की मेरा उपहास करती है।" राजा गुर्राये, "इसकी नजरों में मेरा कोई अस्तित्व नही। मै कुछ भी नही और कर्म, तकदीर सब कुछ है। यह मेरा सारा प्यार और बचपन की लारी भूल गई। परकर्मों को हमेशा याद रखती आई है। अगर यह अपने कर्मों और तकदीर की बात छोड दे, तो मै इसे संसार का हर ऐश्वर्य इकट्ठा करके ला दूँगा।"

"राजा, संसार का हर ऐश्वर्य तो नारी के लिए उसका पति होता है। जो कर्मों से उसे वैसा ही मिलता है, जैसा उसकी तकदीर में लिखा है। आपसे संसार के हर सुख को पाकर मै क्या करूँगी, जब कर्म मेरी तकदीर के विपरित होंगे। श्रीपाल युवराज का कोढी हो जाना क्या कर्मों की कयामत नही है? अब इस घटना को सुन कर तो मै और भी कर्मों पर दृढ़ हो गई हूँ। यह आज की बात है, कल के बारे में हम क्या कहें? क्या हम श्रीपाल की तरह कोढ़ी नही हो सकते? कर्म की मार जब पड़ती है, तो बुद्धिमान व्यक्ति भी पागल हो जाते है। नदी अपना रास्ता छोड़ देती है और पत्थरों से भरे विशाल पहाड़ टूट कर बिखर जाते है। मै कर्मों और तकदीर को भला कैसे भूला सकती हूँ?"

"मैनासुन्दरी", राजा आपे से बाहर होकर बोला, "तू सारी जिन्दगी मरी बातों को याद करेगी और रोया करेगी और तू उस कोढ़ी

शरणार्थी, मौत पाने के लिए गिड़गिड़ाते हुए पति को देख-देख कर अपने कर्मों पर आँसू बहाती रहेगी। तुम्हें फिर कौन चाहेगा, उस अभागे श्रीपाल को उसकी प्रिय माँ ने घर द्वार से ही नहीं अपने राज्य की सीमा से भी निष्कासित कर रखा है और वह दर-दर की ठोकरें खाता हुआ जंगल के दक्षिणी भाग में अपने कुष्ठी सैनिकों के साथ पड़ा हुआ जिन्दगी और मौत की आखिरी साँसे गिन रहा है।"

"क्या कहे मैना?" बस श्रीपाल के कर्मों पर विहँसती रही।

राजा उसे एक रात्रि में निर्णय करके प्रात: मिलने की आज्ञा देकर चला गया।

मैनासुन्दरी बहुत देर सोच-विचार में पड़ी रही। उसने एक बार अपने गुरू श्री मुनिवर से मिल लेना उचित समझा। घोड़े पर चढ़ी और जंगल की ओर दौड़ चली।

15

"युवराज़ तुम", जंगल के प्रवेश द्वार पर ही मैना की श्रीपाल से मुलाकात हो गयी।

युवराज श्रीपाल ने मैनासुन्दरी को देखा और चेहरा दूसरी ओर कर लिया।

वह चलने लगा तो मैना ने कहा-

"क्या तुम मुझे पहचानते नहीं हो?"

"अब तो मै स्वयं को भी नही पहचानता हूँ। साम्राज्ञी मैना, इन बुरे दिनों में कर्मों की मार से मै सब कुछ भूल गया हूँ।"

"नही युवराज, भूलने से कर्म कम नही होंगे। हमें सब कुछ याद रखना होगा और हाँ, धर्म को भूल कर हमें कुछ प्राप्त नही होगा। धर्म भी तो याद रखने और मानने के लिए है।" मैना ने कहा।

मैना की बात पर श्रीपाल धीरे से हँसा। फिर बोला, "कैसी हो?"

"अच्छी हूँ। जन्म-जन्म के साथी की प्रतीक्षा में बैठी हूँ।"

"नही मैना, इस जन्म में शायद हमारा मिलन नहीं होगा।"

"क्यों नहीं होगा? मैने तो आपसे कहा था, जब आपने मुझे अपनी चाहत के प्रेम-पुष्प भेंट करके जन्म-जन्म साथ रहने वाली बात

कही थी, कि मुझे माया से प्राप्त कर लेना। यह कोढ़ जो आप शरीर पर लिए घूमते है, आपकी माया ही तो है। जो कर्म के साथ तकदीर के रास्ते पर दौड़ रही है। कर्म और तकदीर के विरोधी पिता ने मेरी शादी आपसे करने की घोषणा भी कर दी है।"

"नही मैना, मै अपने पापों की सजा तुम्हें नही दे सकता। मै तुमसे शादी करके तुम्हें जीवन भर सिसकने नही दूँगा। तुम राजमहलों की रहने वाली राजकुमारी कोढ़ियों की बस्ती में कैसे रहोगी? यहाँ तो पक्षियों का रहना भी दूभर है, इन्सानों की तो बात ही और है।"

"युवराज, हर जन्म में साथ रहे हो। इस जन्म में ठुकरा कर चल दोगे, मै नही जानती थी।" मैना ने कहा, "मैने तो जिद्दी पिता के कहने से मन ही मन आपको पति मान लिया है। मै अगर विवाह करूँगी तो तुमसे ही करूँगी।"

श्रीपाल ठगा-सा खड़ा रह गया। उसे न सूझा कि वह मैनासुन्दरी से क्या कहे? मैना को क्या वह कम चाहता था, पर यह तो पहली बात है। आज तो वह कोढ़ियों की पंक्ति में सबसे आगे बैठा हुआ है और भाग्य की तस्वीरों को देखने में मग्न है।

मैना लौट रही थी, लौटते हुए उसने कहा था- "युवराज मै और तुम दोनों कर्मों के भक्त है और अपनी तकदीर के भरोसे बैठे हुए है। अगर शादी के बाद आप कोढी हो जाते तो क्या मै आपकी पत्नी नही कहलाती। कल मै भी कोढ़ी हो सकती हूँ। कर्मों की लीला कौन जानता है?"

"ऐसा मत कहो, ऐसा मत कहो मैना, मै तुम्हें कोढ़ी कहना भी क्या सुनना भी नही चाहता, होने की बात रहने दो। होने को तो यह भी हो सकता है। कल मै कोढ़ी न रहूँ और राज संपदा का भोग करूँ, भरतखंड में मेरी शमशीर का सभी छोटे-बड़े राजा लोहा मानें, पर अब यह सब कल्पना मात्र है। अभी इसके बारे में क्या कहा जा सकता है?" श्रीपाल यह कह कर आँखें भर लाया और छलछलाते नयनों से उदास हुआ मैनासुन्दरी को देखने लगा।

मैनासुन्दरी लौट रही थी। श्रीपाल ने देखा उसका घोड़ा श्री मुनि वीर के आश्रम की ओर जा रहा था।

श्री मुनि वीर के चरणों में प्रणाम करके मैनासुन्दरी सिसकने लगी। अन्तर्यामी मुनि ने कहा, "युग-युग से सत्य और असत्य लड़ते

आये है। पाप और पुण्य जूझते रहे है। तकदीर और तदबीर का युद्ध तो सदियों से चलता आया है। रोकर कर्मों का अपमान न करो, राजकुमारी। जाओ कर्म की जीत होगी।"

"मुझे शक्ति दो मुनिवर", मैनासुन्दरी ने भर्रायी हुई आवाज में कहा। "राजा मेरी परीक्षा ले रहा है।"

"मुझे पता है। यह राजा की नही कर्मों द्वारा ली जाने वाली परीक्षा है। यह राजा नही, कर्म चाहता है कि तुम कोढ़ी युवराज की अर्धांगिनी बनो।"

"मुनिवर, मै कर्म रूपी संघर्ष के अन्त तक जीवित रहूँ, यह आशीर्वाद चाहती हूँ।"

गुरूदेव हँसे। "बड़ी भोली हो। क्या इन अस्थायी कर्म बंधनों को तुम जीवन का निर्णय समझ बैठी हो। यह तो क्षण मात्र के दुखों का एक सिलसिला है, जो तुम्हें आहत करने चला आया है।"

शंका का समाधान हो गया था, मुनिवर के चरणों में नतमस्तक होकर मैना घोड़े पर चढ़ी।

वह अब बहुत खुश थी। उसके मन में भावी सपनों की अनगिन उमंगे नाच रही थी। उसे लगा मानो वो सब कुछ पाने जा रही हो, जिसकी उसने कभी कल्पना की होगी। कर्मों और तकदीर की शतरंजी गोटों को वह मन की थैली में इकट्ठा करने लगी थी।

16

प्रात: होते ही सूर्योदय होने से पूर्व राजा पहुपाल ने मैनासुन्दरी को कर्मों पर अटल देख कर घोषणा कर दी कि वह मैना का विवाह कुष्टी श्रीपाल से करेंगे। यह सुन कर रानी निपुर्णसुन्दरी मूर्छित हो गयी और सुरसुन्दरी हँसने लगी। उसके हँसने का कारण तो श्रीपाल को सिर्फ पति के रूप में न पाना था, पर मैना ने राजा की इस घोषणा पर चैन की साँस ली। वह तो ऐसा ही चाहती थी।

मंत्री ने राजा से कहा, "राजा आप गजब करते है। लाल सिन्धु में फैंक रहे हो। ऐसा करने से आपका कुल कलंकित होगा और आपके दरबार की भी रौनक घटेगी। बेटी पर सितम करना बुरी बात है। आप

तो धर्म और न्याय दोनों का खून कर रहे है। मैनासुन्दरी तो पूनम के चंदा जैसी है और कहाँ वह कोढ़ी श्रीपाल, जो अपनी दुर्गन्ध से लोगों को परेशान करते आए हैं। आप सोचते विचारते नही है। देखो, पूरी दुनियाँ में आपका अपयश फैलेगा।"

"मंत्री जुबान को लगाम दो। मैने जो सोचा है, वही होगा। अगर ऊपर से आदीश्वर भी आ जायें, तो भी मैं अपना फैसला नही बदलूँगा। मुझे तो अब मैना के कर्मों को देखना है।"

मैना ने अपने पिताश्री की बात पर कहा- "राजा मै अपने कर्मों पर मेरू के समान अडिग हूँ। आप मंत्री चाचा को क्यों डाँट रहे है? मै आपकी आज्ञा के मुताबिक कोढ़ी से ही विवाह करने को तैयार हूँ।"

राजा ने कहा- "मै तेरी तकदीर पर हैरान हूँ। भला तकदीर भी कुछ होती है?"

मैना हँस कर बोली, "क्या हनुमान जी के आगे रावण की माया नहीं जाती रही थी। रावण की लंका मे प्रवेश करके हनुमान ने रावण की तदबीर को नही बदला था।"

"बेटी शमशीर के आगे लाखों लोगों को मैंने मरते-कटते हुए देखा है। कायर सदा रणवीरों के हाथों मारे जाते है।"

"सुग्रीव की तदबीर रघुवीर के आगे कहाँ चली थी? क्या लक्ष्मण की तकदीर ने लंका नरेश की शक्ति को नही तोड़ा था?"

"बल के अद्वितीय स्वामी हाथी को जंजीरों में जकड़ कर रखना क्या मनुष्य की तदबीर नहीं है?"

मैना ने कहा, "भगवान महावीर स्वामी के आते ही क्या चंदनबाला की मोटी-मोटी लोहे की साँकलें नहीं खुल गई थी। सर के मुंडे केशों की जगह सुन्दर चमकीले लम्बे-लम्बे केश नहीं उग आये थे और वह सोलह शृंगार किये श्री वीर के सामने खड़ी थी। क्या यह कर्म और तकदीर का करिश्मा नही था? श्रीकृष्ण तो भगवान के स्वरूप थे पर वे जरद कुमार के बाण से घायल होकर गिर पड़े थे। वे लहुलुहान हुए भाई बलराम को पुकार रहे थे। मौत आने के समय गिरधर कितने बेबस और असहाय थे, क्या यह सब आप नहीं जानते है, या यह कर्म का दिया हुआ दण्ड नहीं था?"

"मैना तेरी बातों में मुझे बगावत की बू आती है। अभी तुममें बचपना है। तुम कर्मों की दासी हो कर रह गई हो। मुझे पता है, तू

कोढ़ी पति के साथ जंगल दर जंगल भटकती फिरेगी। कोई तेरी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखेगा।"

"पिताश्री आप ऐसी बातें सुना कर मैना को क्यों डराते है? मुझे पता है आप और मै सभी कठपुतली की तरह कर्मों के हाथों और उसके इशारों पर ही नाचते आये है। यहाँ क्या होना है, यह निर्णय हमारा नहीं, कर्मों का है। आप भी तो वही कर रहे है, जो कर्म चाहते है। विधना के लेखों को हम उपायों से कैसे मिटा सकेंगे? रानी श्रीमति की बात सुनो, उसकी सास ने नाराज होकर उसके गले में जिन्दा सर्प डाल दिया था, जो गले में जाकर फूलमाला बन गयी थी। राम जी की सीता को अग्नि प्रवेश करते ही वहाँ चारों ओर जल ही जल हो गया था। सुभद्रा सती को जेठ और जिठानी ताने दिया करते थे और कच्चे सूत द्वारा छलनी मे पानी भरवाया करते थे। एक रोज उसके भी कर्म-द्वार खुल गये। भरी सभा में द्रौपदी का चीर उतारा गया था। हजारों राजा और राजकुमार बैठे हुए थे पर वे भी द्रोपदी की सहायता नहीं कर पाये। द्रोपदी की सहायता करने के लिए क्या कर्मों ने उसका चीर नही बढ़ाया था। सती अजंना को उसकी सास ने घर से निकाल दिया था। अंजना के माँ-बाप, भाई बहनों ने भी उसे पनाह नहीं दी, पर शुभ कर्मों के उदय हो जाने से जंगल में उसको अपना मामा मिल गया, जो उसे साथ लिवा लाया। सो हे पिताश्री, मेरे साथ मेरे कर्म है। पति कुष्टी है तो क्या हुआ? वह पहले की तरह कामदेव बनेगा। मै दुख नहीं, सुख भोगूँगी। देख लेना कर्म उदय होने में देर नहीं लगेगी।"

17

राजा ने मैना से कुपित होकर निश्चय कर लिया कि वह मैना की शादी श्रीपाल से ही करेगा पर इससे पूर्व उसने सुरसुन्दरी की शादी की तैयारी की। उज्जैनी नगरी को दुल्हन की तरह सजाया गया।

कौशाम्भी का युवराज जब बारात लेकर आया तो उज्जैनी में चर्चा फैल गयी कि दुल्हा शराबी है। हरिवाहन थोड़ी पर नशे में धुत्त हुआ बैठा था। उसके हाथ में शराब की बोतल थी, जिसे वह मुँह से लगा कर पीता और हो हो करके हँसता। बाराती भी खूब पियक्कड़

थे। वे शराब पीकर उज्जैनी की सड़कों पर अश्लील नाच गाना कर रहे थे। यह देख कर उज्जैनी की औरतों ने डर कर अपने घरों के दरवाजे बंद कर लिये। शराबी बारातियों ने पूरे दिन सड़कों और जनवासे (बारात घर) में दिल खोल कर हुल्लड़बाजी की। नगर के जो स्त्री, पुरुष उन्हें सड़कों पर मिल जाते, उनको वे परेशान और बेइज्जत करने लगते। कुछ अमीर, उमरावों ने इसकी शिकायत राजा से की। राजा ने खिन्न होकर बारातियों की सेवा मामूली तौर पर की और जल्दी-जल्दी ब्याह-शादी के नेगों को पूरा करा कर सुरसुन्दरी को रूखसत कर दिया। विदा होते समय सुरसुन्दरी, माँ और मैना के गले लग कर खूब रोई और फिर चली गई। रानी निपुर्णसुन्दरी को लगा कि वह आज आधी रह गयी है। सुरसुन्दरी ससुराल जो चली गई थी।

सुरसुन्दरी ससुराल में आठ रोज भी सुख से न रह सकी। शराबी और औरतखोर हरिवाहन ने उसे शारीरिक और मानसिक दोनों तरह से जी भर कर पीड़ित किया। हरिवाहन के अत्याचारों से तंग आकर सुरसुन्दरी एक रोज घोड़े पर सवार होकर घर से भाग निकली और लौट कर उज्जैनी आ गयी। बेटी ने पिता से अपनी दुख भरी कहानी कही, जिसे सुन कर राजा आग बबूला हो उठा। हरिवाहन सुरसुन्दरी को मनाने आया। उसने राजा, उसके परिवार और सुरसुन्दरी से क्षमा माँगी पर सुरसुन्दरी ने कौशाम्भी जाने से साफ मना कर दिया। हरिवाहन अपना-सा मुँह लिये हुए कौशाम्भी लौट गया।

लाखों दिनारों को सुरसुन्दरी की शादी में लुटा कर और सुरसुन्दरी की आधी जिन्दगी देख कर राजा दुखी रहने लगा पर फिर भी वह मैना पर अपने मन में बैठे पसरे क्रोधरूपी शैतान को न भगा सका। एक रोज उसने अपने राजकुल के पंडित को बुला कर मैना के विवाह का मुहुर्त निकालने को कहा।

पंडित जी जल्दी से मैनासुन्दरी के विवाह का मुहुर्त निकाल दीजिए।

"राजा कन्या की शादी जल्दी क्यों करना चाहते हो? क्या कोई विशेष बात है?"

"पडित जी, मै मैना बेटी की शादी आज ही करना चाहता हूँ।"

"फिर मुझसे मुहुर्त निकलवा कर क्या करोगे? मुहुर्त निकाले तो

आप खुद ही बैठे हुए है।" पंडित जी बोले।

राजा खुशामदी स्वर में बोला, "हिसाब लगा कर तो देख लो, शायद मुहुर्त आज का निकलता हो, शुभ कार्यों में देर नहीं करनी चाहिए, इसलिए मै विवाह जल्दी कराने के पक्ष में हूँ।"

पंडित जी बोले- "अच्छा, वर का नाम, पता और पूरा परिचय दीजिए।"

"नाम श्रीपाल है, वो सेठ है न साहुकार है। रोगी है, कुष्ठ से लाचार है। घरबार कोई नहीं, जंगल में पड़ा बेजार है।"

"महाराज आप ऐसे व्यक्ति को अपनी फूल-सी बेटी सौंपना चाहते है?" पंडित जी घबराये। "आप होशोहवास में तो है?"

"हाँ, पंडित जी। हम होशोहवास में है।" राजा ने कहा, "आप मुहुर्त निकालिये।"

"हे राजन, लगता है तेरे से तेरी तकदीर और कर्म दोनों ही रूठे हुए लगते है। शायद तुम नही जानते हो कि जो अपनी कन्याओं को कष्ट देते है, उन्हें हर जन्म में दुख भोगना पड़ता है। शास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है। लगता है तुम अपने वंश को ऐसा करके कलंकित करने पर तुले हुए हो, जो अपनी परी जैसी खूबसूरत बेटी का एक कुष्टी के साथ विवाह करना चाहते हो। पिता का यह धर्म है कि अपनी बेटी को उसके योग्य वर देख कर उसकाँ विवाह करे। मैने बहुत से कठोर पिता देखें है, पर जैसे तुम हो, ऐसा नहीं देखा।"

राजा ने कुद्ध होकर कहा- "पंडित जी दार्शनिक बन कर उपदेश ना दो, मुहुर्त बता कर अपना रास्ता पकड़ो।"

पंडित जी उंगलियों पर कुछ हिसाब लगा कर, "मुहुर्त तो आज का अति श्रेष्ठ है। पर राजा तेरा यह कार्य पाप भरा है। मै अपनी दक्षिणा छोड़ कर तेरे पापी दरबार से जाता हूँ।" पंडित जी यह कह कर चले गये।

पंडित जी के चले जाने पर मंत्री ने राजा को फिर समझाया पर राजा नही माना। कुबुद्धि में फँसा हुआ राजा मंत्री पर भी खफा हो गया। मंत्री ने उससे कहा, "राजा तकदीर से लड़ना अच्छी बात नहीं हैं। राजन, यह उज्जैनि में आज सर्वविदित है कि आप बेटी से बेतुकी लडाई लड़ रहे है। मैना तो आपकी बेटी है, वह नारियों का कुल आभूषण है। अगर तकदीर और कर्मों की बात करती है, तो क्या बुरा

कहती है? नारी तो क्षमा की पात्र है, क्या आप मैना को नारी समझ कर भी क्षमा नहीं करेंगे? राजा सतियों को सताना ठीक नहीं होता, यह तो ऐसा पाप है जिससे आप नरक जाने का रास्ता बना रहे हैं।"

राजा पहुपाल ने मंत्री की बात सुनी-अनसुनी कर दी और श्रीपाल को जंगल से बुलवा भेजा। उसके साथ सात सौ सैनिकों को भी बुलाया गया था।

कितनी अजीब बात है। कर्मों के खेलों से भला कौन बचा है? क्या श्रीपाल ने कोटिभट वंश में यौवन अवस्था में ऐसी कल्पना की होगी कि वह कोढ़ी होगा और अपनी जन्म-जन्म साथ देने वाली मैना को ब्याहने कोढ़ के दर्द से कहराते हुए, गिरते-पड़ते उज्जैनी नगरी के तोरण द्वार तक पहुँचेगा। कैसी-कैसी कर्मों की लीला है, क्या उसने अपनी शादी की ऐसी कल्पना की थी? वह तो सोचा करता था कि उसकी शादी धूम-धड़ाके से होगी। दुनिया भर के राजकुमार, जिन्हें वह जानता-पहचानता है, उसकी शादी में शरीक होंगे। माँ कुन्दनप्रभा, उसके स्वर्गीय पिताश्री के स्थान पर चम्पानगरी से उज्जैनी राज्य तक सोना बरसाती हुई बारात के आगे-आगे चलेगी।

श्रीपाल को माँ कुन्दनप्रभा याद आने लगी। वह आँखें भर लाया और माँ की यादों में कराहते हुए सुबकने लगा।

18

कर्म के बंधनों का प्रभाव कुछ कम हो गया था। श्रीपाल और उसके सात सौ सैनिकों के शरीरों से अब तेज दुर्गन्ध के झोंके नहीं आते थे। पर कोढ़ अभी वैसा ही था। शरीर पर जगह-जगह जख्मों के निशान थे। कुछ वीरों के शरीर से कोढ़ पानी की शक्ल में गिर रहा था। श्रीपाल और उसके वीरों के चेहरों पर कोढ़ की काली छाया ने डरावनापन पैदा किया हुआ था। उज्जैनी नगरी के निवासी श्रीपाल और उसके सैनिकों को देखते तो रोने लगते, कामदेव की काया वाले युवराज को यह क्या हो गया है, वे समझ नहीं पाते थे। धार्मिक प्रवृति के लोगों को पता था कि यह श्रीपाल और उसके सैनिकों के पुनर्जन्म का पाप है, जो कोढ़ की शक्ल में उभर आया है। पाप और पुण्य का खाता जब तक बराबर नहीं होगा, तब तक हमारे कर्म हमें सताते ही

रहेंगे। कुछ लोग कहते, विश्वास न हो तो युवराज श्रीपाल और उसके सात सौ सैनिकों को देख लो। जो अपने पापों के सागर में सर से पाँव तक डूबे हुए हैं।

"श्रीपाल और उसके वीरों के शरीरों से आने वाली तेज दुर्गन्ध आज कहाँ है?" राजा ने सोचा, "क्या यह मैना की जिनवाणी, कर्मों या तकदीर का चमत्कार तो नहीं है। पर मैना तो अभी श्रीपाल की पत्नी भी नहीं बनी है।"

विवाह मंडप तैयार करो। राजा ने कहा और राजा के डर दहशत से ग्रस्त राज परिवार के स्त्री पुरुष विवाह की रस्मों को शाही परिवार के रीति-रिवाजों मुताबिक पूरा करने लगे। रानी निपुर्णसुन्दरी का बुरा हाल था, वह पहले ही सुरसुन्दरी का दर्द सीने में लिऐ हुए बैठी थी और आज मैना को देख कर उसका कलेजा मुँह को आता था। वह भय मिश्रित नजरों से कभी फूल-सी कोमल मैना को देखने लगती, तो कभी बदसूरत, भयंकर चेहरे वाले युवराज श्रीपाल को, जो कोढ़ से ग्रस्त हुआ विवाह मंडप पर बैठा कराहता जा रहा था।

पंडितों को भी राजा का यह कुकृत्य बुरा लगा, पर राज आज्ञा की अवहेलना करना उनके बस की बात नहीं थी। जैन रीति के अनुसार श्रीपाल और मैनासुन्दरी का पाणिग्रहण संस्कार पूरा कर उन्हें उठने को कहते हुए पंडित जी के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। श्रीपाल और मैना अग्नि की साक्षी में सात फेरे ले रहे थे।

मैना श्रीपाल की शादी हो गई। दुल्हन बनी मैना ने गर्व से सर उठा कर अपने पिताश्री राजा पहुपाल को देखा।

तदबीर का चहेता राजा पहुपाल मैना से आँखें न मिला सका।

"मैना, यह क्या हो गया मैना?" राजा का मानो स्वप्न टूटा, वह आँखें भर लाया। "ओह, मैने तुम्हें कुष्ठी से ब्याह दिया।"

"पिताश्री, मेरे सुहाग को गाली मत दो। वे अब कुष्ठी नहीं मेरे कामदेव पति हैं।"

मैना, प्यार और दर्द की बौछार करती रानी ने मैना को अपने अंक में समेट लिया।

"दीदी", सुरसुन्दरी ने तड़फ कर कहा, "अनजाने में अगर मै कुछ कह गयी हो, तो मुझे क्षमा कर देना।"

"बड़ी दीदी, मुझे तुमसे हमदर्दी है। मैना ने सुरसुन्दरी के

कंधे पर हाथ रखा। मेरी फिक्र न करो, मैं अपने जैन धर्म के प्रताप से और जंगल की जड़ी-बूटियों से अपने सौभाग्य के कष्टों को दूर कर लूँगी। मुझे मानव को स्वास्थ्य करने वाले मंत्रों का उच्चारण भी आता है पर तुम्हारे उजड़े हुए दाम्पत्य जीवन का मुझे सदा अफसोस रहेगा।"

मैना की बातों पर सुरसुन्दरी सिसकने लगी।

सुरसुन्दरी, यह तो तेरे मेरे कर्मों ने हम बहनों की परीक्षा ली है। मैं अस्वस्थ पति की पत्नी हूँ और तुम शराबी अत्याचारी की, तुम्हारे पति सुख ऐश्वर्य के स्वामी होकर भी तुम्हें वेदनाओं का उपहार देते हैं और मेरे पति मुझसे असीम प्यार करते हुए भी मुझे देख कर तिल-तिल जल रहे है। वे मुझे हर सुख देने वालों मे से हैं, पर साधनहीन रोगी बने बैठे हैं, कुछ कह नही पाते, कसमसा कर रह जाते हैं।

सुरसुन्दरी ने मैना की बातों को सुन कर पास खड़े श्रीपाल को देखा। श्रीपाल मंद-मंद हँसे और सुरसुन्दरी की ओर देख कर अपने दोनों हाथ जोडने लगे।

"चलो प्राणनाथ", मैना ने श्रीपाल से कहा। "इस रंगमहल में मेरा दम घुट रहा है। चलो, मुझे यहाँ से ले चलो।"

मैना की यह बात सुन कर राजा मानो कल्पना के परकोटे से गिरा। वह दौड़ा और मैना का रास्ता रोक कर खड़ा हो गया।

"राजा, अब क्या चाहते हो?" मैना पूछ रही थी।

"यह सब अनर्थ हो गया, हाँ यह तो अनर्थ हुआ है। यह कैसे हुआ, मुझे स्वयं को भी पता नही है? मुझे क्षमा कर दो बेटी, ये तो मानो ऐसे हुआ है, जैसे मैंने अपने हाथों तुम्हारी हत्या की हो।" राजा सिसकने लगा, गिड़गिड़ाने लगा।

"पिताश्री, आपने कुछ नही किया, यह जो भी हुआ, सो यही होना था। यह तो कर्मों ने खुशनसीबी दी है, जो मुझे कोटिभट वंश का राजपुत्र पति के रूप में मिला है।"

"पर तुम्हारा पति तो कोढ़ी है?" राजा हकलाया।

"पिताश्री, आपने इनका शरीर देखा है, दिल को भी देख लो, जिसमें प्यार और ममता का सागर भरा हुआ है।"

"बेटी, कोढ़ी बस्ती और बियावान जंगल में तुम कैसे रहोगी?" राजा पूछ रहा था।

"पिताश्री यह तो शादी होने से पहले सोच-विचार करने की

बात थी। अब क्या पूछते हो? रही जंगल में कोढ़ियों के बीच रहने वाली बात, सो पिताश्री मेरा रक्षक मेरा पति है। जो मुझे प्यार से रखेगा और मेरी रक्षा भी करेगा।" यह कह कर मैना चलने लगी, तो रोकर दौड़ती आती हुई रानी मैना से लिपट गयी।

"माँ, क्यों रोती हो? क्यों अपने, मेरे कर्मों को जानबूझ कर धोखा दिये जाती हो। माँ, हम सब तो कठपुतली मात्र हैं। यह सब तो होना ही था। हाँ, यह सब कर्मों ने चाहा था, तो मैंने भी चाहा था? युवराज तो मुझे जन्म दर जन्म मिलते रहे हैं। कोढ़ी हो जाने से क्या हम अपना प्यार या जिन्दगी भर साथ रहने का फैसला बदल देते, नहीं माँ नहीं, यह तो मेरे लिए एक ऐसा आनन्द है, जिसे मै सदा याद रखूँगी।"

"क्या तुमने अपने पिताश्री को क्षमा कर दिया है।" रानी पूछ रही थी।

"माँ, मैंने तो किसी को भी दोषी नही माना है। फिर क्षमा करने वाली बात कहाँ रह जाती है?"

"अगर तुम चाहो तो पति और पति के लश्कर के साथ उज्जैनी में रह सकती हो। यहाँ सम्पन्नाता भरे साधन है। तुम्हें जंगल में रहने से बहुत से कष्ट होंगे।" रानी कह रही थी।

मैना हँसी, माँ उज्जैनी नगरी के वैभव और साधन तुम्हें, पिताश्री और सुरसुन्दरी को ही मुबारक हों। मै तो पति के जंगल में लगे डेरे में ही खुश रहूँगी। छत्तीसों प्रकार के भोजन रंज में पाने की अपेक्षा स्वाभिमान से खुशी में मिली रूखी रोटी खाने में असीम सुख मिलता है। माँ, तुम और पिताश्री अपनी मैना का कन्यादान कर चुके हो, अब मैना को रूखसत करो।"

"हाँ, मैना तुमने ठीक कहा है", राजा विहँस कर बोला और रास्ता छोड़ कर दीवार की ओर बढ़ गया। मैना ने देखा, राजा दीवार पर अपना सिर मार-मार कर पश्चात्ताप कर रहा था, रो रहा था। जाती-जाती मैना यह सब देख कर ठिठकी और चल कर पिताश्री राजा के पास आई-

"अब्बू, मेरे अब्बू, मेरे घोड़े अब्बू, मैना ने पीछे से राजा के कंधे पर हाथ रख कर बचपन की भाषा दोहरा दी।" राजा तेजी से घूमा और मैना को बाँहों में भर रोने लगा।

मैना भी रोने लगी। अंतिम समय में विदा होने के इस रस्मों-रिवाज पर उसे भी तो कुछ रोना-धोना था। दोनों आँखों की भाषा में एक दूसरे से अपनी अपनी बातें कहे जाते थे और रोये जाते थे।

बाप बेटी बड़ी देर तक रोते रहे और गिले-शिकवे दूर करते रहे। रानी देख रही थी, राजा अपनी जोर जबरदस्ती के गुनाह में मरा जा रहा था और मैना अपने पिताश्री को बचपन की तोतली भाषा में पुकारे जा रही थी।

"अब्बू, अरे अब्बू मुझे जाने दे अब्बू। मिलाई का वक्त पूरा हो गया।" मैना ने प्यार भरी आवाज में कहा।

"नही", राजा ने सिर हिला कर साफ मना किया।

"अब्बू, अब मै तेरी नही रही। तुमने मुझे अपने जमाता को दान कर दिया है।"

"बेटी का रिश्ता तो है।"

"सो तो है और रहेगा भी, पर अधिकार बदल गये है। मुझे पत्नी धर्म का भी पालन करना है।"

"पर तेरा अब्बू कैसे रहेगा?" राजा ने पूछा।

"अब्बू मुझे पता है, तू मुझे बहुत चाहता है। अब्बू मै तुझसे रोज मिला करूँगी। हाँ जंगल के द्वार पर मैना अपने अब्बू की हर रोज प्रतीक्षा किया करेगी। बोलो आया करोगे न अब्बू, मैना पूछ रही थी। उसके मोटे-मोटे खूबसूरत नयनों से प्यार की गंगा बहे जाती थी।

"आया करूँगा।" बच्चों की तरह अब्बू ने, एक बाप ने या एक अड़ियल राजा ने सर हिला कर हामी भरी।

बस, इसके बाद मैनासुन्दरी श्रीपाल के पल्ले से बंधी अपने राजपरिवार को रोता बिलखता हुआ छोड़ कर जंगल की ओर चली गयी।

19

दिन निकला ही था। मैना ने अपने डेरे के द्वार पर घोड़े पर चढ़े अपने पिताश्री राजा को खड़े देखा।

"आओ पिताश्री आओ", मैनासुन्दरी ने अपने पिता के स्वागत में घास की कुर्सी बिछा दी।

"पिताश्री नहीं, मुझे अब्बू कहो। मैना मै तेरा वही अब्बू हूँ, जब तुम नन्ही-सी थी और मुझे घोड़ा बना कर मुझ पर सवारी किया करती थी। जब तेरा घोड़ा थक जाता था, ठिठक जाता था, तो तुम अपने घोड़े की पीठ थपथपा कर कहती थी, चल मेरे अब्बू घोड़े चल और घोड़ा था कि कमरे में सरपट दौड़ने लगता था।"

"हाँ-हाँ, मुझे याद है।" मैना ने भरी हुई आँखों से हँसते हुए कहा।

"एक बार जब तुम बीमार थीं, तेरा अब्बू तेरे पास हर दम बैठा रहता था। तेरा अब्बू भोजन नहीं करता था, सोता नहीं था, तुझे पता है तेरा अब्बू रात-दिन पूरे चौबीसों घंटों में क्या किया करता था?"

"नहीं, मुझे नहीं मालूम।" टप्-टप्-टप् आँसू बहाते हुए मैना ने मना किया।

"तेरा अब्बू रोया करता था। भगवान की खुशामद किया करता था कि मेरी मैना का दुख मुझे दे दो, चाहे इसके बदले तू मेरा रनवास, मेरे प्रिय घोड़े, मेरे सोने, हीरे-पन्नों का खजाना, साम्राज्य और स्वर्ण मुकुट सभी कुछ ले ले, पर तुम फिर भी ठीक नहीं हुई, तो फिर तेरे अब्बू ने भगवान से पूछा था कि क्या मेरी मैना की उम्र कम है? अगर उम्र कम है, तो मेरी सारी उम्र मैना के नाम लिख कर मेरी मैना को ठीक कर दे। इसके बाद मैना बीमार नहीं रही और अब्बू को बुखार चढ़ आया। वह बीमार होकर बिस्तरे से जा लगा। मैना खुशी में किलकारी मारती दौड़ा करती और अब्बू था बिस्तरे पर पड़ा कराहता रहता।"

"फिर क्या हुआ अब्बू?" सिसकती हुई मैना जानना चाहती थी।

"अब्बू की बीमारी बढ़ती जा रही थी। अब्बू की हालत खराब थी। सुन्दर चेहरा काला स्याह पड़ गया था। आँखें अन्दर गड्ढों में जा धँसी थी और अब्बू को बार-बार खाँसी आती थी। दर्द से परेशान अब्बू बिस्तरे से हिल-डुल नहीं पाता था और अपने हाथों को धौंकनी की तरह चलते हुए सीने पर रखे रहता था।"

"फिर क्या हुआ अब्बू?" मैना का स्वर काँपने लगा।

"एक रोज नन्ही मैना ने अब्बू को बिस्तरे से उठ जाने को कहा। जब अब्बू बिस्तरे से नहीं उठा तो उसने कारण जान लिया कि

अब्बू बीमार है। बस फिर क्या था? मैना भगवान के सामने तकदीर और कर्मों से अड़ कर बैठ गई और अब्बू के स्वस्थ्य होने की प्रार्थना करने लगी। उसने न जल पिया और न ही रोटी खायी। पूरा दिन गुजर गया। रात आयी पर मैना अभी भी भगवान से हठ किये पलौथी मारे बैठी थी और अपने घोड़े पर सवारी करना चाहती थी। रात गहरी हो रही थी, भूखी-प्यासी नन्ही-मुन्नी मैना आदिनाथ भगवान के दरबार में फर्श पर ही सो गई।

"फिर क्या हुआ अब्बू", मैना ने रोते हुए पूछा।

दिन निकल आया था। अब्बू अब बीमार नही था। वह आराम से अपने बिस्तरे से उठा और चल कर चिरनिद्रा में सोई हुई मैना के पास आया। अपने सख़्त हाथों से अपनी नन्ही मैना को छुआ और आवाज दी- "घोड़ा हाज़िर है। अब्बू घोड़ा हाजिर है।"

"फिर।"

"फिर क्या?", खिलखिल करती हुई मैना ने आँखें खोल दीं। मैना ने आँखों से इशारा किया और अब्बू घोड़ा बन गया। मैना उछल कर घोड़े पर जा बैठी। इसके बाद पूरे दिन मैना का घोड़ा दौड़ता रहा। मैना तिक्-तिक् और चल मेरे अब्बू घोड़े चल, कहती रही।

"ओह!" मैना ने सिर्फ इतना कहा और हँस कर बोली- "अब्बू घोड़ा बनोगे अब्बू, चलो अब्बू घोड़ा बन कर मेरा...।"

मैना के कहने की देर थी। राजा ने देर नही की, वे झट से झुके और घोड़ा बन गये।

मैना अपने अब्बू घोड़े की पीठ पर जा बैठी।

"तिक्-तिक् घोड़े तिक्-तिक् घोड़े", मैना ने कहा और अब्बू था कि उछल-उछल कर दौड़ रहा था। "बस अब्बू, बस", मैना ने कहा और अब्बू की पीठ से उतर गई। वह शिकायत कर रही थी। "मेरा घोड़ा रोता है। अब्बू तुम रोते हो। बोलो अब्बू, तुम्हें काहे का दुख है?"

और अब्बू रो रहा था, बस रो रहा था। वह इतना रोया कि डेरे में प्रवेश करता श्रीपाल और अब्बू के दर्द से परेशान मैना भी रोने लगी।

"अब्बू चुप हो जाओ अब्बू", मैना ने स्वयं भी रोते हुए कहा और आगे बढ़ कर अपने अब्बू के आँसू पोंछने लगी।

पर अब्बू अभी भी रोये जा रहा था।

"अब्बू, तुम्हें अपनी मैना की कसम अब्बू। अगर अब तू रोया तो अपनी मैना को मरा हुआ देखेगा।" मैना ने कहा।

कसम देते ही चुप हो गया अब्बू। वह अपने आँसू आँखों ही आँखों में पी गया। वह गुमसुम हो गया, बिल्कुल पाषाणों की तरह, मानो वह हाँड़-माँस का न होकर पत्थरों का बना हो।

"कुछ तो बोलो अब्बू, तेरी चुप्पी मुझे अखरती है।" मैना ने कहा।

नहीं बोला अब्बू, बस एक टक मैना को देखता रहा।

"बोलो अब्बू", मैना ने फिर कहा।

"मैना तेरा निर्दयी बापू मर गया, उज्जैनी का जालिम राजा मर गया। उसकी तदबीर मर गयी। उसका अहंकार मर गया" और यह कह कर वह फिर सिसकने लगा।

"मर जाने दो", मैना ने कहा- "पर मेरा अब्बू तो जिन्दा है।"

"हाँ, तेरा अब्बू जिन्दा है", उसने सीना तान कर कहा।

"मेरे अब्बू, हाँ मेरे अब्बू। ओह मेरे चन्दा राजा जैसे अब्बू", मैना रोकर अपने अब्बू से लिपट गयी।

20

राजा जब चलने लगा तो बोला-

"मैना तेरा अब्बू फिर शाकाहारी हो गया है। जिन कुर्सियों पर नर्तकी और भोगी सभासद बैठा करते थे, उन पर न्याय रक्षक बैठते हैं। नगर के एक-एक द्वार के सामने से तेरा अब्बू गुजरने लगा है और चिल्ला-चिल्ला कर प्रजा का दुख दर्द पूँछने लगा है। सुनो, तेरा अब्बू फिर जैन अनुयायी हो गया है। एक वक्त सादा भोजन करता है और राज्य के कामों के बाद जैन-ग्रन्थों को पढ़ता है, साधना करता है। मैना तेरा अब्बू तो अब तकदीर और कर्म का पुजारी हो गया है।"

"सच पिताश्री, क्या तुम सच कह रहे हो?" मैना ने सहसदम होकर पूछा। खुशी से उसकी आँखें भर आयी।

"क्या तुझे अपने पिताश्री झूठे नजर आते हैं?" राजा नाराज हो गया।

"नही, मेरे पिताश्री झूठे नही है। मैना ने कहा। "मेरे पिताश्री तो मेरे दिल की धड़कनों के उस हिस्से का नाम है, जहाँ से मेरे प्राणों का सफ़र शुरू होता है।"

21

मैनासुन्दरी को सुहाग के लाल जोडे में देख कर श्रीपाल आँखें भर लाया करता और सोचा करता, क्या उसने ऐसा करके कर्मों को स्वीकार कर लिया है, या उसने अपने दिल की चाह पूरी करने के लिए मैना को अपने नाम की डोरी से पशुओं की तरह खूँटे से बाँधा हुआ है। वह जितना सोचता, उलझ जाता। उसे कोई ऐसा रास्ता न सूझता कि वह इसका कोई उपाय कर ले। उसे पता है कि उसे एक ऐसा रोग लगा है, जिसे दुनिया में लाइलाज समझा जाता है और इसके कीटाणु रोगी के पास रह कर सेवा करने वाले को भी अपने शिकंजे में ले लेते है। इसलिए वह मैनासुन्दरी से दूर रहने का प्रयास किया करता, पर मैनासुन्दरी हमेशा श्रीपाल के निकट रह कर उसकी सेवा किया करती। वह तो पतिव्रता नारी थी और पति की सेवा को ही नारी धर्म और अपना कर्त्तव्य मानती थी।

एक रोज श्रीपाल ने मैना से कहा- "प्रिय प्राणेश्वरी तुम मेरे पास न आया करो। यह कोढ की बीमारी छूत की समझी जाती है, जो तुम्हें भी लग सकती है।"

"प्राणनाथ", मैना ने कहा- "पति तो परमेश्वर होता है। जहाँ मेरे परमेश्वर रहेंगे, मुझे तो वही उनके चरणों में रहना होगा।"

"मैना मै तुम्हें इतना प्यार करता हूँ कि जिसका दायरा पृथ्वी और आकाश के बीच की दूरी से भी ज्यादा है।"

"मै जानती हूँ, प्राणनाथ!"

"तो सुनो, मेरी बात मानोगी।" श्रीपाल ने गम्भीर होकर कहा।

"प्राणनाथ मै आपकी हर बात मानूँगी, पर आप ऐसा चाहेंगे कि मै आपसे दूर रहूँ तो यह कभी नही मानूँगी। मै तो आपके चरणों की दासी हूँ, चरणों में ही रहूँगी।"

श्रीपाल क्या कहे, वह जिद्दी मैना को जानता तो है, फिर उसका कितना बड़ा त्याग है, जो वह महलों के सुख-ऐश्वर्य त्याग कर

उस कोढ़ी के पास जंगलों में रहने बसने चली आई। क्या वह मैना के इस ऋण से कभी मुक्त हो सकेगा? "उसके अस्वस्थ रहने तक वह चम्पानगरी माँ के पास जाकर रहे", उसने मैना से यह भी कहा था, पर मैना ने श्रीपाल के इस प्रस्ताव को भी अस्वीकार कर दिया और श्रीपाल की सेवा में ही लगी रही।

मैना ने श्रीपाल से कहा था-

"प्राणनाथ, दुख तो चन्द दिनों का मेहमान बन कर आया है। मैने तो आपके साथ आजन्म साथ रहने का नाता जोड़ा है। आप मैना के कुष्ठग्रस्त हो जाने के डर से भयभीत न हो। प्राणनाथ तुम्हारे लिए तो मै अपने प्राणों को भी अर्पण कर सकती हूँ। मुझे पता है, नारियों के आदर्श और मर्यादाएँ क्या है? सात फेरों की सौगन्ध का ख्याल भी रखना है और आपकी सेवा में हर पल साथ रह कर दुख के हर हिस्से से दोस्ती भी करनी है। आप ही निर्णय करें, दुखों में पड़े रह कर पति कष्ट भोगे और मै सुख की चाह में राजमहलों के ऐश्वर्य में डूबी रहूँ, भला यह कहाँ का न्याय है? मेरा धर्म तो मुसीबतों में आपका साथ देना है। जब तक आपका कुष्ठ दूर न हो और आप फिर से सोने जैसी काया, कामदेव के रूप को न पा लें, तब तक मेरा जीना निरर्थक है। मेरे तन-मन के आप ही स्वामी है। प्राणनाथ, जब सुख के बरसाती महीने नहीं रहे, तो दुःख का यह पतझड़ भी जाता रहेगा। घबराने से क्या होगा, सिर्फ़ हम अपने आपको दुखी ही तो करेंगे। मेरे जीवन के स्वामी हम दोनों तो धर्म समर्थक रहे है और कर्मों को मानते आये है। मेरी मानो, हँस कर जियो और मुझे भी अपने पास रख कर हँसाते रहो। हँसने में ही जीवन है। मुझे पता है ज़िन्दगी हमसे रूठी हुई है। डरो मत, मै उसे मना लूँगी।"

"मैना", श्रीपाल ने इतना ही कहा, "मुझे पता है, तुममें नारी के वे सभी गुण है, जो एक सतवन्ती आदर्श नारी में होते है। मै सत्य कहता हूँ, कुष्ठ रोगी के साथ जंगल की कुष्ठ बस्ती तुम्हारे हित में नहीं है। मुझे अपने दुःखों के अंत का पता नहीं है। न जाने कब तक कर्मों के हाथों में मै कठपुतली बना नाचता रहूँगा। जाओ, तुम अपने पिता के पास जाकर रहो।"

मैना ने श्रीपाल को समझाते हुए कहा- "जैन ग्रन्थों में कुष्ठ रोग निवारण का मंत्र लिखा है। मै सिद्धचक्र का यज्ञ करूँगी। मेरा

विश्वास है यह रोग यज्ञ सम्पूर्ण हो जाने से जाता रहेगा।"

"प्राणेश्वरी, मेरा जीवन तो हमेशा तुम्हारा ऋणी रहेगा।" यह कह कर श्रीपाल ने मैना को बाहों में भर लिया।

जंगल के छोर पर मैना ने जैन मंडप लगाने की तैयारी की। श्रीपाल के वीरों ने मंडप तैयार करने में जी भर कर श्रम किया। राजा पहुपाल भी जैन मंडप की व्यवस्था देखने में लगे रहे। मंडप बन कर तैयार हो गया तो मैना ने सिद्धचक्र की स्थापना की। सिद्धचक्र चन्दन की लकड़ी से बनी एक ऊँची चौकी पर स्थापित किया गया। चार पंडितों द्वारा मंत्रों का जाप शुरू किया गया। पास ही श्रीपाल और उसके सात सौ वीर बैठे हुए थे। जैसे-जैसे हवन कुण्ड में पंडित लोग स्वाहा करके सामग्री डालते, कुष्ठ का प्रकोप घट जाता, घी की आहूति भी दी जाती रही। राजा खडा हुआ, भरी-भरी आँखों से कर्म की यह लीला देखता रहा और खुश होता रहा। अंतिम आहुति डालते ही कुष्ठ का प्रकोप पूर्णतः नष्ट हो गया। मैना ने गंधोदक का श्रीपाल और उसके सात सौ सैनिकों पर छिड़काव किया और फिर श्री जिनदेव की सभी ने साथ खड़े होकर स्तुति की।

यह क्रिया बड़ी देर तक चली। सूर्य अस्त हो गया था। मैनासुन्दरी ने डेरे के दाँये खड़े निरोगी वृक्षों की छालों को पिसवाया और श्रीपाल के शरीर पर उसका लेप करने लगी। ऐसा करने के लिए उसने सभी वीरों से भी कहा। इस कार्य से जब मैना फारिग हुई, तब तक आधा चन्दा डूब चुका था। अलसायी मैना अपने प्रियतम को 'शुभ रात्रि' कह कर सो गयी थी।

प्रातः होते श्री श्रीपाल ने अपने को कुष्ठ से मुक्त कामदेव के रूप में देखा। उसके वीरों के शरीर भी सोने की तरह सूर्य की किरणों में दमक रहे थे। राजा पहुपाल भी आज बड़े सवेरे आ गये थे। श्रीपाल का फिर से कामदेव समान रूप देख कर वह उमंगों में भर उसे बाँहों में लेने को दौड़े।

"पिताश्री", श्रीपाल ने कहा और राजा की बाँहों में समा गया। श्रीपाल के सात सौ सैनिक कुष्ट से मुक्त पाकर अपना पहले जैसा रूप निहार रहे थे और सती मैनासुन्दरी की जय-जयकार कर रहे थे।

जब श्रीपाल भी सती मैनासुन्दरी की जय-जयकार करने लगा तो मैना शर्म से दोहरी हो गयी। राजा पहुपाल हँसने लगे।

22

दूसरे दिन ही श्रीपाल ने सुबह-सुबह अपनी माँ को राजा पहुपाल के साथ आते हुए देखा।

"मैना, अरे सुनती हो, लो जल्दी उठो। देखो तो कौन आया है?" श्रीपाल ने मैना को झंझोड़ा।

"मुझे पता है, मेरी सास आई है।" मैना हँसी, "मेरा अब्बू उन्हें लेने गया था। हाँ, पर आपको एतराज नहीं होना चाहिए। मै यहाँ अकेली रहती थी, अब माँ मेरे पास ही रहा करेगी।"

श्रीपाल कुछ कहता, पर राजा पहुपाल और कुन्दनप्रभा नजदीक आ पहुँचे। माँ और बेटा, दोनों एक दूसरे में समा जाने को एक दूसरे की ओर दौड़े।

"माँ", श्रीपाल ने माँ को पुकारा तो कुन्दनप्रभा आँचल में मुँह छिपा कर सिसकने लगी। कुन्दनप्रभा कह रही थी- "राज कर्त्तव्य निभाने के लिए तुम्हें राज्य से निष्कासित करके मै कई दिन तक नगर द्वार पर खड़ी रोती रही। तुम्हें खो देने के बाद मै राज-काज का प्रबंध भी न कर पायी। अत्याचारी बीरदमन सेना के सिपाहसालार से मिल कर चम्पा नगरी का महाराजा बन गया और मै उसकी कैद में अपना जीवन बिताने लगी। मुझे रह-रह कर तुम्हारे पिता और तुम्हारी याद आ जाती, तो रात-दिन रोया करती। इतना दुख पाकर भी मै कर्मों और तकदीर को नहीं भूली, और धर्म-कर्म में लगी रही। मुझे भैया पहुपाल तुम्हारे हर सुख-दुख की खबर भेज दिया करते थे। मुझे तुम्हारे मैना के साथ विवाह का भी पता है। मै आज अगर ऋणी हूँ तो मैनासुन्दरी की, जिसने मुझे मेरा पुत्र लौटाया है।"

"माँ, तुम मेरी ही नहीं इस समूचे भरतखंड की माँ हो। मुझे गर्व है कि मै ऐसी माँ का बेटा हूँ, जिसने राज्य हित के लिए अपने पुत्र की भी परवाह नहीं की। माँ, तुमने मेरे न होने से कितने दुख झेले है। माँ तुम कैद रही हो, वह मेरे लिए कितने शर्म की बात है। मै अभी जाकर बीरदमन चाचा की जाँघें तोड़ दूँगा और अपने पिता का राज्य वापस ले लूँगा।"

"नहीं, बेटा वह बड़ा क्रूर है। वह तो हिंसक भेड़ियें जैसा है, तू उसे कैसे जीतेगा?" "क्या माँ को अपने बेटे की बहादुरी पर भरोसा

नहीं है?"

"नहीं बेटा, मुझे तुम्हारी बहादुरी पर पूरा भरोसा है। पर उसके पास विजय पाने के दो साधन हैं। चम्पानगरी का खजाना और सेना, दोनों ही उसके कब्जे में है। उसे जीतने के लिए तुम्हें धन और सेना दोनों का ही संचय करना होगा।"

"मै तुम्हारी मदद करूँगा।" राजा पहुपाल ने कहा।

"नहीं। आपसे सहायता लूँगा, तो दुनिया ताने मारेगी।" श्रीपाल ने कहा- "मै चर्चा का विषय नहीं बनना चाहता।"

"फिर कैसे अपना राज्य हासिल करोगे?" राजा पहुपाल जानना चाहते थे।

"हम अभी प्रतीक्षा करेंगे। समय आने दो, बीरदमन के अत्याचारों से चम्पानगरी के लोगों को बगावत करने दो। जब वे बीरदमन के अत्याचारों से पीड़ित होंगे, तो हमारा साथ देंगे, इस बीच मेरा कोटिभट बेटा भी अपने बाहुबल के पराक्रम से धन और सेना इकट्ठी कर लेगा।" कुन्दनप्रभा ने श्रीपाल से पूर्व ही कहा, जिसकी श्रीपाल ने सर हिला कर हामी भर दी।

23

दाम्पत्य जीवन का आनन्द श्रीपाल को रास नहीं आया। वह उठते-बैठते अपने साम्राज्य चम्पानगरी को याद किया करता। मैनासुन्दरी पति के दुख से परिचित तो थी, पर वह कर ही क्या सकती थी? पति का ध्यान भूली-बिसरी बातों से हटाने के लिए वह विनोदपूर्ण बातें किया करती और माँ, बेटे दोनों को हँसाती रहती।

समय दौड़ता रहा। श्रीपाल ने उज्जैनी के जंगलों में ही अपने छोटे राज्य की स्थापना कर ली। उसने अपने राजमहल का निर्माण भी शुरू कर दिया। सात सौ सैनिकों के लिए स्थायी रूप से निवास बनाने का काम तो पहले ही शुरू कर दिया गया था। नये राज्य का विस्तार करने के लिए प्रत्येक राज्य के ब्राह्मण, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय जाति के लोगों को ला-लाकर बसाया जाने लगा। स्कूल, मंदिर, अस्पताल, कचहरी और दूसरे सार्वजनिक स्थानों को भी बनाया जा रहा था। इस नगरी के नवनिर्माण भवनों की खूबसूरती को देख कर लोगों में कौतूहल

होता था। बड़े-बड़े व्यापारी और विद्वान लोग वहाँ सदा के लिए बसने आ गये थे। नगर की सुरक्षा के लिए राज्य के चारों ओर एक लम्बी दीवार खड़ी की गई। सेना की भर्ती के लिए क्षत्रिय नौजवानों को आमंत्रित किया गया। ब्राह्मणों को धर्म की चर्चा का भार सौप दिया, तो वैश्यों के हाथों में व्यापार और राज्य का खजाना दे दिया गया। शूद्रों के जिम्मे नगर की स्वच्छता व दूसरे छोटे कार्य थे। सेना में राजकीय बैड़ों को बचाना भी शूद्रों को सौपा गया था। बस्ती को बसाने में कई वर्ष तो तब लगे, जब निर्माण कार्य तेजी से किया जाता रहा।

श्रीपाल ने निर्माण कार्य पूरा हो जाने पर माँ से पूछा- "इस छोटी-सी नगरी का क्या नाम होना चाहिए?"

"मैनानगरी।" कुन्दनप्रभा तपाक से बोली।

"हाँ, यह नाम ही ठीक रहेगा।" श्रीपाल ने कहा और हँसा- "मैनासुन्दरी प्रतिवाद कर उठी, नहीं नगर का नाम माँ के नाम पर रखेंगे।"

"मैना तुम इस शुभ कार्य में हस्तक्षेप न करो तो अच्छा है, यों कह कर कुन्दनप्रभा मैनासुन्दरी को एक ओर एकांत में ले गयी", फिर धीरे से बोली- "आज से तुम कोई काम नहीं करोगी। मुझे पता है तुम माँ बनने वाली हो।"

मैनासुन्दरी ने लजा कर कहा- "माँ की आज्ञा नही टालूँगी। मुझे पता है, माँ की आज्ञा न मानने पर पाप लगेगा।"

"हम अपने नगर का नाम मैनानगरी ही रखेंगे।"

"माँ, आप और आपके पुत्र मुझे अहंकारी बना कर छोड़ेंगे।" मैना ने कहा- "मै वचनबद्ध हूँ, सो इसलिए विरोध नही करूँगी। भला मुझे आकाश मे चन्दा के झरोखे में बैठाने की भी कोई तुक है।"

"यह मेरी और तेरे पति की चाह है। तेरे पति के सात सौ सैनिकों की चाह है। वे मुझसे मिलते रहते है और तुम्हारी प्रशंसा करते रहते है। उनके जीवन में आज नये जीवन की शुरूआत लाने का श्रेय तुम्हें ही तो है मैना, सज्जन पुरुष पुरुषार्थ करके भूल जाते है, तुम भी उनमें से एक हो।"

मैना का अब्बू आ गया था। कुन्दनप्रभा नए रिश्ते-नाते के कारण राजा पहुपाल से शरमा जाती थी। अब खुल कर बातचीत करने की पहले जैसी बात नही रही थी। इसलिए कुन्दनप्रभा राजा पहुपाल से

किनारा करने लगी।

कुन्दनप्रभा के चले जाने पर मैना ने अपने अब्बू से कहा-

"अब्बू, अब इस नगरी का उद्घाटन भी करा दो।"

"श्रीपाल की इस बारे में क्या राय है?"

"वे इस राज्य को मेरा नाम देना चाहते है।" मैना हँसी, "भला यह भी कोई बात हुई। बात-बात में मैना ऐसी है, मैना ने यह किया, मैना ने वह किया। यारों, दोस्तों, संबंधियों से कहने लगते है, और अब राज्य का नाम भी 'मैनानगरी' रखना चाहते है। अब्बू, भला यह भी कोई बात हुई?"

"यह तुम्हारे अपने घर का मामला है। बेचारा अब्बू क्या करे?" राजा पहुपाल हँस दिया।

"अब्बू, मुझे पता चला है कि हरिवाहन की मृत्यु हो गयी है। शराब ने उसके शरीर को छलनी कर दिया था।"

"हाँ मैना, सुरासुन्दरी विधवा हो गयी है। बेचारी!" -अब्बू आँखें भर लाया। "उसने तो सुख का एक महीना भी नही देखा।"

"हाँ, इसका तो मुझे भी अफसोस है। सुरसुन्दरी पर कर्मों की मार पड़ी है। काश् हरिवाहन जिन्दा रहते और सुलह करके सुरसुन्दरी को ले जाते।"

"मैना, उस बेचारे ने तो ऐसा करने के लिए कई बार प्रयास किया था पर सुरसुन्दरी ही उसे क्षमा न कर सकी। हरिवाहन को इसका दिली आघात लगा। वह पहले से अधिक सुरा पीने लगा। मुझे गजेन्द्र सिंह बूढ़े राजा (हरिवाहन के पिता) ने बतलाया था कि वह शराब के नशे में धुत्त हुआ कौशाम्भी की सड़कों पर सुरसुन्दरी को याद करता हुआ घूमा करता था।"

"तो क्या आप उसकी मृत्यु की जिम्मेदारी सुरसुन्दरी पर डालते है।" मैनासुन्दरी ने पूछा।

"हाँ, वह हरिवाहन की मृत्यु के लिए जिम्मेदार है। आज वह नही रहा है, तो उसकी निशानी को, जिसे वह कौशाम्भी से भागते हुए अपने पेट में ले आयी थी, सीने से लगा कर रोती रहती है। वह अब समझदार हो गया है। करन सुरसुन्दरी से अपने पिता के बारे में पूछता रहता है।"

"अरे, करन को तो मै भूल ही गयी। सुरसुन्दरी का नन्हा कैसा

है? क्या वह मुझे याद कर लेता है?"

"बहुत याद करता है, मैने उसे बता जो रखा है कि तेरी एक मौसी भी है, पर वो बड़ा जिद्दी है। कभी-कभी वह गुस्से में होता है, तो मेरी मूछें पकड़ लेता है और तुम्हारी तरह मुझे घोड़ा बना कर कमरे में तेज दौड़ने को कहता है। वह तेरी तरह थोड़ी ही है। उसके हाथ में रेशम के हन्टर होते है, जिन्हें वह सटाक् से चला भी देता है।"

मैना अब्बू की बात पर हँसी फिर बोली- "माँ कैसी है? अब तो मुझे याद करके नहीं रोती होगी। हमारी इस कामयाबी पर कि हम भी एक छोटी-सी नगरी वाले हो गये है, खुश होती होगी?"

"हाँ, वह अब तुम्हारी ओर से निश्चिंत है। सुरसुन्दरी के लिए उसने अपने आपसे समझौता कर लिया है। समझौते का आधार करन ही तो है। सुरसुन्दरी अगर पति की याद में रोती है, तो वह करन को लाकर उसके सामने खड़ा कर देती है।"

"हमारे मंत्री कैसे है?"

"बूढ़े हो गये है। मैने उनके स्थान पर उनके देवता जैसे पुत्र की नियुक्ति कर दी है।"

"आप शायद जयदेव की बात कर रहे है। वह देवता कब से हो गया? वह तो बड़ा शरारती था। स्कूल में तो वह हमें बड़ा परेशान किया करता था।"

"अब उसकी माँ नही रही। वह अपनी माँ की याद मे अपनी सारी चंचलता भूला बैठा। उसे भूख लगी है, यह भी याद नहीं रहता। बस, माँ को याद करता रहता है। मैने उसे समझाया और जैन मंदिर में नित्य पूजा करने की सलाह दी। तब से वह जैन मंदिर जाता है और प्रसन्न रहता है।"

"मेरा मोती कैसा है?"

"पूरे दिन भौकता रहता है। पता नहीं, वह तुम्हें याद करता है या मुझे कोसता रहता है। एक वह ही तो है, जो तुम्हारा वफादार है।"

"हाँ अब्बू, इन्सानों से जानवर ज्यादा वफादार है। वे अपने-परायों की पहचान रखते है। इंसानों ने तो अपनी पहचान खो ही दी। वे मित्र बन कर गला काटने में लगे है, इसलिए धर्म और चरित्र का पतन हो रहा है।"

"मैने तो अपने राज्य में नशाबंदी करा दी है और वेश्यालयों

को बंद करवा दिया है। एक जैन मंदिर भी बनवा रहा हूँ।"

"यह तुम अच्छा कर रहे हो अब्बू", मैना ने कहा।

"आज तेरी माँ ने तुझे याद किया है। मै तुझे अपने साथ ले चलूँगा।" राजा ने कहा।

मैनासुन्दरी बोली- "अब्बू मेरी हालत देख रहे हो। मै इस समय आने-जाने लायक नहीं हूँ। अब्बू तुम नाना बनने वाले हो।"

"अच्छा।" अब्बू ने कहा- "मै घर पर जाकर सबको बता दूँगा और वह घोड़े चढ़ कर हवा हो गया।"

अब्बू गया ही था कि श्रीपाल आ गया। उसने धीरे से कहा- "मुझसे शर्त रखोगी?"

"किस बात की," मैना चौकी।

"तुम बेटे को जन्म दोगी?"

"इसका तो मुझे भी पता है।"

"एक बेटे को नहीं, दो बेटों को।" श्रीपाल कह कर हँसा।

मैना शरमा कर हँसी। "जरूर तुम भी श्री मुनि वीर से मिल आये हो। उन्होंने ही मुझसे कहा था। मुझे युगल-पुत्रों की प्राप्ति होगी।"

"हाँ, मै भी सीधा वही से आ रहा हूँ।" श्रीपाल ने हामी भरी।

"साम्राज्य तो तैयार हो गया है, पर इसे चलाने के लिए धन की व्यवस्था नही करोगे?" मैना ने श्रीपाल से कहा।

"सोमदत्त और मोहन हमारे नगर व्यापारी विदेशों से जहाज भर कर सोना कमा लाये है। उन्होंने मुझे धन देने का वचन दिया है।"

"राजधानी का नामकरण कब होगा?"

"दो माह बाद, तब तक तुम पुत्रों को भी जन्म दे लोगी। राजधानी और पुत्रों का नामकरण हम एक साथ ही करेंगे।"

"माँ से भी पूछा है, वे इसके लिए राजी भी होंगी।" मैना ने कहा।

"हाँ, यह उनका ही प्रस्ताव है।" श्रीपाल ने हँस कर कहा।

24

मैना ने एक साथ दो सुन्दर पुत्रों को जन्म दिया। दोनों अपने

पिता श्रीपाल पर गये थे। वह इतने सुन्दर थे कि अंधकार में लेटे हों, तो प्रकाश की भी जरूरत नहीं थी। अब्बू हर रोज आता और उन्हें खिलाने लगता। वे भी अब्बू को पहचानने की कोशिश किया करते और अब्बू के उठ कर चलते ही रोने लगते। यह देख जाता-जाता अब्बू रुक जाता और उन दोनों को बाँहों में भर कर लोरी गाने लगता।

शहर की सभी बड़ी इमारतें बन कर तैयार हो चुकी थीं। राज-काज शुरू करने से पूर्व श्रीपाल ने शहर की राजधानी का नामकरण करने के लिए अपने छोटे से मंत्रिमंडल की सलाह ली। उसके मंत्रिमंडल में कुन्दनप्रभा माँ, पत्नी मैनासुन्दरी और ससुर पहुपाल उर्फ अब्बू, सात सौ वीरों का प्रतिनिधि प्रहस्त विशेषरूप से थे। भरतखंड के सभी राजाओं को श्रीपाल ने अपनी राजधानी और पुत्रों के नामकरण का न्यौता भेज दिया था।

आसमान में हवाबाज रंग-बिरंगे कबूतर दांयें-बांयें दौड़ रहे थे। श्रीपाल महल की छत पर मैना के साथ खड़ा होकर इन विश्वस्त डाकियों को देखता रहा और हँसता रहा।

"श्रीपाल," माँ कुन्दनप्रभा ने पीछे से आकर बेटे को आवाज़ दी और नाराज होकर पूछने लगी- "चम्पानगरी न्यौता भेजना क्या जरूरी था?"

"माँ, यह राजनीति तुम नही जानोगी। वह जब सभी राजाओं के बीच बैठा होगा तो मै उससे पूछूँगा कि औरतों से राज छीनने वाले डरपोक आदमी, तूने मेरे कोटिभट वंश को कलंकित क्यों किया? मेरी माँ को कैद करके रखने में तेरा क्या मकसद था? राज्य मेरे पिता का है। मै उसका उत्तराधिकारी हूँ, मेरा राज्य लौटा दो, अगर तुझे मेरी शमशीर पर भरोसा नहीं है, तो युद्ध करके देख लो।"

"श्रीपाल तुम भी निरे बुद्धू हो। वह इस भूमंडल के राजाओं की सभा में आने वाला नहीं है।" कुन्दनप्रभा ने कहा।

कुन्दनप्रभा ने सच कहा था नामकरण के दिन श्रीपाल की नगरी में देश-विदेश के राजा दूर-दूर से आये थे, पर उसका चाचा बीरदमन नहीं आया। सभी राजा इस नयी नगरी के आकर्षक निर्माण और भव्य सजावट की तारीफें कर रहे थे। उन्होंने नवनिर्मित नगरी की हर चीज को सराहा था। मंडप में ब्राह्मण लोग पूजा पाठ कर रहे थे। पूजा सम्पन्न हो जाने पर नवनिर्मित नगरी को 'मैनानगरी' का नाम दे दिया

गया। दोनों पुत्रों के नामकरण पर सभी राजाओं ने अपनी तालियाँ बजा-बजा कर खुशी जाहिर की। इसके बाद अतिथिगण श्रीपाल द्वारा दिये जाने वाले भोज मे शरीक हुए। भोज में हर तरह के शाकाहारी भोजन की व्यवस्था थी। लोग बड़े ही चाव से चटकारे ले-लेकर खाते जाते और कहते जाते कि उन्होंने आज तक ऐसा स्वादिष्ट भोजन नही खाया है। भोज की समाप्ति पर सभी राजाओं ने श्रीपाल के नन्हें पुत्रों को अपने देश से लाये हुए कीमती तोहफे दिये और दीर्घायु होने की शुभ आशीष दी। कुछ राजा तो भोज की समाप्ति पर लौट गये थे, पर जो दूर से आये थे और मैनानगरी की भव्यता देखने को लालायित थे, वे श्रीपाल के अतिथि गृह मे ठहर गये। श्रीपाल के सेवक उनकी सेवा मे जी-जान से जुटे थे। अतिथिगृह में ठहरे राजा श्रीपाल के आदर सत्कार से इतने प्रसन्न थे, जिसका वर्णन करना आसान नही है।

अतिथि राजा भी चले गये। श्रीपाल अपना राज-काज देखने में व्यस्त हो गया। एक रोज महारानी कुन्दनप्रभा की आज्ञा लेकर अब्बू, मैनासुन्दरी और अपने दोनों नवासों को उज्जैनी नगरी ले आया। रानी निपुर्णसुन्दरी मैना के पुत्रों को पाकर मानो तृप्त हो गयी।

25

मैना और सुरसुन्दरी आज एक लम्बे अरसे के बाद मिली थीं। सुरसुन्दरी रोती जाती थी और अपना दुखड़ा सुनाती जाती थी।

"बड़ी दीदी, अब रोने से क्या फायदा? जाने वाला तो चला गया। उसको बुरा भला कह कर तुम उसके पाप अपने सर पर क्यों लेती हो?"

"करन अपने पिता के बारे में पूछता है? अब तुम ही कहो, मै उसे क्या जबाव दूँ?"

"हाँ, यह सोचने की बात है।" मैना ने कहा- "वह बड़ा होता जा रहा है। मेरी मानो तुम पुनर्विवाह कर लो।"

"मैना, यह तुम क्या कहती हो? मेरे ऐसा करने से राजाओं के बीच बैठ कर क्या अब्बू नकटे नही होंगे। राजाओं के बीच उनकी साख नहीं गिरेगी?"

"पर बड़ी दीदी, जो तुम करती जा रही हो, वह क्या नाक

काटने से कम है। क्या तुम अपने पेट में जयदेव का बच्चा लिये नहीं घूम रही हो?"

"तुम्हें यह सब किसने बतलाया?" सुरसुन्दरी ने सहम कर पूछा।

"अब्बू ने।" मैना ने ऐसे कहा मानो सुरसुन्दरी के गाल पर तमाचा मारा हो।

"अब्बू ने कहा, सुरसुन्दरी सहम कर पीछे हटी! ओह, तो अब्बू को पता चल ही गया। अब क्या होगा?"

"होगा क्या, जयदेव से तुम्हारी शादी होगी।" मैना ने कहा- "अब्बू सहमत है।"

"पर करन का क्या होगा?" सुरसुन्दरी बोली।

"उसे मैं अपने साथ ले जाऊँगी। वह अपने पिता के बारे में पूछता है न। मेरे पति उसे अपना नाम दे देंगे।"

"यह तो हरिवाहन के साथ अन्याय होगा। बूढ़े राजा गजेन्द्र सिंह भी हरिवाहन की मौत का सदमा याद रखे हुए हैं, अकेला बेटा जो थ।। अब्बू कह रहे थे, जब तुम्हारे यहाँ वे उद्घाटन में आये तो करन से कह रहे थे कि मैं तेरा दादा हूँ। तुम मेरे साथ कौशाम्भी चलो, मैं तुम्हें सोने का मुकुट पहना कर छोटा-सा राजा बना दूँगा। पूरी कौशाम्भी में तुम्हारा हुक्म चलेगा। नन्हा करन कुछ नहीं समझा। बस कभी बूढ़े राजा को और कभी अब्बू को ताकता रहा था।"

"क्या तुम करन को उसके दादा से मिलाना चाहती हो?" मैना ने सुरसुन्दरी से पूछा।

"हाँ, पर माँ करन को अपने से जुदा नहीं करना चाहती।"

"और तुम, तुम क्या चाहती हो?"

"मैं चाहती हूँ, करन को देकर अपने बूढ़े ससुर का दुःख बाँट लूँ। इससे मेरा प्रायश्चित तो पूरा नहीं होगा, पर बुढ़ापे और बचपन की दोस्ती तो होगी। करन को पाकर बूढ़े राजा बेटे हरिवाहन को याद नहीं करेंगे। जो शायद स्वर्ग में बैठे हुए मुझे कोस रहे हैं?"

"बड़ी दीदी, तुममें इतने बड़े त्याग करने की हिम्मत है?" मैना ने अपनी पैनी नजरों से सुरसुन्दरी को घूर कर पूछा।

"हाँ मैना, आखिर मैं भी एक औरत हूँ। मैं बुरी जरूर हूँ पर हाड़-मांस की तो हूँ। मैं दादा-पोते के बीच दीवार बन कर खड़ा होना

नही चाहती।"

"और जयदेव का क्या होगा? जिस भले आदमी को तुमने भ्रष्ट कर दिया है।"

"मै उससे शादी करूँगी और उसके बच्चे को भी जन्म दूँगी।" सुरसुन्दरी ने हिम्मत से कहा।

"हाँ, यह तुम्हारा निर्णय मुझे अच्छा लगा है। करन को कौशाम्भी नरेश के पास भेजने और तुम्हारी जयदेव से शादी करवाने के लिए मै अब्बू से बात करूँगी।" सुरसुन्दरी चली गई। मैना ने अब्बू से कहा- "अब्बू मै जो बात तुमसे करना चाहती हूँ, उन बातों को करने से मुझे पाप लगेगा, क्योंकि तुम मेरे पिता हो। पर मै तेरी बेटी ही नही वजीर भी हूँ। करन को कौशाम्भी भेज कर सुरसुन्दरी की जयदेव से शादी करा दो। यह चर्चा कुछ राजा जरूर करेंगे पर करन की कौशाम्भी की वापसी पर तुम्हें न्यायप्रिय भी कहेंगे। इन दोनों कार्यों को करने में मुझे हित नज़र आता है।"

अब्बू ने ना-नुकर नही की।उसने मैना की दोनों बातें मान लीं। करन कौशाम्भी चला गया। बूढ़े राजा के पास जाने को वह खुश भी था और उतावला भी। जयदेव से सुरसुन्दरी की शादी भी हो गयी। रानी निपुर्णसुन्दरी ने इस पुनर्विवाह का खुल कर विरोध किया, पर जब उन्हें जयदेव के बच्चे वाली बात समझायी गयी, तो रानी ने बेटी की करतूतों पर अपना सिर पीट लिया।

26

उज्जैनी नगरी में मैना कई महीने रही। श्रीपाल के बुलावे आते रहे। मैना हँस कर टाल जाती, पर एक रोज श्रीपाल आया और उसको लिवा ले गया।

"मेरी मैना अपने श्रीपाल को भूल गयी है!"

"नही प्राणनाथ, यह कैसे हो सकता है? भला कोई आज तक अपने प्राणों को भूला है?"

"क्या उज्जैनी में हमारी याद नही आती थी?"

"हाँ, आती थी।" मैना ने लजा कर कहा।

"मेरे बारे में नहीं पूछोगी?" श्रीपाल बोला।

"मुझे पता है, आप मुझे बेहद प्यार करते है। फिर मुझे याद क्यों नही करते होंगे।" मैना हँसी।

"मैना तुम सचमुच ही प्यार करने लायक हो। इसलिए नहीं कि तुम नारी और सुन्दर हो, तुममें ममता, प्यार, धर्म और सत्य सभी कुछ है। तुमने कभी किसी के अहित को नही चाहा और सबका हित करती रही हो। तुम तो जिनेन्द्रदेव से भी ऊँची हो। तुम्हारी तस्वीरें पूजा-स्थलों पर लगा कर हर रोज पूजा होनी चाहिए।"

"वाह! पतिदेव ने क्या शानदार मसकेबाजी की है।" मैना हँसी, "कह चुके या कुछ और कहना बाकी है?"

"कहना तो बहुत कुछ बाकी है, पर पहले प्यार करना है।"

"हिश्त शरारतों से पाप का उदय होता है।"

"मैना मेरा दिल बेकाबू होता जा रहा है।"

"मुझे दिलों को दौड़ाना नहीं आता। प्राणनाथ, साधना आती है। मै शादी से पहले विरक्त थी और सांसारिक सुखों को मोहजाल समझती थी। सोचती थी शादी नही करुँगी और जैन अर्जिका बनूँगी, पर आपको देखा तो जाति स्मरण हो आया। पिछले जन्म की धुँधली तस्वीरें आँखों के आगे नाचने लगी। आप संचयपुर के विद्याधर राजा श्रीकंठ थे और मै आपकी रानी श्रीमति थी। आपने मुझे पिछले जन्मों में इतना असीम प्यार दिया था कि मै आपको देख कर क्षण मात्र में ही अपने निश्चय से हट कर आपको चाहने लगी। श्री मुनि वीर से जब मैंने इस मोह माया के बारे मे विस्तार से जानना चाहा, तो उन्होंने मुझे जन्म-जन्म की तस्वीरें दिखला दीं। मै पिछले जन्म से ही नही, आठ जन्मों से तुम्हारे पीछे लगी हूँ।" यह कह कर मैनासुन्दरी खिलखिला दी।

"सुरसुन्दरी का पुनर्विवाह करा कर तुमने अच्छा किया, मैना।" श्रीपाल ने कहा- "वह ऐसी नारी है जिसका धर्म मे विश्वास नही है। शायद तुम्हें मेरी बात बुरी लगी होगी।"

"नही, मै सच्ची बात का बुरा नहीं मानती। मुझे पता है करन को लौटाने में उसके अन्तर्मन की आवाज़ थी।"

"प्रहस्त कैसे है?" मैना ने पूछा।

"खूब मजे मे है।"

"अब्बू तो कह रहे थे बीमार है।"

"हाँ, ज्वर हो गया था, जिससे वह कई रोज बिस्तरे पर पड़े

रहे।"

"और तुम, क्या तुम भी पीछे रोगी रहे हो?" मैना ने धीरे से पूछा।

"हम तो सामान्य रोगी है, जो पूरे वर्ष एक से रहते है।" श्रीपाल हँसा।

"यह सामान्य रोग क्या बला है?" मैना जानना चाहती थी।

"ठहरो, बतलाता हूँ।" श्रीपाल ने यह कह कर मैना को अपनी बाहों के घेरे में ले लिया। मैनासुन्दरी श्रीपाल के बंधनों में कसी हुई हँसती और छटपटाती रही।

एक रोज़ श्रीपाल को नींद नहीं आ रही थी। वह बार-बार करवटें बदल रहा था। मैनासुन्दरी से न रहा गया। उसने नींद न आने का श्रीपाल से कारण पूछा- "प्राणनाथ आप सो नही रहे है। क्या बात है?"

"नींद नहीं आ रही है।"

"नींद न आने का कुछ कारण तो होगा?"

श्रीपाल हँसा, "कारण क्या हो सकता है, यह मै भी नही जानता।"

"लगता है, दासी से कुछ छिपा रहे हो।"

"नही मैना, मै तुमसे कुछ नहीं छिपा रहा। बस यों ही सोचता हूँ और रह जाता हूँ।"

"क्या-क्या सोचते है आप, मुझे भी तो कुछ बतला दिया करो।" मैना बोली।

"क्या मुझे मैनानगरी में ही बंद होकर रहना पड़ेगा?"

"ओह, तो आप मैनानगरी में अपने को कैदी समझते है? क्या शानदार बात कही है। नगर का राज-काज क्या मै देखती हूँ? न्याय व्यवस्था क्या मै चलाती हूँ? मैनानगरी की न्यायधीश भी क्या मै ही हूँ?"

"यह सब मै देखता हूँ और मानता भी हूँ, पर इस छोटे से राज्य से, जो एक शहर में सीमित है। हमारा क्या भविष्य होगा? हम पर खेती करने के लिए जमीन नही है। उद्योग लगाने के लिए धन नहीं है। सुई से लेकर हर छोटी बडी चीज हमें खरीदनी पड़ती है। राज्य की आमदनी कम है और व्यवस्था बनाये रखने के खर्चे अधिक है। इस

तरह कैसे काम चलेगा? यहाँ मेरा अपना राज्य होकर भी सब लोग मुझे राजा पहुपाल का जमाता कहते है। मेरे पिता का कोई नाम नही लेता। मेरे अपने राज्य पर मेरे क्रूर चाचा बीरदमन का अधिकार है। जिसके पास एक विशाल सेना है। सात सौ वीर या दस पाँच हजार सैनिकों से उसे जीता नही जा सकता।"

"मुझे पता है प्राणनाथ। पर किया क्या जा सकता है?"

"मुझे सैनिक और धन पाने के लिए परदेश जाना होगा।"

"मै भी साथ चलूँगी।"

"कैसी बातें करती हो मैना, तुम्हारी गोदी में दो-दो नन्हें शिशु है, इन्हें कहाँ छोड़ोगी, माँ का क्या होगा?"

"धनपाल, महीपाल को हम कहाँ छोड़ेंगे, अभी नन्हें तो है, अपने साथ ही ले चलेंगे। रही मैनानगरी की बात, यहाँ का राज-काज माँ देखेगी। इसके लिए मै माँ को भी मना लूँगी।"

"यह तुम्हारी नासमझी जैसी बातें है। रास्ते में तुम्हें जो परेशानियाँ होंगी, तुम कैसे सहोगी? नदी, नाले जंगलों को पार करना क्या मामूली बात है?"

"प्राणनाथ, मै हर परेशानी सह लूँगी। मुझे साथ ले चलो।"

"रास्ते में हिसक जानवर मिलेंगे। छल-कपट करने वाली औरतों और पुरुषों के समूह खड़े होंगे।" श्रीपाल ने मैना को डराया।

"मै हिंसक जानवरों से नहीं डरती, तो धर्मियों से छल-कपट करने वाले क्या ले लेंगे? फिर तुम भी तो मेरे साथ होगे।"

"मैना तुम बहुत जिद्दी हो। मेरे सफ़र पर जाने का मकसद उद्यम करना और धन कमाना है। क्या यह तुम्हारे साथ सम्भव होगा?"

"साफ क्यों नही कह देते कि तुम मुझे अपने साथ ले जाना नहीं चाहते।" मैना कह कर उदास हो गई।

"हाँ मैना, कुछ ऐसा ही समझ लो, मै बारह वर्ष बाद अष्टमी के दिन आऊँगा। मुझे चले जाने दो।"

"बारह वर्ष की बात करते हो, मै तो तुम्हारे बिना विरह का एक दिन भी नही काट पाऊँगी।"

"पागल न बनो मैना। तुम्हारे पास धन है, चम्पा नगरी का राज्य है। फौज है, यहाँ पर निश्चिंत रह कर राज करो।"

"मै धन, राज्य और फौज का क्या करूँगी। जब तुम ही नही

होगे तो सावन के बरसाती महीने मुझे तड़पाया करेंगे। मै अपने मन को कैसे रखूँगी?"

"मैना, संयम के तख्तों से सावन की नदी को रोक लेना। मै अपने वायदे पर जरूर लौट आऊँगा।"

"नही नही, मैना ने प्रतिवाद कर दिया। मै अपने जीवन के बारह वर्षों को नही बेचूँगी। यह तो एक ऐसा सौदा है, जो नही किया जा सकता।"

"मैना इस छोटी-सी नगरी में रह कर मै अपने को कैद नही कर सकता। मुझे जाना होगा। बिना कुछ किये मनुष्य जीवन निरर्थक है। उद्यम करके धन को प्राप्त करना तो शास्त्रों में लिखा है। बिना उद्यम के धन लेना चोरी के समान है। यह एक ऐसा पाप है, जिससे दामन पर दाग लग जाते है। मेरी मैना, मेरे परदेश जाने में तेरा हित है, मेरा हित है। हमारे नन्हें-मुन्नों धनपाल और महिपाल का हित है। तुम मोह माया जैसी बातें करती हो, वह सब बेकार की बातें है। साहस से जीना सीख लो। हिम्मत से काम लो मैना। बारह वर्ष तो चुटकियों को बजाते हुए निकल जाते है।"

"क्या मै बारह वर्ष तक जिन्दा रहूँगी", मैना की आँखें भर आयीं।

"मैना अभी मेरी और तुम्हारी जिन्दगी की शुरूआत है। निराश होकर जिन्दगी के बारे में सोचना बुरी बात है।"

"क्या सिया को राम संग नही ले गये थे?" मैना विहँसने लगी, "प्राणनाथ तुम्हारे साथ भूखे और फटे हाल रह कर भी मेरे मन में आनंद रहेगा। ठहरो, मै अभी माँ कुन्दनप्रभा से आज्ञा ले आती हूँ।"

"धनपाल और महीपाल अभी गोदी में है। मै तुम्हें ऐसा नही करने दूँगा", श्रीपाल नाराज हो गया।

"लगता है किसी ने अब्बू का हवाला देकर आपका अपमान कर दिया है। मै तुम्हें मैनानगरी में रहने को भी बाध्य नही करूँगी, अगर आप चाहेंगे तो मेरा अब्बू अपनी चतुरंगी सेना से चम्पानगरी को जीत कर तुम्हें दे देगा, फिर तो तुम परदेश जाने का विचार छोड़ दोगे।"

"मैना, मै ऐसा बिल्कुल नही चाहता, जैसा तुम सोचती हो, मेरा किसी ने अपमान नहीं किया है। राजा की सेना द्वारा राज्य पाने वाली बात को मेरा दिल नही मानता, मै तो अपने बाहुबल से अपना राज्य

पाना चाहता हूँ। परदेश जाना तो मेरे दिल में समाया हुआ है। तुम माँ के पास प्रसन्नचित रहना और मैनानगरी पर राज किया करना।"

"तुम्हारे राज पाट को आग लगे, धन और फौजों को आग लगे।" मैना क्रोध में आ गई- "तुम बिन कौन रहे। मेरे तन, यौवन को आग लगे।"

"गुस्सा न करो मैना। तुम तो मेरे प्राणों से प्यारी हो। मेरी धड़कनों में बसने वाली मैना मुझसे परदेश जाते समय तकरार ना कर। यह अशुभ बातें है, जिनसे मुझे सफ़र में बाधा पड़ेगी। तुम साथ चलने की बात करती हो। क्या हम दोनों की जुदाई पाकर माँ ज़िन्दा रहेगी? जिन दो खिलौनों से वह दिल बहलाती है, उनको आँखों से दूर ले जाकर क्या हम उन्हें तन्हा नहीं कर देंगे? मैना जब मै राजाओं के बीच बैठा करूँगा तो सभी राजा मुझे ताना मार कर कहा करेंगे कि मै पत्नी सुख में डूब कर माँ को भूल गया था। उनके व्यंग्य बाणों से क्या मै ज़िन्दा रह सकूँगा? माँ हमारे जाने पर यहाँ रो-धो कर मर जायेगी। माँ के मरने से मेरा जन्म और कर्म दोनों बिगड़ेंगे। सो मैना, मेरी बात मान लो और खुशी से मुझे परदेश जाने की आज्ञा दे दो।" श्रीपाल ने कहा और चलने लगा। पर मैना ने रोते हुए दौड़ कर श्रीपाल की बाँह थाम ली।

"मैना, अच्छे ह्रदय की नारी, नादानी की बातें न करो।" श्रीपाल ने मैना को समझाया। "क्या मेरे चलने पर रोकर मेरा दामन पकड़ना शुभ कर्मों का लक्षण है? तुमने मेरी गति को रोक दिया है। परदेश जाते पति से नाहक झगड़ा करके उसे परेशान क्यों किये जाती हो?"

मैना ने आँखों में आकर श्रीपाल का दामन छोड़ दिया और कहने लगी- "जाओ, जाओ तुम्हें कौन रोकता है? मुझे पता है तुम उन मर्दों में से हो, जो अपनी पत्नी से झूठे वायदे करते है। दिल जलाते है, उल्टा-सुल्टा सुनाने को हर समय तैयार खड़े रहते है। बारह वर्ष का बहाना बना कर चले जा रहे हो, बारह वर्ष क्या यों ही बीतेंगे? कैसी नादानी वाली बातें करते हो। लाल सुर्ख आँखों से किसे डराते हो? अरे, बईया मरोड़ कर अपना दामन छुड़ाने वाले, क्या तुम वही श्रीपाल हो, जिसने मुझे वर्षा में खड़े रह कर भीगने से मना किया था। जो पिछले जन्मों की बात करके मुझे पाने के लिए बेचैन था। मुझे पता है वह सब दिखावा था। तुम्हारा प्यार तो झूठा है, यह घरबार भी झूठा है।

इस संसार में न कोई यार है और न ही वफादार। कोई किसी का हित नही करता। कर्मों की गति तो बड़ी अजीब होती है। जो आज तक कोई टाल नही सका। तुम्हारी आँखों के तेवर और टेढ़ी बोली से मेरे दिल को आघात लगा है। मै तो एक दुखियारी अबला नारी हूँ। मेरी किस्मत का सूर्य डूब गया है। तुम मुझे आज जी भर कर गाली दो, मारो और बारह वर्षो के लिए तरसने को छोड़ कर चले जाओ। भला मै तुम्हें रोकने वाली कौन होती हूँ?" यों कह कर मैना रोने लगी।

"प्राणेश्वरी, रोती हो," श्रीपाल ने कहा- "मैने तुमसे सच्चा प्यार किया है और तुम्हें तहेदिल से चाहा भी है। मै तो तुम्हें प्यार करने के साथ-साथ तुम्हारी पूजा भी किया करता हूँ। क्या तुम्हें इसका पता नही है? भोगों को स्मरण करके अज्ञानता मे पड़ कर तुम शायद धर्म की ओर नही बढ़ पा रही हो और अपने मेरे सुख ऐश्वर्य पाने को ठिठक गयी हो। मै कोटिभट वंश का करोड़ो वीरों का बाहुबल रखने वाला अगर पत्नी प्रेम या पत्नी मिलन में भटकने लगूँगा तो संसार का क्या होगा? क्या तुम ऐसा नहीं समझती मेरे पुरुषार्थ की बहुत से लोगों को जरूरत है और वे मेरा बेसब्री से इंतजार कर रहे है?"

"प्राणनाथ, अगर आप दुखियारे लोगों के लिए पुरुषार्थ करने जाना चाहते हो तो चले जाओ, मैं मना नही करूँगी, पर रास्ते में तुम्हें अनगिन राज्यों की सीमा से गुज़रना होगा, बहुत-सी राज्य कन्यायें तुम्हें पाना चाहेंगी। फिर क्या तुम अपनी मैना को याद रख सकोगे?"

"मैना, तुमने मुझे प्यार ही नहीं प्राणों का भी दान दिया है। मेरे कुष्ठ को हर कर मेरी निरोगी काया करने वाली मेरी प्राणप्यारी मैना भला मै तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ?"

"प्राणनाथ, सफर में आप कम उम्र की सुन्दर नारियों से हँस कर बात न करना। हँस-हँस कर बातें करने वाली ये सुन्दर नारियाँ अपने रूप और अदाओं से पुरुषों को मोह लेती है और उन्हें पथभ्रष्ट करने में देर नही लगाती। बिना किसी के दिये हुए खाली पड़े धन को देख कर भी अपने मन को काबू में रखना, ऐसा धन पाप और सजा दोनों को देने वाला होता है।"

"मैनासुन्दरी तुमने ठीक कहा है, पर सुन्दर औरतों की लम्बी कतारें और धन के अपार भण्डार मेरे मन को लुभा सकेंगे, यह तुम स्वप्न में भी न सोचना। मै तो इनसे पूर्व ही सतर्क रहता हूँ।"

"आपने बारह वर्ष बाद अष्टमी की रात तक लौट आने का वायदा किया है, जिसे आपको याद रखना होगा। अगर तुम नही लौटोगे तो मै तुम्हारे पुत्रों और माता को राज्य देकर जिन दीक्षा ले लूँगी।"

"मैना, मनुष्य का शरीर तो मिट्टी का खिलौना मात्र है, जिसका कोई भरोसा नहीं होता। पर हाँ अगर श्रीपाल जिन्दा रहा तो वह अपने वायदे से नही मुकरेगा और अष्टमी की रात तक आ पहुँचेगा। सूरज और चन्दा आकाश में न चमके, पर कोटिभट अपना वचन नही भूलेगा और अपना वायदा पूरा करेगा।"

मैना हँसी और बोली, "मर्दों को, मर्दों ने झूठ बोल-बोल कर विश्वास के काबिल नहीं छोड़ा है, पर मै तुम पर विश्वास अवश्य करूँगी, क्योंकि मुझे पता है तुम मुझे बेहद चाहते हो। मै तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। जाओ, माँ को जगा कर परदेश जाने की आज्ञा ले लो।"

"नही मैना, माँ जब ममता के जाले बुनेगी तो मेरा परदेश जाना न हो सकेगा। माँ की बरसाती आँखों में बहुत से दर्द के तूफान समाये हुए है। क्या मै माँ को रोती हुई छोड़ कर जा सकूँगा? नहीं कभी नहीं, मुझे पता है वह मुझे रोकने के लिए हजारों बहाने कर देगी।"

"पर प्रात: होने पर जब तुम नहीं होगे, तो माँ क्या सोचेगी? वह मुझसे पूछेगी। तुम्हारे दोनों नन्हें-मुन्नों से पूछेगी, बोलो तुम्हारे पिताश्री कहाँ है?"

"माँ को मेरे न होने और बारह वर्षों के लिए परदेश जाने के लिए जो दर्द विरासत में मिलेगा, वह तुम अपने और अपने नन्हें-मुन्नों द्वारा बाँट लेना। दुखी लोगों को हँसा देना तो तुम्हारे लिए मामूली-सी बात है।"

"अपने सफर के लिए कुछ धन और सेना ले जाओ, तो सफ़र में आनन्द रहेगा।" मैना ने सलाह दी।

"नही मैना, धन साथ ले जाकर चोरों का भय बना रहेगा। वैसे चोर मेरा कुछ भी नही बिगाड़ सकेंगे, क्योंकि मै हजारों-लाखों को तो चुटकी बजने तक मसल कर रख दूँगा, पर मै धन साथ रख कर धन लुट जाने के भय से ग्रस्त बना रहूँगा, रही सेना साथ ले जाने वाली बात, सो मै तो खुद ही एक बड़ी सेना के समान शक्तिशाली कोटिभट राजा हूँ। मेरी भुजाओं में करोड़ों लोगों का बल भरा है।"

मैना ने हँस कर कहा, "मुझे इसका पता है प्राणनाथ आप खुशी

से परदेश जाओ और अपनी मैना की यह भी बात सुनते जाओ- मै फिर माँ बनने वाली हूँ।"

"क्या?" श्रीपाल ने हैरत से कहा और मैना को बाहों में भर कर उठा लिया।

"हाँ यह सही बात है, आप दो पुत्रों के और पिता बनने वाले है। श्री मुनि वीर कहते है, मै फिर दो पुत्रों की माँ बनूँगी।"

"वाह, मेरी तकदीर।" श्रीपाल ने झुक कर मैना का माथा चूम लिया।

"मै उन पुत्रों को किस नाम से पुकारूँ, तुम्हे यह बता कर जाना होगा।"

श्रीपाल ने कहा, "अब्बू से या माँ से पूछ लेना, या जो नाम तुम ठीक समझो रख लेना। पंडितों से नामों को पूछना बेकार की बात है।"

"आपने खूब याद दिलाया," मैना बोली- "तुम्हें न पाकर अब्बू खूब रोयेंगे और मुझसे लड़ेंगे, फिर मै उनको क्या जवाब दूँगी?"

"अब्बू से कह देना कर्मों ने बारह वर्ष की यात्रा मेरे पति को विरासत में दी थी। वह आने वाले बारह वर्षों में पूरे संसार को दिग्विजयी करके सेना के साथ अष्टमी की रात को लौटेंगे। अगर नहीं लौटेंगे तो मैना यह समझ लेना कि श्रीपाल नहीं रहा। धनपाल ज्येष्ठ पुत्र को राजतिलक कर देना और उसे मेरी जिद, मेरा प्रण बता देना कि चम्पानगरी का साम्राज्य वह जब तक न ले ले, चैन से ना बैठें और मेरी इस प्रतिज्ञा को पूरा करें।"

"ऐसा मत कहो प्राणनाथ, मन के सपनों को तोड़ कर मत जाओ, आप जरूर लौटेंगे बारह वर्ष बाद अष्टमी की रात में," मैना ने कहा और रोने लगी।

"तुम आने वाले पुत्रों के नाम जानना चाहती थी न।" श्रीपाल प्रसंग बदल कर मैना को रिझाना चाहता था। "पुत्रों के नाम देवरथ और महारथ रख देना और मेरा प्यार भी देना।"

"हाँ, हाँ हम सब तुम्हारा इन्तजार करेंगे," मैना ने भर्रायी हुई आवाज में कहा था- "माँ, कुन्दनप्रभा, मेरा अब्बू और तुम्हारे धनपाल, महीपाल, देवरथ और महारथ, सात सौ वीर, मैनानगरी की प्रजा, सेना, रक्षक हर कोई तुम्हारा इन्तज़ार करेगा। सब तुम्हारे दिग्विजयी होकर आने

की हर रोज प्रार्थना किया करेंगे।"

श्रीपाल ने देखा, मैना में अपार साहस है। वह हिम्मत से सीना ताने खड़ी है। उसकी आँखों में आज जुदाई के आँसू तो है पर मैना उन्हें रोके हुए है। वह हँस कर श्रीपाल को विदा करना चाहती है, रोकर या श्रीपाल के मन को विचलित करके नारीत्व का अपमान नहीं करना चाहती।

श्रीपाल ने मैनासुन्दरी के दमकते हुए चेहरे पर सतियों के शील का आज अजीब करिश्मा देखा। वह आगे बढ़ा... और आगे, इतना आगे कि वह मैना से सट-सा गया।

"प्राणनाथ, मुझे याद रखना। प्राणनाथ देश-विदेश की नारी माया में अपनी मैना को मत भूल जाना।" मैना ने यह कह कर श्रीपाल को अपनी खूबसरूत बाहों में भर लिया।

"मैना, मेरी मैना।" श्रीपाल ने मैना को बाहों में भर कर इतना चूमा कि उनके सारे गिले-शिकवे ही दूर हो गये।

27

प्यासे पपीहे को मानो ओस की बूँद मिल गयी और उसने किसी को तृप्त करके अपने को पूर्ण कर लिया।

तृष्णा को तृप्ति और प्यार का नाम देकर दोनों अलग हुए। श्रीपाल ने चलने से पहले सोयी हुई माँ के चरणों पर दृष्टि डाली, सोये हुए दोनों सुकुमारों के गाल थपथपाये और फिर से मैना की ओर घूमा, इशारे से देवरथ और महारथ के बारे में पूछा और फिर मंद-मंद हँसा।

मैना ने हँस कर हवा में कुछ इशारा किया और शरमा गयी। वह परदेश जाते पति के चरणों को झुक कर छू लेना चाहती थी पर श्रीपाल ने उसे बाहों में ही रोक लिया और अपना स्नेहयुक्त हाथ उसकी पीठ पर रखकर प्यार की बौछारें कर दी। इसके बाद वह महल के झरोखे से कमंद के सहारे उतर कर एक नई मंज़िल की तलाश में एक नये सफ़र पर निकल पड़ा। मैनासुन्दरी श्रीपाल को जाते हुए देख रही थी। उसकी आँखों से टप्-टप् आँसू बह रहे थे, पर यह उसकी विवशता नहीं थी, प्यार था, उम्मीदें थीं, जो बीते हुए दाम्पत्य और आगे भोगे जाने वाले घर गृहस्थी के मिले-जुले सपनों से जुड़ी थी।

))X(28)X((

प्रातः होते ही कुन्दनप्रभा को श्रीपाल के परदेश जाने का पता चला। वह न रोई और न ही नाराज हुई, कहने लगी- "मेरा बेटा पराक्रमी, शूरवीर, कोटिभट वंश का सूर्य है। उसने जो निर्णय लिया होगा, वह ठीक ही होगा। रमते योगी और बहते पानी जैसे श्रीपाल को तुमने बिना रोके जाने दिया, यह अच्छा ही किया है। पृथ्वी पर अत्याचारी राजाओं और पाप का बोल-बाला बढ़ गया है, वह जहाँ से गुजरेगा, पाप का नाश होगा। अत्याचारी शासक माटी की धूल में जा मिलेंगे।"

"पर माँ जी वे तो निहत्थे गये है।" मैना ने शंकित होकर कहा- "सूरमा भी बिना शस्त्रों के लड़ाई नही लड़ पाते। मैने उनसे प्रार्थना की थी कि वे सेना और कुछ धन अपने साथ ले जायें, पर वे नही माने। मेरी प्रार्थना अस्वीकार करके कहने लगे, मुझे इनकी जरूरत नहीं पड़ेगी।"

"श्रीपाल ने सही कहा है।" माँ बेटे का पक्ष लेने लगी। "बहादुरों को निहत्थे लड कर भी जीत जाना आता है।"

"वे कहते थे दिग्विजयी होकर बारह वर्ष बाद अष्टमी की रात में आ पहुँचेंगे। मैने इस पर उन्हें कह दिया, प्राणनाथ आप शौक से परदेश जाओ, मै खुशी से आपको जाने दे रही हूँ और आपका रास्ता भी नही रोक रही हूँ पर आप अपने बताये हुए समय पर लौट आना। अगर आप अष्टमी के दिन नही आयेंगे तो मै घर गृहस्थी का त्याग कर दूँगी और दीक्षा लेकर अर्जिका बन जाऊँगी।" मैना कहे जाती थी और आँखों मे रंग-बिरंगे इन्द्रधनुष इकट्ठे कर लाती थी।

"बेटी, उसने जो आने का वायदा किया है, वह उस पर जरूर लौटेगा। मुझे पता है, वह मेरा बेटा है और मेरा बेटा कभी झूठ नही बोलेगा। उसे अपने वंश और माँ की ममता भी तो याद होगी। क्या वह नही जानता, मैना के साथ-साथ उसकी माँ भी उसकी बाट जोहती रहेगी।"

राजा पहुपाल भी आ गये थे। उन्होंने जब श्रीपाल के परदेश चले जाने की बात सुनी तो खूब नाराज हुए। कुन्दनप्रभा और मैना दोनों से लड़ने लगे। कहने लगे- "अगर राज्य और सोने की इच्छा थी तो वह मुझसे कहता, मै उसे अपना सर्वस्व दे देता। मै तो श्रीपाल को

अपना वारिस माने बैठा हूँ, पर मै यह सब कह नही पाता था। हम बूढ़े लोगों का क्या भरोसा? पता नही जीवन कितने क्षण मात्र का है, कभी भी हमारा बुलावा आ सकता है और हमें जाना पड़ सकता है? फिर राज पाट कौन देखेगा? बारह वर्ष किसने देखें है। यह मैना तो मूर्ख है, जो इसने अपने प्राणों को शरीर से बारह वर्षों के लिए निर्वासित कर दिया। मै अगर होता तो ऐसा नही होने देता। चाहे मुझे श्रीपाल के चरणों को पकड़ कर ही विनती करनी पड़ती।"

"अब्बू, बस करो।" मैना ने कहा- "मुझे पता है तुम अपने जमाता को बेटे से कहीं ज्यादा चाहते हो, पर अब्बू तुम ऐसा क्यों नहीं मान लेते कि यह श्रीपाल की जिद नही कर्मों का आदेश था। मुझे पता है जब हम पहली बार श्री मुनि वीर के आश्रम में मिले थे तो श्री मुनि वीर ने कर्मों की मीमांसा करते हुए कर्त्तव्य का बोध कराया था। उन्होंने साफ कहा था- श्रीपाल तुम्हारी किश्ती अथाह समुद्र में है, किनारा पाने के लिए तुम्हें स्वयं निर्णय करना होगा। उन्होंने तो बहुत कुछ कहा था।" मैना ने ठिठक कर कहा।

"और क्या कहा था?" अब्बू और कुन्दनप्रभा दोनों ही जानना चाहते थे।

संसार से विरक्त श्रीपाल में मोह माया पैदा करने के लिए श्री मुनि वीर ने मुझे दर्पण बना कर उनके सामने खड़ा कर दिया। व मुझे बड़े प्यार से निहारते रहे थे। जब श्री मुनि वीर से श्रीपाल ने संन्यास लेने की बात कही तो उन्होंने योग न होने की बात कही और गृहस्थ प्रवेश कर लेने की सलाह दी। श्री मुनि वीर के यह कहने से ही तो श्रीपाल में मोह माया जागी थी और वह मुझे चाहने लगे थे, पर कर्म के बधन बाकी थे, वे घर लौटते हुए कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो गये। क्या यह उनके कर्मों का उदय नही था कि तुमने अपनी मैना को उनके कोढ़ी होने पर भी उनसे ब्याह दिया। उनके शरीर की दुर्गन्ध भी जाती रही थी। जैन मंत्रों और सिद्ध पाठ करने पर वे फिर सोने की तरह कुन्दन हो गये। वे तो पूरे संसार के सम्राट बनेंगे, पर अधिक दिन राज-काज नहीं करेंगे। वह विरक्ति जो वे यौवनावस्था में लिए घूमा करते थे, फिर पैदा होगी और जैन मुनि बनेंगे। इस भव से ही उन्हें मोक्ष प्राप्त होगा। क्या श्री मुनि की वाणी पर तुम्हारे मन में कुछ संशय पैदा होता है, मैना यह कह कर अपने अब्बू को देखने लगी।

"नही, बिल्कुल नहीं।" अब्बू आँखें भर लाया। "बेटी तुमने श्री मुनि वीर की वाणी सुना कर मेरे दिल का बोझ हल्का कर दिया है। मुझे लगता है मेरे श्रीपाल का भाग्य सितारा उदय होकर नभ में चमकने वाला है।"

"सौभाग्यवती रहो और पुत्रवती बनो, फूलो-फलो।" कुन्दनप्रभा ने मैना को आशीष दी। आशीष पाते ही मैना को उल्टी होने को हुई। अब्बू ने घबरा कर कुन्दनप्रभा को देखा।

"घबराओ मत भैया। मैना बेटी फिर माँ बनने वाली है। अगर तुम अपने को अकेला महसूस करते हो तो अपने नवासे धनपाल या महीपाल में से किसी एक को उज्जैनी ले जाओ। वहाँ उसकी देखभाल भी सही रूप से होगी और तुम भी अपना मन बहलाते रहोगे।" कुन्दनप्रभा कह कर हँसने लगी।

कहने की देर थी। अब्बू धनपाल को अपनी गोद में उठाये घोड़े पर चढ़ कर उज्जैनी की ओर दौड़ा। धनपाल को पाकर तो जैसे उसे मन की मुराद ही मिल गयी थी।

29

श्रीपाल अनेक राज्यों, और नगरों की सरहदों को पार करता हुआ बढ़ता रहा। उसके दिल में अनगिन सपने और ज़िन्दगी को एक नये ढंग से जीने की चाह थी। उसे रास्ते में जो पापी अत्याचारी मिला, उसे अपने उपदेशों और ताकत के बलबूते पर धर्म के रास्ते पर ला दिया या मिट्टी में मिला दिया। अपनी शमशीर पर श्रीपाल आश्वस्त था। बडे-बड़े राजा आते और उसको प्रणाम करके सन्धि कर लेते। यह देख वह बहुत खुश होता और उसका घोड़ा भी हिनहिनाता। घोड़ा श्रीपाल का दोस्त भी था और सफ़र का साथी भी। श्रीपाल थक जाता तो वह घोड़े से बातें करने लगता। उनकी बातें भी इशारों में हुआ करती थीं। वे एक दूसरे के भावों को पहचानने, जानने में लगे रहते।

चलता-चलता वह वत्स नगर में आया। इस नगर के नन्दन वन और चम्पक वन बड़े प्रसिद्ध थे। इनमें कई ऐतिहासिक जैन मंदिर भी थे। रोगियों के रोगों को दूर करने वाले जलकुण्ड थे। ऐसे वृक्ष थे, जो हँसते थे या रोते रहते थे। कुछ पूर्वी जंगल की ओर नरभक्षी वृक्ष थे,

जिनकी लतायें पास से गुज़रते हुए लोगों और जानवरों को अपने शिकंजे में ले लेतीं और क्षण भर में ही उनका खून, मांस खाकर हड्डियों का ढाँचा पृथ्वी पर फेंक देतीं। श्रीपाल इन वृक्षों से बच कर विजेता की तरह बढ़ता रहा। ऐसे वृक्षों के अलावा इन वनों में दुर्लभ औषधियों की जड़ी-बूटियाँ भी थी। निरोगी हवा फेंकने वाले वृक्ष थे। स्वादिष्ट फलों के बगीचे थे। दूध की तरह मीठे पानी की नदियाँ थी, जिसके किनारों पर कई गाँव दूर-दूर फासले पर बसे हुए थे।

श्रीपाल ने इन जंगलों में ऐतिहासिक जैन मंदिरों को देखा, जिनकी दीवारें जीर्ण-शीर्ण थी और प्रतिमा खंडित हुई पड़ी थी, जिन्हें देख कर श्रीपाल को ऐसा लगा जैसे यहाँ का शासक बदल गया है और वह हिन्दू समुदाय का नहीं है। एक जैन मंदिर में दर्शन करके वह लौट रहा था, तो रास्ते में एक वट के नीचे उसे एक योगी पुरुष किसी तंत्र विद्या में लीन बैठा नज़र आया। श्रीपाल ठिठक कर उसकी तंत्र विद्या को साधने का तरीका देखने लगा। तरीका तो सही था, पर वह योगी पुरुष मन से अधीर नज़र आता था, इसलिए वह अपनी विद्याओं की साधना नहीं कर पा रहा था।

"हे मित्र, तुम अपने मन को स्थिर रखने का प्रयास करो। चित शांत नहीं होगा तो मंत्र नहीं सधेगा।" श्रीपाल ने उससे कहा वह व्यक्ति चौक कर श्रीपाल को देखने लगा और विनयपूर्वक बोला, मेरे गुरू ने मेरी सेवा से प्रसन्न होकर कुछ विद्यायें मुझे दानस्वरूप दी है, जिन्हें मैं मन के अस्थिर होने से साध नहीं पा रहा हूँ। आप मुझे सहनशील व्यक्ति नज़र आते है। कृपया आप ही मेरी इन विद्याओं को साधने का काम कर दें। अगर आप ऐसा करेंगे तो मैं अपनी यह खुशकिस्मती समझूँगा।"

"प्रिय मित्र, दूसरों की सेवा करना तो मेरा धर्म है।" श्रीपाल ने कहा और उस योगी की विद्याओं को साधने के लिए बैठ गया। कुछ देर में अपने मन के स्वामी श्रीपाल ने योगी से कहा- "प्रिय मित्र लो अपनी विद्यायें ले लो। मैने इन्हें सिद्ध कर दिया है।"

योगी ने श्रीपाल से यों कहा - "आपको देख कर ऐसा लगता है, जैसे आप कोई दिव्य पुरुष है और संसार के महापुरुषों में से एक है। मै आपको ये सब विद्यायें दानस्वरूप दिए देता हूँ।"

"नही मित्र, विद्यायें तुम्हारी है। मेरा इन पर कोई हक नहीं है,

लो अपनी विद्यायें लो और मुझे जाने दो।" श्रीपाल बोला।

परदेशी मित्र, विद्यायें सिद्ध करने वाले पर ही रहे, तो विद्याओं का सम्मान होता है। आप बलवान भी है और बातों से न्यायप्रिय भी नज़र आते है। विद्यायें आप पर रहेंगी, तो आप उनसे दुखी लोगों की विपदाओं को दूर भी कर सकेंगे। मेरी मानों और विद्याओं को अपने पास रहने दो।"

"नही मित्र, इस तरह इन विद्याओं को प्राप्त करना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। इसलिए मैं आपकी विद्यायें नहीं लूँगा।"

योगी ने श्रीपाल की हठ देख कर विनती की, "परदेशी मित्र आप इन विद्याओं में से दो विद्यायें जरूर ले लें। इनमें एक विद्या शत्रु निवारिणी तो दूसरी. जल तारिणी है। दोनों विद्यायें आपके सफ़र में सहायक रहेंगी।"

श्रीपाल योगी से अब अधिक मना न कर सका। उसने योगी से दोनों विद्यायें ले ली और बाकी विद्यायें लौटा दीं। योगी का आश्रम पास में ही था। उसने श्रीपाल को अपने आश्रम में कुछ दिन ठहर कर विश्राम करने की सलाह दी, पर श्रीपाल उसका यह प्रस्ताव अस्वीकार करके आगे बढ़ गया।

30

कौशम्भी के बूढे राजा को करन क्या मिला, अपना पुत्र हरिवाहन मिल गया। उसके नीरस ओर वृद्ध जीवन में फिर से बहारें आ गयीं। अपने नन्हें पौत्र के सर पर राजमुकुट बाँध कर वह दरबार में बैठ कर न्याय किया करता और खुश हुआ करता।

इसी शहर का एक नामी साहूकार धवल सेठ था, जो द्वीप-दीपान्तर में जाकर व्यापार किया करता था। धवल सेठ के पास पाँच सौ पानी के जहाज थे। जहाजों में कौशम्भी के दक्ष कारीगरों की बनाई हुई वस्तुयें होती थी, जिनको सस्ते दामों में खरीद कर धवल सेठ समुद्र पार के राज्यों की ओर जाता रहता था। जहाजों में कुछ और भी वणिक पुत्र (महाजन) अपने सामान के साथ चलते थे, जो धवल सेठ को अपने मुनाफे में से कुछ हिस्सा देने पर सहमत हो जहाज पर यात्रा किया करते। 'कभी-कभी जहाज समुद्री रास्ते पर भटक जाते है,' यह सोच

कर धवल सेठ बारह वर्षों की खाद्य सामग्री जहाज में लदवा लेता।

पहले समुद्री लुटेरों का बड़ा आतंक था। लुटेरों के पास अपने जहाज होते थे, जिन पर चढ़ कर लुटेरे सेठ-साहूकारों के जहाजों को लूट लिया करते थे। धवल सेठ ने इन लुटेरों से अपने जहाजों को बचाने के लिए अपने पास आठ हजार सशस्त्र सैनिक रखे हुए थे, जो हर समय जहाजों पर पहरा दिया करते थे। सेठ की सेठानी कमला भी अद्वितीय रूप वाली थी, जो सेठ के साथ जहाज में बने अपने महल में रहती थी। सम्पन्न सेठ दम्पति को एक ही दुख था कि वे सन्तानहीन थे। एक पुत्र पाने की चाह में सेठ, सेठानी दोनों हर रोज देवी-देवताओं की मनौती मनाया करते। धन का वहाँ अभाव नहीं था, जहाज और महल सब सोने से भरे थे।

इस बार भी सेठ अपने जहाजों के साथ समुद्र की यात्रा पर निकल पड़ा। जब वे कंचनपुर पट्टन के करीब पहुँचे तो एक दर्रे में उसके जहाज अटक गये। सेठ ने अपने विश्वस्त ज्योतिषों से इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बतलाया- "वीर पुरुष की बलि देनी होगी, जहाज तभी चलेंगे।" सुनते ही धवल सेठ स्वर्ण थालों की भेंट लेकर वहाँ के राजा के दरबार में गया और बलि देने के लिए एक सुन्दर बलवान पुरुष की माँग की। राजा ने अपने सैनिकों को आदेश दे दिया कि एक वीर पुरुष की तलाश करके बलि के लिए सेठ जी के पास पहुँचा दो। आदेश पाते ही सैनिक सुन्दर और वीर पुरुष की तलाश में निकल पड़े। श्रीपाल भी कंचनपुर पट्टन में आ पहुँचा था और विश्राम के लिए एक वृक्ष के नीचे लेटा हुआ था। सेठ के महाजनों और राजा के सिपाहियों ने वहाँ से निकलते हुए श्रीपाल को सोया हुआ जान कर आपस में यों बातचीत की-

"यह तो भला मानस है, इसी से काम चलेगा।" एक महाजन बोला।

राजा के एक सिपाही ने कहा- "क्या तुम इसका बल नहीं देख रहे हो, इसे उठाने की हममें किसकी हिम्मत है, अगर यह नाराज़ हो गया तो हम सबको मार डालेगा।"

श्रीपाल सिपाही की इस बात को सुन कर उठ बैठा। उसको अपनी ओर देखते हुए सिपाही और महाजन सभी थर-थर काँपने लगे। श्रीपाल ने उनसे पूछा- "तुम लोग मुझे देख कर डर के मारे काँप क्यों

रहे हो?"

एक महाजन ने कहा, "महाराज हम सब पापी है, आपको अपने साथ इसलिए ले जाने आये थे, जिससे आपकी बलि दे सकें, पर आप तो साक्षात् इन्द्र जैसे तेजस्वी महापुरुष है। इस पाप कर्म को करने के लिए हमारे पास न तो बल है और न ही हिम्मत। कृपया आप हमें क्षमा करें और हमें जाने दे।"

श्रीपाल ठहका कर हँसा और बोला, "तुम लोग मेरी बलि दे सकोगे? यह सुन कर मुझे हँसी आती है। फिर भी मैं अपनी बलि दिए जाने का कारण जानना चाहता हूँ।"

"कौशाम्भी का धवल सेठ अपने जहाजों के दर्रे में फँसे रहने से परेशान है। जहाजों को चलने के लिए एक वीर पुरुष की बलि दी जानी है। हम आपको बलि देने के लिए लेने आये है। राजा ने भी आज्ञा दी है, पर हम अब ऐसा नहीं चाहते, बेशक धवल सेठ या राजा हम पर कुपित हों, हम सभी उनके कोप का भोजन बनने को भी तैयार है।"

श्रीपाल ने उनको दुखी पाकर यों कहा- "डरो मत, मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और धवल सेठ से बात करूँगा। अगर तुम खाली हाथ लौटोगे तो धवल सेठ तुम्हें गिरफ्तार करक यातनाएँ देगा।"

महाजन और सिपाही कृतज्ञता से श्रीपाल की ओर देखने लगे। श्रीपाल अपने घोड़े पर सवार होकर उनके आगे-आगे चल पड़ा। वह सोच रहा था, "देखो अभी भी कर्म मेरे पीछे पड़े है। राजा के सशस्त्र सैनिक मुझे बंदी बना कर बलि देने के लिए धवल सेठ को सौपना चाहते है। आज मैं अपनी किस्मत की आजमाइश करूँगा। मुझे तो दुखों से खेलने की आदत है। किसी दिन मेरी भुजाओं में करोड़ों लोगों को बल था। लोग मुझे अभी भी कोटिभट राजा के नाम से जानते है। आज दरिया (समुद्र) पर मैं कर्म के सामने खड़ा होकर लडूँगा। मुझे अपने मरने का कोई रंजोगम नहीं होगा। वीरता से मर जाना तो क्षत्रियो की आन-बान रही है।"

कर्म के खेल को देखने के लिए श्रीपाल चुपचाप चल कर सेठ के जहाजी बेड़े पर आया। आकर्षक चेहरे के एक रौबदार व्यक्तितत्व वाले श्रीपाल को देख कर एक बार तो सेठ भी सहम गया, फिर अपने को संयत करके बोला-

"अरे, यह तो लक्षणावत पुरूष है। चलो इसे घाट पर बने जलदेवी के मंदिर पर ले चलो। इसे स्नान कराओ और इसके अंग-अंग पर चंदन का लेप लगा दो। इसे रेशम के वस्त्र पहनाओ। गाजे-बाजों का खूब शोर करो। भूखों-कंगलों को रोटी और वस्त्रों का दान दो। जिससे जलदेवी प्रसन्न हो और हमारे अटके हुए जहाज चल पड़ें।"

श्रीपाल ने सेठ की यह सब बातें सुनी पर वह चुप रहा। धवल सेठ के महाजनों ने उसे स्नान करा कर रेशमी वस्त्राभूषण पहनाये और शरीर पर चंदन का लेप करने लगे।

वे सब आज बहुत खुश थे कि वीर पुरुष की जलदेवी पर बलि चढ़ेगी और जहाज चल पड़ेंगे।

श्रीपाल उनके टोटके देखता रहा और कर्मों पर मन ही मन हँसता रहा। उसने देखा धवल सेठ आ गया था, उसने आते ही एक सैनिक को श्रीपाल का सर उतार लेने को कहा। पर श्रीपाल ने कर्कश आवाज़ में सेठ से पूछा-

"हे धवल सेठ, क्या तुम मेरे पिता जैसे नही हो। मै बेकसूर हूँ, मुझे कत्ल करने में तुम्हारा मकसद क्या है?"

"वत्स, हम तो अपने प्रोहणों (जहाजों) को चलते हुए देखना चाहते है, जो यहाँ महीनों से अटके पड़े है। वरना हम तुम्हारी हत्या क्यों करें? जलदेवी किसी क्षत्रिय पुरुष की बलि चाहती है। इसलिए तुम्हें यहाँ लाया गया है", धवल सेठ ने साफ-साफ बात कही।

श्रीपाल हँसा, "बस इतनी-सी बात पर मेरी बलि देते हो। अरे मूर्ख सेठ क्या तुम मेरी शक्ति से परिचित नहीं हो। तेरे ये दस बीस हजार सूरमा भला मेरा क्या बिगाड़ेंगे? इन्हें तो मै क्षण भर में मार सकता हूँ, पर मै ऐसा करना नहीं चाहता। चलो मै अपने बाहुबल से तुम्हारे दर्रे में अटके पड़े जहाजों को चला देता हूँ।"

सेठ सहसदम-सा मूक बना खड़ा रहा। श्रीपाल ने दर्रे में अटके पड़े जहाजों को इस प्रकार खैंच-खैंच कर आगे की ओर ठेला, मानो वे जहाज न होकर उसके लिए खिलौने हों, कोटिभट वंश के सुकुमार श्रीपाल की अद्वितीय शक्ति से घबरा कर जलदेवी प्रगट हुई और हाथ जोड़ कर कहने लगी- "हे देव, मैने आज तक इतना शक्तिशाली मानव नहीं देखा। मै तुम्हें नमन करती हूँ। जहाजों को ले जाओ, मेरी ओर से ये सब मुक्त हुए।"

धवल सेठ के जहाज चल पड़े। सेठ और सेठ के महाजन, सैनिक सब अपने-अपने जहाजों पर जा चढ़े। सेठ ने श्रीपाल से कहा-"मै आपकी ऋणी हूँ और सदा आपको याद करूँगा।"

"नही मुझे याद रखो यह कोई जरूरी नहीं है, पर अपने आपको जरूर याद रखना, धर्म छोड़ कर किसी की हत्या करना बुरी बात है। तुम यह मत मानो दुनियाँ कायरों से भरी पड़ी है। यहाँ पर मुझ जैसे बलवान लोगों के भी आशियाने हैं। जो तुझे, तेरा लश्कर, जहाज मालोजर सभी कुछ को क्षण भर में सागर में डुबा डालेंगे। फिर तुम क्या करोगे?"

धवल सेठ ने श्रीपाल से यों कहा, "आज आपने अपनी ताकत से मेरे जहाजों को चला कर मुझे बेटे की याद दिला दी। वह मेरा अपना बेटा तो नही था, पर मेरा धर्म पुत्र था। समुद्र में आने वाली विपदाओं में वह मेरा साथ दिया करता था। आपकी तरह ही मुझे डाँट देता फिर प्यार करने लगता। मेर कुंवर जी, मै बहुत शर्मिंदा हूँ और अपने किये की क्षमा चाहता हूँ। आप जो कहते हो, वह मै याद रखूँगा और जब तक जीऊँगा आपको नहीं भूलूँगा।"

"तेरा धर्म पुत्र कहाँ गया?" श्रीपाल ने पूछा।

"कर्म के खेल की बात है। एक द्वीप में उसे एक सुन्दर नारी मिल गयी, कम उम्र की उस रूपसी ने उसको अपने मोह जाल में फाँसा और अपने देश ले गयी। जहाँ जादू के जोर पर पुरुषों को कैद कर लिया जाता है। आप उस स्थान को जादूगरनी का देश भी कह सकते है।"

"आप व्यापार करने के लिए कौन कौन से द्वीपों में जाते है?"

समुद्र के आस-आस पड़ने वाले हर राज्य से हमारा व्यापारिक संबंध है।

"क्या मुझे भी अपने साथ ले चलोगे?"

"नेकी और पूछ-पूछ। वाह, तुमने तो मेरे मन की बात कह दी। मै भी तो यही कहना चाहता था।" धवल सेठ प्यार की भाषा बोलने लगा।

"पर मुझे मुनाफे का कितना हिस्सा मिलेगा?" श्रीपाल जानना चाहता था।

"जितना तुम चाहोगे।" धवल सेठ बोला।

"दसवाँ हिस्सा लूँगा, मंजूर है?" श्रीपाल ने पूछा।

"मंजूर है," धवल सेठ ने कहा। "पर मै तुमको अपना धर्म पुत्र बनाना चाहता हूँ। मेरा अपना कोई बेटा नही है। कुँवर जी मेरे धर्म पुत्र बन जाओ, मेरा सब कुछ तुम्हारा है। मै आदिनाथ भगवान की सौगन्ध खाकर कहता हूँ, तुमसे कभी दगाबाजी नही करूँगा।"

"अच्छा, चलो मै आज से आपका धर्म पुत्र हूँ।" श्रीपाल ने बड़ी संजीदगी से कहा, "सोच लेना आपका पहला धर्म पुत्र लौट आया है।"

"तुम, तुम शशीकान्त बनोगे।" धवल सेठ हकलाया।

"हाँ, हाँ मै आपका शशीकान्त हूँ, मेरा नाम श्रीपाल है। क्या इन दोनों नामों में आपको कोई फर्क़ नज़र आता है?"

धवल सेठ श्रीपाल की बातों से आनन्दित हो उठा और सोचने लगा कि आज उसके पुण्य का उदय हुआ है। जो कोटिभट वंशी सुकुमार उसे बेटे के रूप में मिला है।

वह फिर से पुत्रवान हो गया। उसकी बेटा पाने की साधना पूरी हुई, जब कमला श्रीपाल को देखेगी तो बहुत खुश होगी। शशीकान्त की जुदाई में टूटी हुई कमला को ऐसे पुत्र की प्राप्ति हुई है, जिसे दीपक लेकर संसार में नही खोजा जा सकता। लाल (हीरे) क्या ऐसे ही मिल जाते है? शायद्र यह समय और भाग्य का मिला-जुला करिश्मा रहा होगा। ख्यालों में धवल सेठ खोया हुआ था और गहरे सागर पर उसके प्रोहण (जहाज) दौड़ रहे थे।

अचानक ही मल्लाहों की चिल्लाहट सुनाई दी, "समुद्री लुटेरे आ गये है। अरे, जल्दी से फौजें इकट्ठी हो जाओ। ये हमारे माल को लूट रहे है। हाय किस जन्म की विपदा आ गई, हम कहा भाग कर जाएँ?"

धवल सेठ सम्पर्क यंत्रों पर बैठ कर चिल्लाया, "चीखो मत, मै अभी अपनी फौज को समुद्री लुटेरों से निपटने को भेज देता हूँ। मेरी फौजें इन लुटेरों को पकड़ लेंगी और समुद्र में फैले इनके आतंक को मिटा देंगी।"

धवल सेठ ने मल्लाहों से यह कह कर अपनी फौजों को लड़ने के लिए तैयार किया और समुद्री लुटेरों से युद्ध करने लगा। वहाँ बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। धवल सेठ वणिक पुत्र जरूर था, पर था साहसी। उसका लड़ने का तरीका एक वीर सैनिक या क्षत्रियों जैसा ही था। उसके

वीरों द्वारा बहुत से लुटेरे मारे गये, तो कुछ चीखते हुए समुद्र में जा गिरे, पर बाकी के लुटेरे सेठ के जहाजों पर चढ़ आए और उनसे तलवार युद्ध करने लगे। कुछ कायर महाजन युद्ध के इस भयंकर रूप को देख कर गश खाकर गिर पड़े। तलवारें खचाखच चल रही थी। लुटेरे और सैनिकों के सर धड़ से अलग होते और वे चीखते हुए समुद्र में जा गिरते। समुद्र का खारा पानी इस अजीब खूनी संघर्ष से लाल होने लगा।

महाजनों ने जब अपने खून-पसीने की कमाई का धन लुटेरों द्वारा लुटते हुए देखा, तो वे इकट्ठे होकर श्रीपाल के पास गये और उसे लुटेरों द्वारा धवल सेठ, सैनिकों को बंदी बना कर जहाजों को लूट लिए जाने की खबर दी। श्रीपाल ने यह सुन कर देर नहीं की। अपनी शमशीर म्यान में डाल कर कमर से बाँधी और लुटेरों से लड़ने निकल पड़ा। उसके हाथों में तरकश और तीर भी थे।

श्रीपाल अपने जहाजों से लुटेरों को पकड़ कर हाथों में लेकर कीड़ों की तरह मसलता और समुद्र में फेंक देता। वह बढ़ता रहा और अपने जहाजों को लुटेरों से मुक्त करता हुआ लुटेरों के सरदार के सामने पहुँचा और चिल्ला कर बोला- "वह उसके पिता को मुक्त कर दे और लौट जाये। जहाजों को लूट लेने का ख़्याल छोड़ दे, वरना अंजाम बुरा होगा।" पर सरदार ने उसकी माँगें अनसुनी कर दीं। तो श्रीपाल ने तीरों का युद्ध शुरू कर दिया। श्रीपाल द्वारा छोड़े गये तीरों से लुटेरे धड़ाधड़ मरने लगे। यह देख कर सरदार बौखला गया और भागने के लिए अपने जहाज में जा चढा, पर श्रीपाल ने उसे ओझल होने नहीं दिया, वह उछला और सीधा सरदार के जहाज में जा कूदा। अकेले श्रीपाल को युद्ध करते हुए देख कर सरदार के होश फाख्ता हो गये और उसने अपने साथियों को हथियार डाल देने को कह कर युद्ध बंद कर दिया।

श्रीपाल ने अपने धर्म पिता और उसके सैनिकों को बंधन मुक्त करा कर सभी लुटेरों को बाँध लेने को कहा। लुटेरों के सरदार को तो श्रीपाल ने अपनी कोख में दबा रखा था। दर्द विह्वल लुटेरों का सरदार चिल्लाता और जहाजों पर गर्व से दौड़ते सेठ के महाजन और सैनिक हो-हो करके हँस देते।

सभी लुटेरों को बाँध कर श्रीपाल के सामने पेश किया गया। श्रीपाल ने अपने धर्म पिता, सेठ के मंत्रियों और सफर के साथी महाजनों

से उनके साथ किये जाने वाले न्याय के बारे में बातचीत की।

"इन्हें कत्ल कर दो।"

"इनके हाथों को काट डालो, जिससे ये कभी लूटमार न कर सकें।"

"इन्हें समुद्र में फेंक दो, समुद्र में दौड़ती हुई शार्क मछलियाँ इन्हें खा जायेंगी।"

"नही, इन्होंने हमें कई बार लूटा है, इनकी खाल उतार लो। इनके पेटों को चीर कर उनमें भूसा भरवा दो और इनको समुद्र में बहने दो, जिससे इनके दूसरे साथी लुटेरे इनका बुरा अंत देख कर समुद्री व्यापारियों के जहाजों को लूटने की हिम्मत न कर सकें।"

"नही," श्रीपाल ने कहा- "बहुत कत्लेआम हो चुका है। अब कोई हत्या नही होगी। क्यों पिताश्री," वह धवल सेठ से पूछने लगा- "आपकी क्या राय है?"

"हाँ पुत्र, आज मैंने पहली बार इन लोगों को तुम्हारे हाथों से झुंडों के रूप में मरते हुए देखा है। जैसा तुम चाहो करो, मेरी स्वीकृति है।" सेठ बोला।

श्रीपाल ने धवल सेठ की आज्ञा ले लेने पर सभी लुटेरों से यों कहा- "प्रिय मित्रों, तुमने मेरे पिता और सैनिकों को बंदी बना कर हमारे जहाजों को लूटा था, इसलिए मुझे युद्ध करके तुम्हें बंदी बनाना पड़ा। अब आपसी वैमनस्य त्याग कर आओ मित्र बनें और अपना-अपना रास्ता लें।"

लुटेरों का सरदार श्रीपाल के न्याय पर इतना लज्जित हुआ कि वह मर जाने के लिए दांयें-बांयें देखने लगा। इस पर श्रीपाल ने यों कहा, "सारी जिन्दगी लूटमार करने के बाद आज तुमने शायद अपने पीछे मुड़ कर देखा है। तुमने अपने सर पर पापों की पोटली रखी हुई है। जाओ अपने साथियों के साथ पापों के इन कर्म बंधनों को काट लो। धर्म में मन लगाने से ही तुम्हारा हित होगा।"

"पर यह कैसे होगा, पाप कैसे कटेंगे, हमें धर्म कैसे प्राप्त होगा? इस छोटे से पेट को भरने के लिए हमने हजारों लोगों को मारा, लूटा है।" सरदार और उसके साथियों ने कहा और रोने लगे।

श्रीपाल ने देखा उनका हृदय परिवर्तित हो रहा है। वे धर्मी बनने के लिए लालायित हैं और अपने पापों से छुटकारा पाना चाहते हैं।

"हमें रास्ता दिखला दो।" सरदार और उसके साथी श्रीपाल के चरणों में गिर कर बोले, "पाप करते-करते हम ऊब चुके है, चाहे तो हमें मार डालो, हम जिन्दा रहना नही चाहते।"

श्रीपाल ने कहा, "मै मैनानगरी का राजा कोटिभट श्रीपाल हूँ। तुम लोग मैनानगरी पहुँचो। वहाँ तुम्हें मेरी माँ कुन्दनप्रभा और रानी मैनासुन्दरी मिलेगी। अगर तुम चाहोगे तो वह उज्जैनी नगरी से लगे जैनाचार्य आश्रम में तुम्हें दीक्षा दिला देगी। संन्यास लेकर अपने पापों से मुक्ति पाना ही तुम्हारे लिए उत्तम रहेगा। यह रास्ता स्वर्ग ओर मोक्ष दोनों ही ओर जाता है।"

श्रीपाल के कहने की देर थी। लुटेरों के सरदार ने कहा- "आप ठीक कहते है। एक बार मै एक जैन मुनि की नग्न अवस्था देख कर हँसा था और उनकी निन्दा की थी। आज मैं खुद ही जैन मुनि बनना चाहता हूँ। महाराज यह कार्य तो कही भी या यही पर भी किया जा सकता है। फिर आप मुझे मैनानगरी या उज्जैनी चले जाने को क्यों कहते है? हम तो लुटेरे है। धन को देख कर हमारा लालची हो जाना स्वाभाविक बात है। मै अब देर करना नही चाहता, दीक्षा लेना चाहता हूँ। हमें जैन मुनि की दीक्षा दिला दो।"

श्रीपाल लुटेरों का विरक्ति मन देख कर खुल कर हँसा। उसने सरदार से पूछा, "तुम अपने जहाज और उसमें भरे सोने का क्या करोगे?"

"आपको दे रहा हूँ। आप उसे स्वीकार कर लें और अपने शहर के धर्म कार्यों में लगा दें।"

"अगर मैं स्वीकार न करूँ तो," श्रीपाल हँसने लगा।

लुटेरों के सरदार ने कहा- "तो मै इस समुद्र पर अपने सोने भरे जहाज को ऐसे ही बहने दूँगा। मुझे पता है, धन मोह पैदा करता है और मोह माया को, माया पाप और अविश्वास की उत्पत्ति करती है।"

"वाह, क्या शानदार बात कही है।" श्रीपाल ने कहा और अपने महाजनों के साथ बैठ कर उसने सरदार और उसके लुटेरे साथियों को दीक्षा दिला दी, फिर धन को बाँध कर धवल सेठ को सौपते हुए यों कहा- "पिताश्री यह धन धर्म कार्यों के लिए है और अब रही जहाज की बात, ये ज्ञानोपदेश देने वाले जैन भिक्षु अपने जहाज पर ही रहेंगे

और हमारे साथ-साथ चलेंगे। आपको इनके जहाज पर खाने-पीने की व्यवस्था और सुरक्षा का प्रबंध करना होगा और यह अच्छी तरह याद रखना होगा कि आप इन्हें भूल कर भी लुटेरे नही कहेंगे।" सभी उपस्थित लोगों ने श्रीपाल को अपनी भरी हुई आँखों से देखा और सोचने लगे, "क्या यह स्वर्ग का वासी इन्द्र है, जो अपने द्वारा पृथ्वी का कल्याण करने आया है।" लोग सोच रहे थे और हर्ष से दोहरे भी हो रहे थे। अब धवल सेठ के काफ़िले में एक अन्य जहाज की बढ़ोत्तरी हो गयी थी। इस जहाज पर बहुत से धर्म के उपदेशक बैठे धर्म उत्पत्ति करने हेतु साधना में ध्यानमग्न थे। वे अपने कर्मों के बंधनों को समता भावों से काट रहे थे। समुद्री सफ़र फिर शुरू हो गया था।

))X(31)X((

काफ़िले में धर्म अनुयायी भी साथ है। यह देख कर समुद्र के निकटवर्ती नगरों के वासी समुद्री बेड़ों पर अपार जनसमूह के रूप में एकत्र होकर आते और जैन मुनियों के आचार्य से प्रार्थना करते कि हमें धर्म मार्ग पर चलते रहने का कोई ऐसा उपदेश दो जिससे हमें मुक्ति मिल जाये। आचार्य उन्हें अपनी कहानी सुना देते, कहते यह शरीर तो नाशवान है। मन लोभी है, तृष्णा की उत्पत्ति करता है। हमारी जिह्वा स्वादु है, जो स्वादिष्ट वस्तुओं के भोग में लिप्त रहती है। हमारे कान प्यार की आवाज़ के घुँघरू का स्वर सुनना चाहते है। हमारे हाथों से पाप का जन्म होता आया है और हमारे पैर पाप के रास्तों पर चलते रहे है। आँखों का भी हाल बुरा है। ये आँखें हर सुन्दर वस्तु को देख कर धोखा देती और खाती रहती है। इन आँखों के भ्रम में अपने को डाल कर हम हर कुकृत्य कर जाते है। लो सुनो, मै तुम्हें समुद्री लुटेरों के सरदार शंकर की कहानी सुनाता हूँ।

आचार्य ने कहानी यों शुरू की- एक गाँव था, गाँव में एक जमीदार था, जो धन वैभव से सम्पन्न था। उसकी पत्नी सुन्दर थी, उनके एक पुत्र था। नन्हीं-सी उम्र में ही वह पुत्र अपनी आकांक्षाओं को पूरा करने के सपने देखा करता, पर माँ का स्वर्गवास हो गया। पुत्र हर समय मातृ शोक में डूबा रहता। उधर जमीदार एक नयी पत्नी ले आया। नयी पत्नी ईर्ष्यालु थी। वह शरीर से तो सुन्दर थी, पर उसका दिल कोयले

से भी अधिक काला था। अपनी नयी माँ का नन्हें शंकर ने हर रोज एक नया रूप देखा। वह उसे भूखा रखती और पीटा भी करती। पिता भी नयी माँ का साथ देकर उसे अपनी गर्जदार कर्कश बोली से डरा दिया करता। यह देख शंकर मानसिक कष्ट से पीड़ित रहने लगा। उसने देखा पिता अपने खेतों पर निकल जाते है और माँ पीछे घर में नये-नये पुरुषों को बुला कर आनन्द पाने की तलाश में भटकती रहती है।

एक रोज उसने पिता द्वारा माँ को पीटते हुए देखा और कहते हुए सुना कि माँ व्यभिचारणी हो गई है। माँ हाथ जोड़ कर क्षमा माँग रही थी और भविष्य में आदर्शता से चलने की बात भी कह रही थी। भोले पिता ने माँ को यह सोच कर क्षमा कर दिया कि वह धर्म मार्ग पर आ गयी है, पर यह उसकी भूल थी और आँखों में आक्रोश लिये माँ ने रात में ही उसके पिता की हत्या करा दी और नन्हें शंकर को अपनी और अपने तन भोगी साथियों की साक्षी में राज सैनिकों द्वारा पकड़वा दिया। मुकद्दमा चला, नन्हा शंकर गिड़गिड़ाता रहा और न्याय की भीख माँगता रहा, पर उसकी माँ और माँ के प्रेमियों ने अपने तन और धन के बूते पर न्याय करने वाले काजी को भी खरीद लिया और उसको ही हत्यारा साबित करा दिया।

हाँ नन्हा शंकर हत्यारा मान लिया गया। वह राजदरबार में पेश हुआ, चूँकि वह छोटा था इसलिए उसे फाँसी नहीं दी गयी और बाल कारावास में भेज दिया गया। नन्हें शंकर के दिल में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। वह अपने नन्हें कैदी साथियों को अपनी कहानी सुनाता और रोने लगता। दूसरे बच्चे भी रिश्ते के लोगों के अत्याचारों के कारण जेल आये थे। उनके दिल और आँखें अपने पर हुए अत्याचारों पर जलने लगती। शकर उन्हें मनुष्य जाति से बदला लेकर मज़े की ज़िन्दगी पाने को भड़काता रहता। वे सब शंकर की बातें ध्यान से सुनते और उसे अपना सरदार कहते। समय उन्हें यौवन की ओर घसीटता रहा और बाल सुलभ मस्तिष्कों में एक अपराधी योजना का जन्म होता रहा।

जेल में शांत रह कर और वहाँ के काजी, न्यायधीश आदि को अपने शाँति कार्यों से मोह कर शंकर अपनी बाल फौज के साथ मुक्त होकर बाहर निकल आया।

32

शंकर ने जेल से बाहर आकर सैकड़ों साथियों के साथ समुद्र के किनारे अपने तम्बू ताने और भूले भटके समुद्री मुसाफिरों को लूटने लगा। लूटमार करते हुए उसका हौसला और साथी दोनों ही बढ़ते रहे। वह समुद्री लुटेरे के नाम से प्रसिद्ध हो गया। लोग उसका नाम सुनते ही डर जाते। व्यापारी थर-थर काँपने लगते। घर लौटते तो अपने पड़ौसियों को शंकर के अत्याचारों की कहानी सुनाते। उसने समुद्र के किनारे खड़े जंगलों में अपने ठिकाने बना रखे थे और पानी पर तेज दौड़ने वाला एक जहाज भी खरीद रखा था। वह औरतों की अस्मत को अपने साथियों में बाँट दिया करता। पुरुषों को अपनी शमशीर से मार काट कर समुद्र में फेंक देता, पर निरीह बच्चों पर कभी अत्याचार नही करता, उनको उनके देश में अपने जहाजों द्वारा भेज दिया करता। वह आज भी अपना बचपन, माँ की विलासिता और क्रूर बाप की मार याद रखे हुए था। उसने जी भर कर अत्याचार किये। करोड़ों की सम्पत्ति लूटी और शान से ज़िन्दगी के हर पहलू को जिया। वह यह सब हिम्मत से किया करता था, पर एक दिन, हाँ एक दिन, आचार्य ठिठके....!

जनसमूह में से कई स्वर आये- "एक दिन क्या हुआ आचार्य? क्या शंकर बदल गया, उसने हत्यायें करनी छोड़ दी।"

"हाँ, शंकर बदल गया, उसने हत्यायें करनी भी छोड़ दी।" आचार्य कह रहे थे, उनकी आँखों में आँसू थे।

"पर कैसे आचार्य, वह दरिंदा कैसे सत्य के रास्ते पर लौट आया?" लोग कहने लगे, पूछने लगे।

हमेशा पाप का अंत हुआ है। शंकर के पाप कर्मों का भी अंत आ गया था। उसने एक दिन ऐसे जहाजी बेड़े को जा घेरा, जिसमें जैन धर्म मानने वाला एक कोटिभट राजा श्रीपाल यात्रा कर रहा था। शंकर ने उस जहाजी बेड़े को लूटा और रक्षक और मालिक सभी को बाँध कर अपने जहाज में ला पटका, इसके बाद उसके सभी लुटेरे अपने जहाज के घेरे में सेठ के जहाजों को बंदी बना कर चल पड़े। श्रीपाल को जब यह पता चला तो वह अपने धर्म पिता के जहाजों को बचाने और उनको कैद से छुड़ाने के लिए ललक कर उठा। उसके बाणों और शमशीर के आगे समुद्री लुटेरों का दल साफ हो गया। बचे-खुचे लुटेरे

अपने सरदार के साथ श्रीपाल द्वारा बंदी बना लिए गये।

"फिर क्या हुआ?" लोग पूछने लगे।

"श्रीपाल ने लुटेरों से अपना लुटा हुआ धन लेकर उन्हें माफ कर दिया और शंकर से कहने लगा- बहुत कत्लेआम हो चुका है। मै तुम्हें मारना नहीं चाहता। मेरा बल प्रयोग करने में विश्वास नहीं है। तुमने हमारे जहाजों को लूटा, मेरे सैनिकों और पिता को बंदी बनाया, इसलिए मेरे हाथों से तुम्हारे कुछ साथी मारे गये हैं। मैने सुन रखा है तुम समुद्र के विजेता लुटेरे शंकर डाकू हो, पर आज तुमने अपनी आँखों के आगे अपने बहुत से साथियों को मरते-खपते देखा है। तुमने बहुत चाहा पर एक क्षत्रिय राजा के सामने जम कर युद्ध नहीं कर सके। मै तुम्हें समुद्र का विजेता नहीं मानूँगा, तुम तो कायर हो, जाओ मै तुम्हें क्षमा करता हूँ।" श्रीपाल ने समुद्री लुटेरे शंकर को क्षमा कर दिया। मानो शंकर लुटेरे का अज्ञान जाता रहा। धर्म की बंद साँसें उनके शरीर में चलने लगी। उसे लगा, वह लुटेरा नहीं, अबोध शंकर है। जो अत्याचारों से पीड़ित होकर बचपन में जेल चला गया था और वहाँ एक नये जीवन की शुरूआत करने के लिए सपने संजोया करता था।

कर्मों के बंधन टूट रहे थे। शंकर लुटेरा श्रीपाल के चरणों में गिर पड़ा। वह अपने पापों के पश्चाताप करने का तरीका पूछने लगा। वह विरक्त हो गया था और अपने जीवन से मोह छोड़ बैठा था। श्रीपाल ने उसे सत्य मार्ग पर चल कर लोगों का कल्याण करने की सलाह दी। शंकर ने देर नहीं की। क्योंकि अब उसके कर्मों का सूर्य उदय हो चुका था। अपनी लूट का धन धर्म कार्यों को अर्पित कर शंकर ने अपने साथियों के साथ जिन दीक्षा ले ली। वह आज शंकर मुनि बना बैठा है और अपने पापों के बधनों को काट रहा है।

"आचार्य, शंकर मुनि कहाँ है? हम उनके दर्शन करके सत्यमार्ग पूछेंगे। हम उनसे उनका दर्द भरा बचपन पूछेंगे?"

क्या कहें आचार्य, क्या बोलें आचार्य? क्या ये कह दें शंकर मुनि तो तुम्हारे सामने बैठा है। आचार्य के साथ जो जैन मुनि दल है, वह शकर के लुटेरे साथी है, जो अपने क्रूर हाथों से बहुत से लोगों की हत्यायें करने के दोषी है।

आचार्य कह रहे थे- "सो हे प्यारे भाइयों, तुम अपने बच्चों को मत सताना, यह याद रखना, एक अत्याचार से एक शंकर का जन्म

होता है। मेरी बहनों से भी विनती है कि वे पतिव्रता रहें और भोगी बन कर अपने नन्हें शंकर का भविष्य जेल में न फलने-फूलने दें और हम ऐसा कुछ न करें जो हमारे नन्हें-मुन्ने उससे पीड़ित हों। बच्चे तो भगवान का रूप होते हैं। हमें इन भगवान के प्रतिबिम्ब पर अपने अत्याचारों की निशानी नहीं छोड़नी है। हमें अपने बच्चों को प्यार, ममता, साहस से पराक्रमी बनाना है। हमें अपने वंश के दीपक में धर्म का तेल डालना है, तभी तो हम उसका प्रकाश वृद्ध अवस्था में आने पर भी पाते रहेंगे।"

"धन्य हो आचार्य," लोगों ने कहा और उसके चरणों को छूने लगे। कुछ ने उनसे कहा- "शंकर मुनि से हमारा प्रणाम कहना। आप मुनि है, मुनियों से मुनि तो मिलते ही रहते है।"

शंकर मुनि सत्य स्वरूप है। कुछ कह रहे थे।

"आचार्य," बहुत-सी सुन्दरियों ने प्रणाम करके कहा- "आपने हमारी आँखें खोल दीं। हम तो नारी मर्यादाओं का ढोंग रच कर पतिव्रता बनी फिरती थीं और यौन सुख में डूबी हुई थी। हमें तो अभी तक इतना पता था कि पा लेने में ही सुख है, तृप्ति है। हमने कभी नहीं सोचा था कि यह पाप, जो आज हम कर रही है हमारे कर्मों को इकट्ठा करेगा और कर्मों का दण्ड हमें भोगना पड़ेगा।"

आचार्य ने उन्हें आर्शीवाद देकर नारी मर्यादाओं में रह कर जीने की सलाह दी और आँख बद करके पाप-पुण्य का हिसाब देखने लगे। आँख खुली तो देखा श्रीपाल और धवल सेठ दोनों ही हाथ जोड़े खड़े थे।

"तुम," आचार्य ने कहा- "आओ आसन ग्रहण करो।"

श्रीपाल और धवल सेठ आचार्य के सन्मुख आ बैठे। श्रीपाल ने कहा, "आचार्य आपको देख कर ऐसे लगता है, जैसे स्वर्ग से कुछ प्रकाश पृथ्वी पर आ गया है।"

"युवराज उपहास करते हो?" आचार्य ने टोका।

"जैन मुनियों का उपहास करके क्या मै अपने कर्मों के बंधनों को बाँधूगा? मै तो पहले ही कर्मों के जालों में मकड़ी की तरह फँसा हूँ। आचार्य मै उपहास करना तो दूर यह सब सोचना भी नही चाहूँगा। मै तो आपके दर्शनार्थ आपके चरणों में आया हूँ।"

हँसे आचार्य, "अरे श्रीपाल तू तो कोटिभट राजा है, करोड़ों

आदमियों को क्षण में बस में कर सकता है, फिर कर्म और तकदीर की बातें क्यों करता है?"

"आचार्य मुनिदेव, आप ठीक कहते है। मै शक्तिशाली राजा जरूर हूँ, पर मेरी शक्ति पापों को नाश करने और पुरुषार्थ को जिन्दा रखने के लिए है, पर धर्म का विरोध करने के लिए वही शक्ति पंगु जैसी है। मुझे पता है सांसारिक शक्ति का संचालन एक दूसरी शक्ति करती है, जो संसार से विरक्त होकर तपस्या मे संलग्न जैन मुनियों के पास है। आप सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान और शक्ति से भरपूर हैं। तभी तो आप संसार के कल्याण की बात करते है।"

"हाँ आचार्य", धवल सेठ ने श्रीपाल का समर्थन किया- "एक दुर्बल शरीर का संन्यासी भी भगवान का प्रतिबिम्ब है और सर्वशक्तिमान भी, वह अगर अपनी साधना में सच्चा है तो पूरे संसार पर सुख की छाया फैला कर सभी के दुखों को अपने हाथों की मुट्ठियों में बंद कर सकता है। जैन धर्म की तो बात ही कुछ और है। इसमें किसी वर्ग, समाज या धर्म की उपेक्षा नहीं होती। किसी भी धर्म का व्यक्ति जैन धर्म स्वीकार कर सकता है। प्रायः जैन मुनि अजैन और दूसरी जाति, समाज से आये हुए देखे गये है। इस धर्म की साधना कठिन है। नग्न रह कर अपनी सारी इन्द्रियों को वश में करना क्या मामूली बात है? वस्त्र विहीन रहकर गर्मी, शीत और पानी की ऋतु को सहना सिर्फ़ जैन मुनियों को आता है। आहार भी साधारण तरीके से नहीं लेते, विधि के अनुसार लेते है। कभी-कभी विधि पूर्ण नही होती और महीने ही नही साल भी बीत जाते हैं। क्या जैन मुनियों की तरह दूसरे धर्म के साधु संन्यासी और संत ऐसा कर सकेंगे, कदापि नहीं और इसलिए मैं जैन मुनि के सर्वश्रेष्ठ बाने में आपको देख कर अपना सर आपके चरणों में नमन करता हूँ।"

आचार्य ने धवल सेठ के सर पर अपना स्नेहयुक्त हाथ रख कर कहा- "वत्स! यह संसार तो मछेरों के जाल जैसा है, जिसमें हम मछली की तरह फँस कर छटपटाने आये है। संसार से मोह माया छोड़ कर जैन मुनि बन जाना जीवन का श्रेष्ठतम कार्य है, जो हमें करना चाहिए पर ऐसा समझ कर हम सब जैन मुनि बन जायें तो हमारे उपदेशो को कौन सुनेगा? जिस सत्य मार्ग के लिये हम पाप की छाया में विश्राम करते लोगों को जगाने आये है, वे न जाने कहाँ होंगे, इसलिए हमें

चालीस वर्ष तक गृहस्थ आश्रम में रह कर सत्य मार्ग अपनाना होगा। पापों से बच कर धर्म करने होंगे। लोगों में आपसी प्यार पैदा करना होगा, जो वे भूल गये हैं। हमें छल, कपट, और बल का इस्तेमाल नहीं करना है और अपने श्रम से अपने जीवन का सच्चा सुख पाना है।"

"आचार्य," श्रीपाल आगे बढ़ा। "मुझे भी तो कुछ रास्ता दिखला दो। कर्मों की माया में मैं बुरी तरह उलझा हुआ हूँ।"

श्रीपाल की बात पर आचार्य खुल कर हँसे और आँखें बंद करके कुछ देर सोचते रहे, फिर बोले-

"श्रीपाल हिम्मत मत छोड़ो, सच्चे लोगों का माया क्या बिगाड़ेगी? वैसे माया तुम्हारे सामने खड़ी है।"

"आचार्य," श्रीपाल ने इतना ही दोहराया। आचार्य उठ कर साधना में जा बैठे। जहाजों के मल्लाह खुशी में किलकारी मार रहे थे। शायद कोई द्वीप या शहर आ गया है, यह सोच कर प्रसन्नचित श्रीपाल और धवल सेठ डैक की ओर चल दिये।

डैक पर आकर उन्होंने देखा, समुद्र के पश्चिम की ओर एक आकर्षक शहर नज़र आ रहा था। शहर नजदीक ही है, यह सोच कर श्रीपाल के आदेश पर पोतों (जहाजों) की गति कम कर दी गई।

जैसे-जैसे जहाज चलते जाते, बस्ती पास आती गयी। पोतों को बंदरगाह के किनारे की ओर ले जाया गया। श्रीपाल ने बंदरगाह का नाम पूछा तो पता चला यह 'हंसद्वीप' राज्य है। उसने 'हंसद्वीप' का नाम सुन रखा था।

इस द्वीप पर देश-विदेश के बहुत से सौदागर अपने जहाजों में माल लाद कर लाया करते और यहाँ से धनाढ्य होकर लौटते। इस राज्य का राजा कनककेतु बड़ा दयालु था, वह विदेशी व्यापारियों से कर नहीं लेता था। राज्य का विस्तार भी खूब था। प्रजा भी धार्मिक प्रवृत्ति की थी और श्रम में विश्वास करने वाले सम्पन्न परिवारों की वहाँ पर कमी न थी। अधिकतर लोग जैन धर्म को मानने वाले थे। यहाँ पर एक जैन सहस्त्र चैत्यालय बहुत प्राचीन था, जिसे देखने के लिए लाखों लोग हर वर्ष इक्ट्ठे होते थे। इस पर्व को लोग 'जैनी मैला' नाम से भी पुकारते थे।

जहाजों को किनारे पर बाँध कर सभी लोग अपने-अपने कार्यों से शहर की ओर चले गये। श्रीपाल ने अपने धर्म पिता धवल सेठ से

शहर की रौनक देखने की आज्ञा माँगी। धवल सेठ ने उसे जल्दी लौट आने को कहा, और जाने की आज्ञा दे दी। इस द्वीप के राजा को एक दिन श्री मुनि जी ने कहा था कि उसकी पुत्री रैनमंजूषा भरत खण्ड के कोटिभट राजकुमार की रानी बनेगी। राजा कनककेतु अपनी रानी कंचनमाला और अपने पुत्र चित्र, विचित्र के साथ श्री मुनि महाराज के दर्शनार्थ आये हुए थे, पुत्री रैनमंजूषा भी साथ में थी। श्री मुनि महाराज से कनककेतु ने कोटिभट राजकुमार के बारे में कुछ और जानना चाहा तो मुनि महाराज बोले- "प्राचीन चैत्यालय की प्रतिमा वाला कक्ष, जिसे किसी देवता ने कील दिया है, वह उसे आकर खोलेगा। राजा ने चैत्यालय में सादे वस्त्रों में दो सैनिक नियुक्त कर दिये थे। ये सैनिक चैत्यालय में आने वाले हर दर्शनार्थी का ध्यान रखते और प्रतिमाओं वाले कक्ष का मुस्तैदी से पहरा दिया करते।

श्रीपाल सहस्त्रकूट चैत्यालय के दर्शनार्थ अन्दर आया। यह प्राचीन जैन मंदिर था। इसमें संगमरमर के सफेद और लाल सुर्ख पत्थरों पर कारीगरी का बेहद आकर्षक करिश्मा था। पत्थरों में कारीगरों ने बारीक खुदाई की हुई थी और उनमें रत्न जड़ित हीरों को तराश कर लगाया हुआ था, जिससे वहाँ तेज प्रकाश फैला हुआ था। दर्शक की जिधर भी दृष्टि जाती उसे उधर ही हाथ के तराशे हुए शिल्पकला के नमूने नज़र आते।

पौराणिक युग में इतनी सभ्यता रही होगी, कोई विश्वास नही करता था। गगनचुम्बी मंदिर की चोटी को लोग सर उठा कर देखते, तो सर की टोपी गिर जाती। चोटी पर हजारों मन सोना चढ़ा हुआ था। मंदिर के हर द्वार, खिड़की और झरोखों में सोना ही सोना लगा था। दीवारों पर सोने का पानी चढ़ा था और कुछ-कुछ दूरी पर चमक-दमक करने वाले हीरे लगे थे। ऐसा लगता था जैसे हर ओर चकाचौंध करने वाला उजाला फैला हो। प्रत्येक कमरे और हाल में जैन प्रतिमायें रखी थी, जो सोने की बनी थी। श्रीपाल उन्हें क्रम से प्रणाम करता हुआ बंद कक्ष पर आ ठिठका और द्वारपाल से कक्ष खोलने को कहने लगा।

"इस कक्ष के द्वार बंद रहते है महाराज।" द्वारपाल ने कहा।

"क्यों, क्या यह यहाँ के राजा का आदेश है?"

"नही एक व्यंतर (देवता) ने इस कक्ष को कील रखा है। भला राजा क्यों इस कक्ष को बद करेगा, वह तो दुखी है, क्योंकि इसमें

हजारों वर्ष पुरानी जैन प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं।"

ओह, श्रीपाल ने कहा, "क्या इस द्वार को खोलने की किसी ने कोशिश नही की।"

"महाराज बड़े-बड़े साहसी राजा यहाँ आये है, पर इस कक्ष को बिना खोले ही चले गये।"

"क्या तुम मुझे इस द्वार को खोलने की आज्ञा दोगे। श्रीपाल ने द्वारपाल से पूछा।"

"मुझे मना करने का अधिकार तो नही है, पर महाराज आप अपना समय बेकार ही व्यर्थ करेंगे, द्वार तो खुलेगा नहीं।" द्वारपाल बोला- "यह वज्रमयी किवाड़ है, जिन पर देवता ने जादू किया हुआ है।"

"द्वारपाल मै इस द्वार को बिना खोले नही जाऊँगा।" श्रीपाल ने कहा- "शायद तुम मेरे बल से परिचित नही हो। मेरी भुजाओं में अपार बल है। मै जब अपने आदिनाथ प्रभु का नाम लेकर इस द्वार को छुऊँगा तो यह द्वार टूट कर जा गिरेगा। मेरे हाथों में वज्र, पत्थर और लोहा सभी कुछ आते ही बिखर जाते है। चलो हटो और मुझे द्वार खोलने दो।" द्वारपाल एक ओर हट गया। श्रीपाल आगे बढ़ा, उसने आदिनाथ भगवान की स्तुति की और फिर द्वार को अपने हाथों से छुआ।

द्वार को छूते ही द्वार शीशे की तरह पृथ्वी पर फैल कर बिखर गया। द्वार के टूट जाने पर श्रीपाल ने कक्ष में स्थापित जैन मूर्तियों का वैभव देखा।

सोने और हीरों की बनी अनगिन जैन प्रतिमायें, जिनके अलौकिक प्रकाश से आँखें चकाचौंध होती थी। श्रीपाल कक्ष में प्रवेश करके जैन प्रतिमाओं की स्तुति करने लगा। स्तुति करने के बाद श्रीपाल समायक करने के लिए पलौथी मार कर बैठ गया और माला जपने लगा, द्वार रक्षक द्वार खुलने की खबर देने राजमहल की ओर दौड़ पड़े।

"राजा, उठो राजा!' सोते हुए राजा को उसके विश्वासपात्र रक्षकों ने झंझोड़ते हुए कहा- "चैत्यालय के कक्ष को खोल कर एक सुन्दर राजा ने वहाँ पर प्रतिष्ठत प्रतिमाओं को आज़ाद कर दिया है, जो न जाने कब से कैद थी?"

"चैत्यालय का कक्ष खुल गया है! वह वीर पुरुष प्रतिमाओं की स्तुति करने के बाद समायक करने बैठा है। जब वह समायक करके

उठेगा और लौटने के लिए चलने लगेगा तो उसे कौन रोकेगा? हममें उस महाबली सुन्दर काया वाले वीर पुरुष को रोकने या उससे कुछ बात करने की हिम्मत नहीं है।"

अपने द्वार रक्षकों की ये बातें सुन कर राजा मुस्कुरा दिया और अपने रनवास की रानियों के साथ चैत्यालय की ओर चल पड़ा। कक्ष के द्वार को शीशे की तरह टूट कर दानों के रूप में बिखरने पर उसे आश्चर्य हो रहा था। जैन प्रतिमाओं का अलौकिक प्रकाश देखते ही बनता था। उसने जैन प्रतिमाओं का अनमोल खजाना देखा और परिवार के साथ स्तुति करने लगा। राजा को ऐसा करते देख रानी, पुत्र और पुत्री (रैनमंजूषा) भी प्रतिमाओं की स्तुति करने लगे।

स्तुति करने के बाद राजा अपने परिवार के साथ श्रीपाल से मिलने के लिए कक्ष से बाहर आ खडा हुआ। समयिक पूरी हो जाने पर श्रीपाल उठा और चलने लगा पर वह चलता-चलता ठिठका और रैनमंजूषा की ओर देखने लगा।

परियों का रूप लिये खड़ी रैनमंजूषा श्रीपाल को अपनी ओर देखते हुए शरमा गई। राजा आगे बढ़ा और कहने लगा- "हे बलशाली सुन्दर कोटिभट राजपुत्र यह मेरी कन्या रैनमजूषा है और मै हंसद्वीप का राजा कनककेतु हूँ, मेरे साथ जो लोग खड़े है, वे भी मेरे राज परिवार के लोग है।"

"जयजिनेन्द्र," श्रीपाल ने नतमस्तक होकर कहा।

"जयजिनेन्द्र, अब आप हमारे साथ राजमहल चलिए।" राजा ने कहा।

"वह किसलिए," श्रीपाल ने हँस कर पूछा- "क्या कोई ऐसी बात है, जो आप यहाँ नही कहना चाहते। आप निसंकोच होकर साफ कहिये, मै सुनने को तैयार हूँ।"

श्री मुनि जी की भविष्यवाणी के मुताबिक मै अपनी पुत्री रैनमंजूषा की शादी तुमसे करना चाहता हूँ, जिसे अभी कुछ देर पूर्व तुम देख रहे थे। पुत्री बड़ी शर्मीली है और जैन धर्म की अनुयायी है। हर समय जैन ग्रन्थों को पढ़-पढ़ कर मुझे धर्मोपदेश देती रहती है। देखो तो अब शरमा रही है और मेरे पीछे जा छिपी है।"

"हर धर्म प्रेमी शर्मालु होता है।" श्रीपाल ने कहा।

राजा ने उसकी बात पर हँस कर कहा- "तुमने तो मेरे मन

की बात कह दी है। मै भी ऐसा मानता हूँ और कर्मों पर अटूट विश्वास करता हूँ। अनेकानेक राजपुत्र जो बड़े-बड़े साम्राज्यों के स्वामी है और मेरी पुत्री से विवाह करना चाहते है, उनके विवाह के प्रस्तावों को ठुकरा कर मै कर्मों पर आश्वस्त हुआ बैठा था और इन कर्मों की अपेक्षा करने का साहस नही कर पाता था। मुझसे श्री मुनि जी ने कहा था। भरत खण्ड का एक कोटिभट सुकुमार तेरे देश आयेगा, जो अपने बाहुबल से चैत्यालय के वज्रमयी दरवाजे को तोड़ेगा और वही इन्द्र के समान रूपवान और सूर्य की तरह तेजस्वी और पराक्रमी सुकुमार मेरी पुत्री का वर होगा।"

"राजन, मै तो पहले ही शादीशुदा हूँ। यह जरूर है कि मै कोटिभट वंश का राजपुत्र हूँ और हजारों लाखों को बिना शस्त्र क्षण भर में मार सकता हूँ। देशाटन करने निकला हूँ। संसार को दिग्विजयी करना चाहता हूँ। कर्मों की माया में उलझा हूँ, सो हे राजा मुझ परदेसी को अपनी चाँद सी पुत्री देकर ऐसा निर्णय न लो, जिसे तुम बाद में अच्छा न समझो। बन्दरगाह पर मेरे धर्म पिता मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। इसलिए मै आपसे जाने की आज्ञा चाहता हूँ।"

"ममता भरे मन वाले बहादुर कोटिभट राजपुत्र आप ऐसा न करो। मेरी पुत्री श्री मुनि के वचन सुन कर तुम्हारी आस में वर्षों से कुवाँरी बैठी है। इसने बहुत से राजकुमारों के विवाह प्रस्ताव को ठुकरा कर तुम्हारे आने की प्रतीक्षा की है। मेरी मानो और मेरे साथ चलो। मै आदेश देकर आया था, राजमहल में विवाह की तैयारियाँ हो रही होगी।"

यह कह कर राजा कनककेतू आँखें भर लाया। वह पुत्री के दुख में वर्षों से परेशान था। वह सोच रहा था, क्या यह राजपुत्र उसकी पुत्री को वर कर उसके मन में भरे दुख को दूर करेगा, या श्री मुनि महाराज ने झूठ कहा था।

श्रीपाल ने राजा, रानी, राजा के दोनों पुत्रों और जैन धर्म पर आश्वस्त हुई बैठी रूप की देवी रैनमंजूषा को रोते हुए देखा। श्रीपाल सोचने लगा, रैनमंजूषा को देख कर मेरे दिल की धड़कने क्यों बढ़ जाती है?

उसे तो सफर के दौरान बहुत-सी खूबसूरत चंचल तरुणियाँ मिली है, जिनको देख कर जिन्दगी से विरक्त होने वाले संन्यासी भी

अपनी सुध-बुध खो बैठते है, पर उन खूबसूरत चन्द्रमुखी नारियों को देख कर भी मेरा मन मेरू के समान स्थिर रहा और मेरे मन में हलचल नहीं मची, पर रैनमंजूषा को देख कर मेरा दिल बेचैन क्यों होता है? धड़कनें क्यों बढ़ जाती है? आँखों में प्यार का सागर क्यों लहराने लगता है? मुझे ऐसा क्यों लगने लगता है जैसे मेरा कोई अपना मुझसे बिछुड़ गया हो और लौट कर मिलने आया हो। मै तो नारी कामना पर विजय पाने वाले पुरुषों में से हूँ, पर इस जैन धर्म की उपासक राज कन्या को देख कर मेरा मन विचलित क्यों है? मेरे मन में इच्छायें जाग्रत क्यों हो रही है? ओह! मेरा सोया हुआ पौरूष उठ कर मुझे हिलाने लगा है। मेरी आँखों में यह कैसा उन्माद उतर आया है? क्यों मै नारी प्रसंग का भूखा हो गया हूँ?"

रैनमंजूषा ने श्रीपाल की प्रेम अवस्था पहचानी और आगे बढ़ी।

"ठहरो राजकन्या वहीं ठहरो। मै कर्मों का मारा हुआ एक मुसाफिर हूँ। मुझमें तुम सुख का रास्ता ढूँढ रही हो, शायद वह तुम्हें न मिले। कर्मों के शिकार हम जैसे बदनसीब लोग किसी को क्या दे सकते है?"

"कुँवर जी। मै पाने की नहीं, कर्मों की याद दिलाती हूँ। मै तो युग-युग से तुम्हारे पीछे हूँ और तुम मेरे आगे-आगे चल रहे हो। मुझे अपना लो कुँवर जी", रैनमंजूषा का दर्दीला स्वर जैसे टूट रहा था।

"पहले ही एक कर्मों में उलझी राजकन्या मेरा इन्तजार कर रही है। देवी, यह संसार तो दुखों का एक ऐसा आइना है, जिसमें हम अपना चेहरा देख कर अपने आपको पहचानने से इंकार कर देते है और सुख सम्पदा को पाने की चाह में पाप के रास्ते पर दौड़ने लगते है। जिस माया को हम इक्ट्ठा करते चलते है, वह हमारे भ्रमित मन को हर्षाये रहती है और मोह माया मे जकड़ती जाती है।" श्रीपाल ठिठका और राजपुत्री की ओर देखने लगा।

"कुँवर जी, यह तो मै लिख चुकी हूँ।" रैनमंजूषा बोली- "मैंने इससे आगे कर्मों की पुस्तक में लिखा है। हम जितना दौड़ते है, मोह की बेड़ियाँ अपने पैरों में डालते रहते है। पिता, माँ, पति, पुत्र, पत्नी हमें वह सब देते है, जिससे हमारा मोह धर्म को छोड़ कर सम्पदा को संचय करने में हो जाता है। हमारी खुली आँखों पर स्वार्थ अपने रंगीन चश्में चढ़ा देता है। पाप आता है और हमें अपनी भड़कीली पोशाक

पहना जाता है। हम हर बुरे काम को अच्छा समझ कर करने लगते है। तृष्णा हमारे पीछे माया की तरह लग जाती है।"

"हाँ, राजकन्या हाँ," श्रीपाल ने आगे कहा- "माया का कोई आकार नही होता। इसकी शुरूआत तो है, पर अन्त नही। हम हर प्यारी वस्तु को पाने के लिए दौड़ते रहते है। माया के साथ-साथ दौड़ते हुए थक जाते है। हम पाते रहते है, फिर भी तृप्त नहीं होते। हम चाहते रहते है, पर चाहत से मन नही भरता। हम जब थक जाते है, तो आँखों में आँसू आ जाते है। दर्पण उठाते है अपने आपको पहचानने लगते है।"

"हाँ कुँवर जी, इस पहचान पर हमें कुछ याद आ जाता है। अपना बीता हुआ जीवन, सपने और अपने कर्म की वे बातें, जो हम भूल गये थे। जिन्हें हम अपने युवा जीवन की दौड़ में पीछे छोड़ आये थे, अब हम महसूस करते है, यह तो हमने अच्छा नहीं किया, हम तो भूल गये और भटक भी गये। क्या सोने की सम्पदा को इक्ट्ठा करना ही हमारे जीवन का लक्ष्य था, यह तो नाशवान है। इसे तो लूट लिया जायेगा। सुन्दरता का आकार धुँधला क्यों हो गया है? अरे, द्वार पर हमारे कुछ मित्र खड़े है, देखो तो ये कौन है, कहाँ से आये है?"

श्रीपाल ने हँस कर कहा, "मै इन्हें जानता हूँ, ये मेरी युवा दौड़ में मेरे साथ थे। तुम इनके नाम सुन लो। एक का नाम पाप है, जो हमसे बहुत कुछ कराता रहा है। एक अधर्म है, जिसने हमें धर्म की ओर जाने से रोका हुआ था, एक मोह है, जिसने हमें बहुत से रिश्तों में कुछ छोटे-बड़ों का एक भरपूर परिवार दिया है। एक माया है, जिसकी चकाचौंध में हम आज आनन्दित हो रहे है। एक क्रोध है, जिसके साथ रह कर हमने अपनी वाणी में विष घोला हुआ है। अपने जीवन में हम एक दूसरे का विश्वास ही तो तोड़ते आये है और अपना नैतिक पतन करते रहे है। इनसे हट कर हमारे कुछ दूसरे साथी भी खड़े है, क्या तुम इन्हें भी पहचानती हो?"

"हाँ कुँवर जी, ये साथी हमसे दूर इसलिए खड़े है, क्योंकि हम इनके साथ चले है। ये अपने इशारों से हमें समय-समय पर पुकार कर सचेत करते रहे है। इनके 'कर्म' और 'धर्म' दो नाम है। ये दो जुड़वाँ भाई है। साथ-साथ रहते आये है। हमारे किये गये कामों को देखते है और हमारी तकदीर का फैसला करते रहते है। इस फैसले को जब हम सुनते है, तो रोने लगते है। अपनी बीती हुई जिन्दगी के पन्ने

पढ़ने लगते है। देखो, ये हमारी मूर्खता पर हँस रहे है।"

"हाँ प्रिय, कर्मों का कार्य हँसना ही तो है। आओ मै तुम्हें तुम्हारे घर ले चलूँ।" श्रीपाल ने रैनमंजूषा से कहा और हाथ बढ़ा कर उसकी गोरी कलाई पकड़ ली।

राजा ने यह देख श्रीपाल की स्वीकृति मान ली। राजकीय बैंड रंगबिरंगी पोशाक पहले तैयार खड़ा था, जो राजा का इशारा पाकर बजने लगा।

रथ पास आया। रैनमंजूषा अपने भावी सौभाग्य के साथ रथ में सुसज्जित स्वर्ण सिंहासन पर जा बैठी। मधुर संगीत से प्रेम-मिलन की धुनें बजने लगीं।

जो राहगीर इस प्रेम कहानी को सुनता, वही इस अनोखी बारात में शरीक हो जाता। बाराती बढ़ते जा रहे थे, चलते जा रहे थे। राजमहल पर आकर स्वर्ण रथ के घोड़े ठिठक गये। रैनमंजूषा सिंहासन से उठ कर राजमहल के द्वार पर खडी अपनी सखियों की ओर चली गई।

"रैनमंजूषा", श्रीपाल ने आवाज़ दी तो द्वार पर सजी-धजी खड़ी सखियाँ खिलखिला दी।

श्रीपाल लपक कर द्वार की ओर आया तो रैनमंजूषा ने अपने हाथों में पकड़ी हुई फूलों की माला श्रीपाल को पहना दी। शुभ विवाह सम्पन्न हो गया।

'हंसद्वीप' के घर-घर में प्रेम-मिलन गीत के रिकार्ड बज रहे थे। सारा नगर खुशी से मानो पागल हुआ जाता था। हजारों लोग भोज में शरीक होकर तरह-तरह के मिष्ठानों का स्वाद चख रहे थे। राजा अपनी प्रजा को धन लुटा रहा था।

सारी रात दान, पुण्य और भोज की चहल-पहल बनी रही। विवाह की रस्में की जाती रही। प्रातः होते ही रैनमंजूषा हँसते-खिलते परिवार को रुला कर श्रीपाल के साथ चल दी।

श्रीपाल ने जब उपहारों के अम्बार की लदी हुई गाड़ियाँ अपने पीछे आती देखी तो पूछने लगा, "यह सब क्या है?"

यह हमारी ओर से आपके लिए उपहार है। राजा और राजा की इकट्ठी हुई प्रजा ने कहा।

नहीं, मुझे आपका यह उपहार अनमोल मोती ही काफी है।

श्रीपाल ने रैनमंजूषा की ओर इशारा किया, "जो सोने चांदी की इन वस्तुओं को आप मुझे उपहार में देना चाहते है, उनकी चकाचौंध में मै आपके अनमोल मोती को भूलना नही चाहता। इन वस्तुओं को आप अपने पास ही रहने दें। इन्हें पाकर मै अपने आपमें भ्रम पैदा नही करूँगा।" यह कह कर श्रीपाल ने उन अनगिन कीमती उपहारों को लौटा दिया।

राजा ने अश्रुपूर्ण आँखों से श्रीपाल की ओर देखा।

श्रीपाल ने कहा- "मै धन माया का बंधन नही चाहता। न जाने आपकी बेटी में कौन सी माया है, जिसने मुझे अपने सच्चे प्यार में कैद कर लिया है।"

"बेटा, यह तो भव-भव के बंधन है।" रैनमंजूषा की माँ, रानी कंचनमाला बोली।

"हाँ, माँ, कर्मों के विचित्र योग से ही तो मैने यहाँ आकर आपकी रैनमंजूषा को पाया है।"

"हमे आप बहुत याद आयेंगे। हमारी दीदी को भरपूर प्यार देना और इनकी दुखों से पहचान न कराना, ये सुखों में नाज से पली है।" चित्र-विचित्र दोनों भाईयों ने श्रीपाल से कहा और रैनमंजूषा को अँगूठा दिखा कर हँसने लगे।

"तुम", रैनमंजूषा ने प्यार और गुस्से के मिले-जुले रूप में घूँसा दिखलाया। सखियों ने आगे बढ़ कर अपनी प्रिय सहेली को कुछ उपहार भेंट किये, जिनके लिए श्रीपाल मना न कर सका। सहेलियों ने उपहारों में एक नन्हा-सा गुड्डा भी दिया था।

रैनमंजूषा ने उस सुन्दर गुड्डे को हिला-डुला कर अपनी सहेली से पूछा, "यह क्या है?"

"तुम्हारा मुन्ना है।"

"मेरा मुन्ना", रैनमंजूषा हँस दी। "यह कहाँ से आ गया? अभी आज ही तो मेरी शादी हुई है?"

सहेली ने कहा, "आने वाला है, तुम तो प्रतीक्षा करने में माहिर हो, पति की प्रतीक्षा करती रही हो, तो पति कामदेव मिल गया। अब मुन्ने की प्रतीक्षा करो। मुन्ने के रूप में प्रदुमन कुमार जैसा बेटा मिलेगा, जिसके रूप को देख कर तुम भी मोहित हो जाओगी।"

"वाह, रैनमंजूषा ने कहा- "ऐसे बेटे के लिए तो मै तुझसी

सुन्दर बहू देखूँगी- तुम इन्तजार करना। मै बेटे की बारात लेकर तुझे ब्याहने आऊँगी।"

सहेली मुँह को आँचल में ढाँपे हुऐ बेसुध हुई हँसे जाती थी।

धवल सेठ श्रीपाल के रात भर गायब रहने से परेशान रहा था। उसके सैनिक हंसद्वीप में उसे ढूँढते रहे थे और थक हार कर उन्होंने धवल सेठ को श्रीपाल के न मिलने की खबर दी और कहा- "सारा हंसद्वीप आज रोशनी मे जगमगा रहा है। राजा के यहाँ बारात आई हुई है, आज यहाँ की राजकन्या की शादी है।"

शायद श्रीपाल राजा के यहाँ भोज में शरीक होने को ठहर गया हो, धवल सेठ ने सोचा, पर उसे सारी रात नींद नहीं आई। वह अलसाया हुआ जहाज के डैक पर खड़ा रहा। भोर होने पर धवल सेठ ने श्रीपाल को दूल्हे के रूप में एक चाँद सी दुल्हन के साथ आते हुए देखा।

शायद वह स्वप्न देख रहा है या रात भर जागते रहने से बौरा गया है, धवल सेठ ने सोचा और अपनी आँखें मलने लगा।

श्रीपाल रैनमंजूषा के साथ जहाज पर आ गया था। उसने धवल सेठ की ओर कनकी उँगली उठा कर कहा- "ये मेरे धर्म पिता धवल सेठ है, इन्हें प्रणाम करो।"

रैनमंजूषा ने झुक कर धवल सेठ के चरणों को छुआ। धवल सेठ ने रैनमंजूषा को आशीर्वाद दिया और श्रीपाल से कहा- "वाह! अकेले ही राजा की कन्या ब्याह लाये हो। क्या तुम अपने धर्म पिता और दूसरे संगी-साथियों को भूल गये थे?"

"मुझे राजा ने कर्मों की शतरंज पर इस माया के आगे बैठा दिया था, देखो तो क्या आज इस पृथ्वी पर इतनी सुन्दर नारी नज़र आती है", श्रीपाल ने कहा। धवल सेठ ने श्रीपाल के कहने पर रैनमंजूषा को गौर से देखा। उसके हिरनी जैसे नयन मतवाले थे। कपोलों की सुर्खी देख कर कश्मीर के सुर्ख़ सेबों की याद आती थी। उसके अनछुए गुलाबी होठों में न जाने कैसा निमंत्रण था। उसके दोनों स्तन उसकी घबराहट भरी साँसों के साथ ऊपर नीचे हुए जाते थे। वह लम्बे कदकाठी की गौरवर्णीय इकहरे बदन वाली आकर्षक नारी थी, जिसे देख कर कोई भी मनुष्य अपना होश खो सकता था।

धवल सेठ उसे देखता ही रह गया। वह बीमार-सा बना अपने जहाज की ओर चला गया। सेठ को यों ही जाता हुआ देख रैनमंजूषा

ने घबरा कर श्रीपाल की ओर देखा।

श्रीपाल ने हँस कर कहा- "डरो मत, वे मेरे धर्म पिता है। रात भर जागते रहने से शायद बीमार हो गये है।"

पर रैनमंजूषा ने धवल सेठ की नज़रों में पाप की छाया देखी थी और श्रीपाल से कुछ कहना चाहती थी, पर उस रात रैनमंजूषा श्रीपाल की बाहों और प्यार मे कैद होकर रह गई।

33

श्रीपाल ने रैनमंजूषा से कहा- "प्रिय क्या तुम्हारे पिता ने एक परदेशी से तुम्हारा विवाह करके अच्छा किया है। मेरी समझ में तो कुछ नही आता", श्रीपाल हँसा, भरत खण्ड और हंसद्वीप के बीच तो सात समुद्रों वाला फासला है।

रैनमंजूषा ने हँस कर यों कहा- "कुँवर जी, पिता हमेशा पुत्री के हित के बारे में सोचा करते है। उन्होंने जो सोचा होगा, मेरे हित के बारे में सोचा होगा। कन्या का धर्म पिता की आज्ञा को मान लेना है। पिता की आज्ञानुसार वर को अपनाना ही जैन धर्म का मार्ग और नारी धर्म की मर्यादाएँ है। नारी मर्यादाओं में ही सतियों का शृंगार छिपा है। पति परेदशी है, निर्धन है, दुखी है या कुरूप है, पर पत्नी के लिए वही कामदेव के रूप वाला संसार का सबसे बली पुरुष है, पर आप मुझे कोटिभट राजवंशी कामदेव का रूप धारण किये हुए एक ऐसे पति मिले है, जिसे पाने के लिए कौन नारी लालायित नही होगी। यह श्री जिन मुनि की वाणी और मेरे कर्मों का फल है, जो मुझे तुम जैसा पति मिला है।

श्रीपाल ने कहा- "प्राणेश्वरी तुमने सही कहा है। हर संयोग में कर्मों का हाथ होता है। सुनो, मुझे अगर राजा के सैनिक धवल सेठ के जहाजों के पास न लाते, तो शायद मैने तुमको न पाया होता और जो मै धवल सेठ का धर्म पुत्र बन कर उसके साथ न आया होता तो उसे समुद्री लुटेरे शंकर की टोली द्वारा मार दिया गया होता। उसका धन, जहाज सब कुछ छीन गये होते। यह कर्मों की ही तो बात है। वह शंकर लुटेरा आज जैनाचार्य है और हमारे साथ मुनियों के एक बड़े समूह को लिए यात्रा कर रहा है। ये जैन मुनि वे ही लोग है, जो कुछ

समय पूर्व समुद्र में अपने जहाज पर दौड़ते हुए समुद्री लुटेरों के नाम से जाने जाते थे।"

रैनमंजूषा ने कहा, "कुँवर जी हर पाप को त्यागने के पीछे कर्मों के उदय होने का योग होता है। शंकर लुटेरे के साथ भी ऐसा हुआ होगा। क्या आप उनके दर्शन कराने मुझे नहीं ले चलेंगे?"

"प्राणेश्वरी, जैन मुनियों, आचार्यों के दर्शन करने से तो धर्म का लाभ मिलता है। अब हम जहाँ लंगर डालेंगे, वहीं शंकर आचार्य के जहाज पर जाकर उनके दर्शन कर लेंगे।"

इसके बाद श्रीपाल अपनी माँ, स्व. पिता और अत्याचारी चाचा की बातें करने लगा। मैना के प्यार और अपने कुष्ठी होने का किस्सा सुनाने लगा। उसने अपने ससुर राजा पहुपाल के बारे में भी बतलाया कि मैना उसे प्यार से अब्बू घोड़ा कहती है। उसने सुरसुन्दरी साली के विवाह, विछोह, विधवा होने और जयदेव से बेटा पाने की भी बात कही। श्रीपाल ने करन के बारे में भी बतलाया कि वह कैसे कौशाम्बी भेजा गया। पुत्रों के जन्म और माँ के मिलन की भी बात कही। सफर और दिग्विजय की बात कही। सफ़र में एक योगी से विद्या प्राप्त करने और धर्म पिता धवल सेठ से दसवें हिस्से की भागीदारी की भी बात कही।

सब कुछ एक साँस में बक गया श्रीपाल और रैनमंजूषा सोच रही थी कि वह कितनी भाग्यशाली है। उसे पति क्या एक ऐसा हीरा मिला है, जिसका मूल्य आँका नहीं जा सकता और उसे अमूल्य रत्न ही कहा जा सकता है। एक बार उसने अपने मन में हिम्मत करके धर्म पिता धवल सेठ के बारे में कुछ कहना चाहा पर हिचकिचा गई। वह अकारण ही कोई नयी मुसीबत अपने गले डालना नहीं चाहती थी, दूसरे उसे अपने पति के असीम बल पर भी तो भरोसा था।

34

जहाज बढ़ते रहे। समुद्र की लहरें कभी जम कर संघर्ष करती तो कभी रास्ता छोड़ देतीं। एक दो बार तूफ़ानों ने सभी जहाजों को कुछ झटके दिये। मूसलाधार वर्षा ने भी उन्हें परेशान किया। पर इन सबसे सफर नहीं रुका और जहाज चलते रहे, बढ़ते रहे।

धवल सेठ ने जब से रैनमंजूषा को देखा था, उसके रूप पर आसक्त होकर बीमार पड़ा था। जहाज पर सवार कई वैद्य हकीमों ने उसका इलाज किया, पर वह अच्छा नहीं हुआ। उसे कोई बीमारी थोड़े ही थी, उसके मन में वासना की आँधी चल रही थी। वह किसी न किसी बहाने रैनमंजूषा को पाना चाहता था।

अपने मन की बात उसने निक्कू महाजन से कही। निक्कू ने धवल सेठ को समझाया- "सेठ, रैनमंजूषा को पाने की बात दिल से निकाल दो, क्योंकि वह तेरी पुत्री समान है। उसका पति कोटिभट, करोड़ों पुरुषों का बल रखने वाला एक ऐसा तेजस्वी पुरुष है, जो तेरे पाप की बातों को अगर सुन लेगा, तो तुझे तेरे जहाजों सहित समुद्र में डुबो देगा। हम भी तेरे साथ-साथ समुद्र की तली में जा पहुँचेंगे। क्या समुद्री लुटेरे शंकर का हश्र तुमने नहीं देखा, उसके आदमियों को खिलौनों की तरह उठा-उठा कर श्रीपाल समुद्र में फेंक दिया करता था। जहाँ तक रैनमंजूषा की बात है, वह किसी भी प्रलोभन में नहीं फँसेगी, वह तो सती है, पाक दामन है उसे तुम्हारे पास ले आना बड़ा मुश्किल काम है।"

धवल सेठ ने निक्कू महाजन से कहा- "तू अपने इस उपदेश को सुना कर मेरे दिल को जलाने वाली बात न कर। मेरा दिल उस रूप की मोहिनी मूरत ने लूट लिया है। किसी भी तदबीर से उसे मेरे पास ले आ।"

"सेठ तू तो धर्म प्रेमी और कर्मों पर आश्वस्त रहने वाला एक धार्मिक पुरुष है, फिर जाहिलों की तरह पाप में अंधा होकर कुकर्म करने पर क्यों उतारू हुआ बैठा है? शायद तू जानता तो है, पर आज भूला हुआ है। वह तेरी धर्म पुत्रवधु है। क्या पुत्रवधु बेटी समान नहीं होती? कोई सुनेगा तो क्या कहेगा, सारी दुनियाँ तुझ पर थू-थू करेगी। मैंने तुझसे कहा तो है कि वह पूरी सती है और अपने शील पर कायम है, तू उसे पाने की बात न कर।"

निक्कू की बात पर धवल सेठ आग बबूला हो गया। उसने उसे अपमानित करके अपने कक्ष से निकाल कर अपने कुमत मंत्री को आवाज़ दी कुमत हाथ जोड़ कर धवल सेठ के सामने आ खड़ा हुआ।

धवल सेठ की मनोदशा भाँप कर कुमत ने हँस कर यों कहा।

"धवल सेठ, जब से इस सृष्टि का जन्म हुआ है, मै भी पृथ्वी

पर आ गया हूँ। जो लोग धर्म के रास्ते को भूल कर पाप को अपनाना चाहते है और मोह माया को मन में बैठाये हुए है, वे भटकते हुए मेरे पास चले आते है। मै उनको पूरा सहयोग देता हूँ। मै आफत की काली आँधी हूँ। किसी भी व्यक्ति के गले में फंदा डाल कर अपनी लाखों हिकमतों में से किसी एक को चला कर अपना काम निकाल लेता हूँ। बदमाश और बदचलन की पोशाक पहन कर निश्चित खड़ा हूँ। धोखा-फरेब करके मै अच्छों-अच्छों को काबू में कर लेता हूँ। मेरे हर समय पौ बारह रहते है। मेरे से बड़े-बड़े सयाने हार मान चुके है। बदमाशी और झगड़ा करने में तो मै हर तरह बड़ा हूँ। आप मुझसे निश्चिंत होकर कहो, वह रूपसी कौन है, जिसने आपको व्याकुल किया हुआ है।"

वह रूप की अद्वितीय सुन्दरी रैनमंजूषा है। उसके सौन्दर्य को मैने जब से देखा है, मेरे दिल में न जाने क्या हुआ है? मै तो उसको पाने की चाह मे बीमार हुआ बैठा हूँ।

कुमत मंत्री को धवल सेठ की बात सुनकर झटका-सा लगा। वह बोला- "धवल सेठ, वह तो श्रीपाल की रानी है और शील शृंगार में सती समान है। वह तेरी धर्मपुत्री भी है, उसको पाने का ख्याल छोड़ दे।"

"कुमत मत्री, मैने अगर उसे नहीं पाया तो मेरी मृत्यु निश्चित है।"

"सेठ जी, आप उसे पा भी लें तो भी आपकी मौत निश्चित है। श्रीपाल महाबली है।" फिर कुछ सोच कर- "ठहरो मै आज रात कुछ करूँगा। आपका दर्द इलाज तो करना ही होगा। मैने आपका नमक जो खाया है, उसका हक तो अदा करूँगा ही।"

कुमत मंत्री के कहने से धवल सेठ के दिल को कुछ राहत मिल गयी थी।

अपने स्वामी धवल सेठ के मन की मुराद पूरी करने के लिए कुमत मंत्री इधर-उधर खुसर-पुसर करता दौड़ता रहा। कुछ देर बाद वह निश्चिंत होकर बैठ गया और रात के अंधकार आने की प्रतीक्षा करने लगा।

और उसी रात में।

श्रीपाल को मल्लाहों की भयभीत आवाज़ सुनायी दी- "अरे कोऊ दौड़ियो, दौड़ियों, जहाज डूबत जात है। जहाज डूबत जात है।"

श्रीपाल ने सभी जहाजों के मल्लाहों से यंत्र पर बात की, उसे पता चला जिस जहाज में उसका धर्म पिता है, वह डूब रहा है। वह तड़तड़ा कर उठा और आँखें फाड़-फाड़ कर अपने धर्म पिता के जहाज की ओर देखने लगा, पर अंधकार में उसे कुछ नज़र नहीं आया, तब वह अटकलबाजी से ही छलांग लगाता हुआ अपने धर्म पिता के जहाज की ओर दौड़ा।

"क्या बात है, यह कैसा शोर मचा है?" श्रीपाल ने पिता के जहाज के मल्लाह से पूछा।

"हमारा जहाज डूब रहा है।"

"फिर यह कैसे बचाया जा सकता है?"

"अगर कोऊ बरत पर बेगी चढ़े तो यह बचत है।"

"घबराओ मत, मै खुद बरत पर चढूँगा", श्रीपाल ने हिम्मत से कहा- "मै ऊपर जा रहा हूँ, तुम अँधरे से न डरो। मै रस्से को सँवार कर लम्हों में लौट आऊँगा। मुझे न डर है और न ही यह फिक्र है कि मै मामूली से झटके से समुद्र में जा गिरूँगा और यह कह कर श्रीपाल बन्दरों की तरह उछल कर बरत (रस्सी) पर चढ़ा। वह बरत पर चढ़ता हुआ जब ऊपर जा पहुँचा, तब कुमत मंत्री ने तेज चाकू से बरत को नीचे से काट दिया।

श्रीपाल बरत के कटते ही समुद्र में जा गिरा। समुद्र में गिरते ही उसने सिद्ध मंत्र का जाप करना शुरू कर दिया। जल तारणी विद्या उसकी सहायता करने लगी। उधर जहाजों पर उसके समुद्र में गिर जाने से सैनिकों और महाजनों में हल्ला होने लगा। चारों ओर हाहाकार मचने लगा। बीमारी का ढोंग करने वाला धवल सेठ भी अपने कमरे से निकल कर डैक पर चला आया और छाती पीट-पीट कर पुत्र-पुत्र चिल्लाने लगा। वह अपनी आँखों से मगरमच्छी आँसू बहा रहा था और रो-रो कर अपना बुरा हाल किये जाता था। जहाजों का काफिला कुछ देर के लिए ठिठक गया और समुद्र में मगर की खालों के मजबूत जाल और रस्से डाले जा रहे थे।

अंधकार को दूर करने के लिए बड़ी-बड़ी समुद्री लालटेनों को समुद्र के पानी में रखा जा रहा था। सब समझ रहे थे कि ये सब श्रीपाल को ढूँढने की कोशिशें है। पर किसी को भी धवल सेठ के मन के बारे में मालूम नहीं था।

कुछ देर इस नाटक को खेल कर धवल सेठ ने जहाजों को कूच करने का ऐलान कर दिया।

"क्या हम श्रीपाल को अकेले ही समुद्र की लहरों से जूझने को छोड़ दें" सैनिक और महाजन पूछ रहे थे।

"अब किया ही क्या जा सकता है?" धवल सेठ ने अफसोस भरे स्वर में कहा- "क्या हमने उसे कम ढूँढा है?"

"इस समय अंधकार है। अगर सुबह होने की इंतजार कर लें, तो शायद श्रीपाल को ढूँढ लें", कुछों ने अपनी राय दी।

"नही," धवल सेठ ने साफ इंकार कर दिया। "अब हम नही रुकेंगे, तुम क्या समझते हो, श्रीपाल का ग़म सिर्फ़ तुम्हें ही है। मेरा तो वह धर्म पुत्र था। हाय! अब मै किसे धर्म पुत्र कहूँगा।"

हाय, हाय, करता जाता धवल सेठ सम्पर्क यंत्रों पर जहाजों के मल्लाहों पर गुर्राया- "जहाजों को चलने दो। मुझे भय है कहीं समुद्री लुटेरे हमारे जहाजों को न लूट लें। अब हमारा कवच श्रीपाल भी तो नही है।"

धवल सेठ का यह ढोंग कि समुद्री लुटेरे जहाजों को लूट लेंगे, सभी महाजनों और सैनिकों पर जादू की तरह चल गया। वे लोग मन ही मन आदीश्वर से लुटेरों से बचने के लिए प्रार्थना करने लगे। श्रीपाल को वे सब भूल बैठे और जहाज पहले की तरह अपनी तेज गति से समुद्र पर फिसलने लगे।

यह सब कैसे हुआ, उसके प्राणनाथ, जिन्हें कोई बल में, बुद्धि में जीत नहीं सकता था, समुद्र में कैसे गिर गये? रैनमंजूषा जहाज की रेलिंग के सहारे खड़ी सोच रही थी और अपनी पथराई हुई आँखों से अंधकार में डूबे समुद्र की ओर देख रही थी।

सूर्य उदय हो रहा था।

रैनमंजूषा जहाज के रेलिंग के पास बेहोश पड़ी थी। जिसे उसकी दासियाँ उठा कर अन्दर आरामदेह कक्ष में ले गयी। कुछ देर बाद उसे होश आया तो उसने श्रीपाल के बारे में पूछा।

"रानी अधीर न हो। यह सब कर्मों की बात है।" एक दासी ने कहा।

"नही रूक्को बहन, नही। ऐसा मत क.ो। कर्मों की बात करने से पहल मेरी बात सुन लो।"

"मेरा मिलन होने से पहले जरूर वे कर्मों के जालों में रहे होंगे, पर अब जब से मैंने उन्हें पाया है, वे कर्मों के बंधन तोड़ चुके थे। मुझे तो ऐसा लगता है, जैसे मेरे पति को किसी ने मुझसे दूर करने की साजिश की है और मेरे पति को समुद्र में जान-बूझ कर गिराया गया है।"

"यह कार्य किसने किया होगा?" दासी पूछ रही थी।

"जो मुझ पर पाप की दृष्टि डाले अपनी योजना बनाने में लगा होगा।"

"कौन है वह", दासी ने गुस्से से कहा- "मैं अभी जाकर धवल सेठ को बता दूँगी।"

धवल सेठ का नाम लेने पर रैनमंजूषा दर्द की फीकी हँसी हँसी, बोली- "अभी नहीं। मैं उस पापी को अपने पास आने का इंतजार करूँगी।"

"क्या तुम समझती हो? श्रीपाल समुद्र में गिर कर जीवित बचा होगा।"

"मूर्ख दासी, सतियों के सुहाग की रक्षा तो मौत खुद पहरा देकर किया करती है। फिर मेरा पति तो कोटिभट है। तुम इस समुद्र की बात करती हो। ऐसे समुद्रों का अपने हाथों से मेरे प्राणनाथ मंथन कर सकते हैं। मेरे प्राणनाथ का शरीर वज्र का है, जिस पर पानी के जहरीले जन्तु भी अपना वार न कर सकेंगे। समुद्र का देवता मेरे पति के समुद्र में गिर जाने से भयभीत होकर इधर-उधर दौड़ा फिर रहा होगा और सुनो, मेरे पति पर जलतारणी विद्या है, जो मेरे पति को पानी से ऊपर कागज के पत्थर की तरह तैरा कर चलेगी। यह जलतारणी वही विद्या है, जिसके सहारे भगवान रामचन्द्र ने लंका के भयंकर समुद्र पर पत्थरों को तैरा कर पुल तैयार किया था और लंका पर विजय पायी थी।"

कर्मों पर आश्वत हुई बैठी रैनमंजूषा कहे जाती थी- "शायद मेरे अपने कर्मों के बंधन अभी बाकी रहे होंगे। पति पाने की लालसा में मैं धर्म पर अडिग बैठी रही और दुनिया भर के राजकुमारों से अपनी हठधर्मी के लिए पिता को ताने सुनवाती रही। पति मिलने के बाद भी दाम्पत्य जीवन के चन्द दिन भी शायद मेरी तकदीर में नहीं लिखे थे, तभी तो पतिदेव समुद्र में जा गिरे। वह उनको क्यों दोष दे, जिन्होंने

सिन्धु में उसके कंथ को डाला है। यह जरूर अगले पिछले कर्मों की लेन-देनदारी बाकी थी, तो क्या वह कर्मों का खेल है, जो उसके पति समुद्र में जा गिरे है।"

"मैनानगरी में माँ कुन्दनप्रभा का न जाने क्या हाल होगा? मैना के दोनों बेटों की कौन देखभाल करता होगा? क्या मैना अभी प्रसव से कराह रही होगी या फिर से माँ बन चुकी होगी? चम्पानगरी का क्या हाल होगा? क्या चाचा बीरदमन अभी भी वहाँ पर अत्याचार करते होंगे? कुँवर जी ने न जाने क्या सोच रखा था? समुद्र को पार करके कुँवर जी कहाँ पहुँचेंगे? क्या वे मैना से, माँ से और उससे मिल सकेंगे या उसकी तरह ही किसी दूसरी राजकन्या को पाकर नये आवास, नयी मंजिल पर चल पड़ेंगे। वह कुँवर जी के बिना कैसे जियेगी?"

आँखों में आ गयी रैनमंजूषा। उसकी पथराई हुई आँखें, रात से थकी खामोश सी थी, पर अब रोये जाती थी। आँसू थे, जो बहे जाते थे। वह दिल में इकट्ठी की हुई हिम्मत को त्याग बैठी और शरीर पर पहने हुए आभूषणों को उतार-उतार कर फैंकने लगी। आभूषणों को फैंकती रैनमंजूषा रोती जाती और कहती जाती- "मेरा प्यारी सखियों, पहले जन्म में मैंने पाप किये होगे। मुझे लगता है, मैंने किसी का दिल दुखाया होगा, या किसी का धन हरा होगा। हो सकता है किसी पुरुष को देख कर मेरा मन बहक गया हो, या मैंने पति की बात मानने से इंकार कर दिया होगा। अल्हड़पन या अनजाने में मैंने किसी को वस्त्र विहीन कर दिया होगा। मैंने अपने मुँह से झूठा वचन कहा होगा, या मैंने नारी मर्यादाओं को तोड़ कर अपने शील पर दाग लगाया होगा। मैंने किसी के दाम्पत्य जीवन में विष घोल कर उनको अलग किया होगा, तभी तो मेरे कर्मों का पाप उदय हो आया है और मेरे पति समुद्र में जा गिरे हैं।"

35

मैनासुन्दरी प्रसव से कराह रही थी। माँ कुन्दनप्रभा इधर से उधर दौड़ी फिरती थी।

"माँ मेरे पति को बुला दो।" दर्द के परेशान मैना ने दर्दभरी आवाज में कहा।

"अच्छा बेटी मै बुलावा भेज देती हूँ।"

"माँ, क्या तुम जानती हो, मेरे प्राणनाथ कहाँ गये है?"

"नही बेटी।" कुन्दनप्रभा ने कहा।

"मेरे दोनों पुत्र कहाँ है?"

"एक सो रहा है और दूसरा तेरे अब्बू के पास है।"

"मेरे बेटे और मेरे अब्बू को बुला दो।" मैना गिड़गिड़ाई।

आज मैनासुन्दरी कैसी बातें कर रही है। कुन्दनप्रभा को कुछ समझ नही आ रहा था। उसने प्रहस्त को उज्जैनी नगरी की ओर दौड़ाया।

"प्रहस्त कहाँ है, उसे बुलाओं माँ?"

"वह अब्बू को बुलाने गया है।"

"माँ, मेरा अन्त समय आ गया है।"

"ऐसी बातें न कर बेटी, अगर तू ऐसी बातें करेगी तो मेरा क्या होगा, मेरी कौन धीर बँधायेगा?"

"माँ, जाने वालों को किसने रोका है? क्या दिग्विजय पर जाने से मेरे प्राणनाथ रुक गये थे? अब जब मै मृत्यु की ओर दौडूँगी तो तुम कैसे रोकोगी?"

"मैना, ऐसी बातें मत कर। मैना, तेरा पति अपने साथ तेरे सुख ऐश्वर्य की बहुत सी दुर्लभ वस्तुयें लेकर आयेगा। तेरे माथे पर राजमुकुट बाँधेगा और तुझे अपनी पटरानी बनायेगा।"

"माँ, यह कब होगा, बारह वर्ष बाद ही ना? मेरा प्यारी माँ, पर मै बारह वर्ष कैसे काटूँगी, अभी तो पाँच सात महीने भी नही हुए है।"

"बेटी, धीरज रखो, इंतजार में ही सुख की प्राप्ति है। हर शुभ काम पूरा होने में देर लगती है। हर अँधेरी रात के बाद सूर्योदय होता है।"

"माँ, मै अब जीना नही चाहती।"

"तेरे पुत्रों की कौन देखभाल करेगा बेटी, क्या तुझे अपने पुत्रों से मोह नहीं है?"

"माँ, माँ ओ माँ, ओफ्ह हो माँ, मै मर गई माँ।" छटपटाती हुई मैना ने एक जोरो की किलकारी मारी और फिर वहाँ दो-दो नन्हें-मुन्नों के रोने का स्वर गूँजने लगा।

अधिक कष्ट पाने से मैनासुन्दरी बेहोश हो गई थी।

प्रहस्त, अब्बू और मैना के बेटे को ले आया था।

"मैना कैसी है?" अब्बू जानना चाहता था।

"ठीक है, खुशखबरी सुनो, तुम्हें नाना-नाना पुकारने वाले दो मुन्ने और आ गये हैं।"

"ओह, यह तो खुशी की बात है। क्या मै उन्हें देख सकता हूँ?" अब्बू ने खुशी में झूमते हुए पूछा।

"नही, अभी नहीं।" यों कह कर कुन्दनप्रभा कक्ष का द्वार बंद करके अन्दर चली गई।

36

समुद्र के बीचों-बीच एक टापू पड़ा। यहाँ धवल सेठ को कुछ माल उतारना था, इसलिए जहाजों का काफ़िला कुछ देर के लिए रुक गया। सेठ के महाजन और सैनिक टापू पर उतर कर वहाँ की हवा और मीठे फलों का स्वाद लेने लगे। दुखी रैनमंजूषा कर्मों की लीला जानने के लिए शंकर मुनि के पास पहुँची।

यह ठीक ही तो कहा है कि जैन मुनि के चोले में पापी भी धर्मात्मा बन जाता है। लुटेरे शंकर का भी यही हाल था, वह जबसे अपने साथियों के साथ दिगम्बर मुनि बना था, उसके अपने अन्दर धर्म का विकास हो रहा था। वह जो कुछ कहता, सच्ची और धर्म के अनुरूप बात होती। बोलने से पहले वह खुद नही जानता था कि क्या कहेगा?

"कैसे है चमत्कारी आचार्य शंकर मुनि?"

क्या उसके अन्दर साक्षात् भगवान आदिनाथ आ बैठे थे या नया तीर्थंकर शंकर आचार्य के रूप में जन्म ले रहा था। अपने साथ-साथ आचार्य ने सभी साथियों की काया पलट कर दी थी। वे सब विरक्त हो गये थे और जिंदा रहने के लिए मामूली सा खाते-पीते थे। पूरे दिन मन को साध कर भगवान की उपासना करना उनका रोजमर्रा का काम था। कभी-कभी ज्ञान का प्रकाश पाने के लिए वे सांसारिक बातों पर कर्म और धर्म को लेकर देर तक वार्तालाप किया करते और जब तक कोई सही निर्णय नही हो जाता, बोलते रहते। इस तरह धर्म का विकास उनमें दिन प्रतिदिन सूर्य की तरह फैलता रहा और वे अपनी इन्द्रियों पर

विजय पाते रहे।

रैनमंजूषा, शंकर आचार्य के बारे में इतना नहीं जानती थी कि कुछ दिन पूर्व ही मुनियों का आचार्य बना शंकर लुटेरा इतना ज्ञान पा गया होगा। वह अवाक्-सी आचार्य का मुँह ताक रही थी।

"क्या देख रही हो बेटी?" शंकर आचार्य ने अपनी मीठी वाणी में पूछा।

"कुँवर जी के बारे में जानने आई हूँ।"

हँसे आचार्य, "बस इतनी-सी बात। बेटी श्रीपाल तो आराम से समुद्र पार कर रहा है, लो समुद्र में तैरते अपने पति को देख लो," आचार्य ने कहा और हाथ रैनमंजूषा की ओर उठा दिया।

हाथ मानो समुद्र का दर्पण बन गया। रैनमंजूषा ने समुद्र में तैरते हुए अपने कुँवर जी को देखा, जो आराम से बड़ी तेजी से समुद्र को पार करते जाते थे। उसने विशाल समुद्र में दौड़ते जहाज और लपलपाती व्हेल मछली, आपस में लड़ते-भिड़ते मगरमच्छ और दूसरे कई जीव जन्तु भी देखे।

"कुँवर जी", रैनमंजूषा ने चिल्ला कर श्रीपाल को आवाज़ दी शायद उसने रैनमंजूषा की आवाज़ सुन ली थी। वह तैरता हुआ पलट कर देखने लगा।

वह ही सौन्दर्य और आत्मविश्वास। रैनमंजूषा ने अच्छी तरह देखा। चेहरे पर न शिकन और न ही कोई शिकवा, मुस्कुराता हुआ कामदेव जैसा चेहरा।

बस, आचार्य ने कहा और श्रीपाल को मानो लौट कर अपनी मंज़िल पर जाने को कहा।

श्रीपाल घूमा और अपनी मंजिल की ओर दौड़ा।

"उसे जाने दो, राजपुत्री। अब उसे आवाज़ मत देना, कर्म उसके लिए समुद्र पार उपहार लिए खड़ा है।"

"समुद्र पार उपहार।" रैनमंजूषा ने दोहराया।

"हाँ बेटी, यह कर्मों का ही तो सिलसिला है, जो तुम्हारे आ जाने से फिर रुक गया है। मैंने तो 'हंसद्वीप' की धरती छूने से पूर्व ही तुम्हारे कुँवर जी से कह दिया था, माया खड़ी मिलेगी।"

"आचार्य जी, मैं आपको माया नजर आती हूँ?"

"हाँ, तुम माया हो। ऐसी माया हो, जिसे देख कर श्रीपाल ठगा

सा खड़ा रह गया था और धर्म पिता ने अपने पुत्र को सागर में फेंक दिया था।"

"आचार्य, क्या आप मुझे दोषी मानते है या मेरे रूप को दोषी कहते है। अगर मेरा रूप ही दोषी है, तो मै इसे कुरूप बना डालूँगी।"

"बेटी, तुम्हारे कुरूप होने से कुछ नही होगा। कर्मों से तेरे कुँवर जी समुद्र में गिरे है और कर्मों से ही समुद्र पार हो रहे है। जाओ, अपनी रक्षा करो, अब कर्म तुम पर भी वार करेंगे।"

"आचार्य, सतियों पर कर्म क्या वार करेंगे, मै तो ऐसी सती हूँ, जिसने दर्पण में एक ही पुरुष का प्रतिबिम्ब देखा है। मुझे कुँवर जी का चेहरा याद है। जो समुद्र की लहरों से जूझ रहे है।"

यह कह कर रैनमंजूषा आँखें भर लायी और उठ कर खड़ी हो गयी। जब वह चलने लगी तो आचार्य ने कहा-

"बेटी!"

"आचार्य मुनि जी।"

"मेरी एक बात याद रखना। बेमौत मरने से संघर्ष करके जीना अच्छा है। दिल में कुँवर जी की चाह बनाये रखना, कुँवर जी तुम्हें शीघ्र मिलेंगे।"

"आचार्य, आज के युग में नारी तो पुरुषों के लिए एक खिलौना मात्र है। वह वासना का खेल खेलने के लिए एक हाड़ माँस की जीती जागती औरत नहीं, शिल्पकार द्वारा तैयार की हुई पत्थर की एक मूर्ति भी है। आज नारी की कोई न कीमत है और न ही महत्त्व। जानवरों की तरह बेच कर उसकी रस्सी नये खरीददार के हाथों में दे दी जाती है। नारी कहना चाह कर भी कुछ नही कह पाती, बस सिसक कर रह जाती है। वह पुरुषों के हर जुल्म को सह लेती है और धर्म कायम रखने के लिए आत्महत्या तक कर लेती है। आप यही तो कहते है आचार्य जी, कुँवर जी कर्मों के आदेश पर समुद्र का मंथन किये दौड़ रहे है और अब, कुँवर जी मेरे पास मौजूद नही है, मुझ पर कर्मों का प्रहार होगा, मै उस प्रहार को सहूँ और संघर्ष करके अपनी लाज और शरीर को जिन्दा रखूँ। कुँवर जी की प्रतीक्षा करूँ और कर्मों का नया उदय होने वाला सूरज देखूँ।"

"हाँ बेटी।"

"आचार्य जी, मै ऐसा ही करूँगी। नये सूरज की लालसा में

हर संघर्ष को जीत कर मै कुँवर जी की बाट देखूँगी।"

"मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है बेटी", आचार्य ने कहा- "मै धर्म के लिए और एक शीलवती बेटी के लिए अगर जरूरत पड़ेगी तो फिर शमशीर उठा लूँगा। तुम यह मत समझना मेरे हाथ राम-नाम जपते हुए तलवार को चलाना भूल गये है।"

रैनमंजूषा ने आचार्य को उत्तेजित होते हुए देख कर कहा- "मुनिवर आचार्य, जिस ज्ञान को आप लिए हुए है, वह बड़े-बड़े शमशीर वाले भी नहीं ढूँढ पाये है। मुझसे एक वायदा करो, आप न क्रोध करेंगे और न ही कभी शमशीर को छुयेंगे।"

"अगर आप यह वायदा नही करेंगे, तो मै आपका आशीर्वाद लौटा दूँगी।"

विवश से आचार्य ने रैनमंजूषा की बात मान ली और डबडबाई हुई आँखों से उसे जाते हुए देखते रहे। वे रैनमंजूषा पर आने वाले कष्टों के बारे में सोच रहे थे और सोच रहे थे कि वे किस तरह इस सतवन्ती बेटी की रक्षा करेंगे, जिस पर कष्टों के बादल मँडराते आ रहे है।

37

समुद्र देवता ने अपने सिंहासन पर बैठ कर कहा।

"मैं अभी-अभी बाहर से लौटा हूँ। एक कामदेव रूपी मानव जो भरत खण्ड की चम्पानगरी का कोटिभट वंशी राजपुत्र है, समुद्र पार करता बढ़ रहा है। वह इतना बलि है कि हम सबको चुटकी में मसल सकता है। कुछ समय पूर्व मैंने अपनी पुत्री के लिए ऐसे वर की कामना की थी, मुझे श्री जैन मुनि ने कहा था कि जब वह महाबली राजपुत्र समुद्र को मथ कर तुम्हारे राज्य से गुजरेगा तो सुस्ताने को ठहरेगा। यह महाबली कितने ही दिनों से समुद्र की लहरों से संघर्ष करता आया है। अब मै इसके सुस्ताने की व्यवस्था करना चाहता हूँ।"

समुद्र देवता से दरबारी गणों ने कहा- "क्या पुत्री का विवाह उससे सम्भव होगा। हम बल से उसे जीत नही सकते और छल से चुरा कर नहीं ला सकते क्योंकि उसके पास शत्रु निवारणी और जलतारणी दो-दो विद्यायें भी है।"

"तुम लोग ठीक कहते हो। अगर हम उसे नही ला पाये, तो

पुत्री जान दे देगी। उसे रुष्ट करने से हमें अपने राज्य पर आने वाली विपत्ति का भी भय है। वह अगर नाराज हुआ तो हमारे राज्यरूपी समुद्र को मथ डालेगा। हमारी प्रजा के जीव-जन्तु हाहाकार कर उठेंगे। हमें समझ और अकल से काम लेना होगा।" देवता ने कहा।

"आपकी क्या योजना है?" गणों ने एक साथ खड़े होकर पूछा।

"पुत्री को अपनी मंज़िल पर जाने दो। शायद वह माया से श्रीपाल को अपने प्यार में बाँध लें।" देवता ने कहा। तुरंत ही एक दासी देवता की पुत्री सुप्रिया को बुला लायी।

"बेटी, तुम तुझसे अपना वर माँगती हो न। सो मैंने तुम्हारा वर ला दिया है।"

"कहाँ है?" सुप्रिया ने अधीरता से पूछा। मुझे तो स्वामी नजर नहीं आते पिताजी, उन्हें आपने कहाँ छुपा रखा है?

"वे समुद्र का सीना चीर कर भागे जा रहे है। जाओ उसे रोक लो", देवता ने कहा- "ठहरो मै भी तुम्हारे साथ चलूँगा। माया का चमत्कार नहीं होगा, तो वह तुम्हें कैसे देखेगा?"

))((38))((

श्रीपाल समुद्र में जा गिरा था। सिद्ध मंत्र का जाप करके उसने जल तारणी विद्या छोड दी, जो उसके लिए तेजी से रास्ता बनाने लगी।

वह सोचने लगा- "क्या उसे समुद्र में गिराने की धर्म पिता धवल सेठ की ही कोई योजना थी?"

"पर वे ऐसा क्यों करेंगे?"

फिर उसने किसी का क्या अहित किया है। श्रीपाल सोचने लगा- "रैनमंजूषा तो सर पटक-पटक कर रो रही होगी। उसे कौन ढाँढस बाँधता होगा? मेरे कर्म अभी बाकी हैं, तभी तो मै सागर में गिरा हूँ।"

उसने अपने पास से गुजरते हुए बहुत से जहाजों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहा, पर शायद समुद्री शोर-शराबे में उसकी आवाज़ किसी को सुनाई नहीं दी। हार कर उसने किसी की मदद न लेने का निश्चय करके खुद ही समुद्री लहरों से संघर्ष करना शुरू कर दिया।

वह रात-दिन तैरता रहा। एक रोज उसे लगा जैसे किसी ने

पास से उसे कुँवर जी कह कर आवाज़ दी हो। यह तो रैनमंजूषा की आवाज़ है, यह सोच कर वह पलटा, पर खाली समुद्र पर न रैनमंजूषा थी और न ही उसका जहाज था, यह देख कर वह फिर तैरने लगा।

जलतारिणी विद्या की गति बड़ी तेज थी और इस विद्या के सहारे उसे थकान भी नहीं हो रही थी। वह आसानी से बढ़ता जा रहा था। श्रीपाल जानता था कि यह सब कर्मों का खेल है और तकदीर में लिखी हुई घटनाओं को सत्य का रूप देने के लिए वह एक नयी मंज़िल की ओर बढ़ रहा है।

सफर चलता रहा। दिन गुज़रते जा रहे थे। एक रोज उसने एक अजीब करिश्मा देखा। सागर की लहरों पर एक सुन्दर लड़की और मगरमच्छ का युद्ध।

बड़ा भयंकर युद्ध था। श्रीपाल ठिठक कर देखने लगा। लड़की मगरमच्छ से संघर्ष करती हुई जख़्मी हो गयी थी और शिथिल पड़ने लगी थी, यह देख कर श्रीपाल ने अपनी शत्रु निवारणी विद्या निकाल कर मगरमच्छ पर छोड़ दी। मगरमच्छ डर कर भाग गया। श्रीपाल अर्द्धमूर्छित लड़की की ओर बढ़ने लगा। लड़की बहुत सुन्दर थी और शरीर पर झीने मखमली वस्त्र पहने हुई थी, जिसमे उसका एक एक अंग साफ नज़र आ रहा था। वह सुन्दर रूप और तीखे नयन-नक्श की पतली काठी वाली लड़की को होश में लाने का प्रयास करने लगा, पर लड़की तो जैसे होश में आना ही नहीं चाहती थी और मजे से गहरी नींद सो रही थी। इस नई मुसीबत को पाकर श्रीपाल ने सहायता के लिए इधर-उधर देखा। तभी उसे वृक्ष का एक तना बह कर आता हुआ दिखलाई दिया। श्रीपाल लड़की को वृक्ष की पतली शाखाओं के मुलायम पत्तों पर ले आया और उसकी छाती पर अपने कान सटा कर साँसों को गिनने लगा। उसकी साँस निरन्तर बंद हुई जाती थी और शरीर शिथिल पड़ा जाता था, यह देख वह लड़की के शरीर को मसल कर उसमें गर्मी पैदा करने लगा। उसके गीले कपड़े उतार कर श्रीपाल ने उसे वस्त्रविहिन कर दिया था।

वस्त्रविहिन होते ही लड़की को कुछ होश आता नज़र आया। श्रीपाल ने उसे औंधा लिटा रखा था और अभी भी उसकी पीठ मसले जाता था। होश आते ही लड़की सहमती हुई उठ बैठी और अपने शरीर को वृक्ष के पत्तों में छिपाने लगी। वह डरी-डरी सी श्रीपाल को घूर

रही थी।

"मैने जो कुछ किया, वह तुम्हें बचाने के लिए किया है", श्रीपाल ने कहा, तुम्हारे शरीर को मसल कर तुम्हें गर्मी ना दी जाती, तो शायद तुम जिन्दा ना रही होती।"

"पर अब तो मै जिन्दा होकर भी मर गयी हूँ। तुमने मेरे शरीर को छू कर और शरीर को वस्त्रविहिन करके मेरे शील मे दोष लगा दिया है। जानते हो मै कौन हूँ? मै समुद्र देवता की बेटी सुप्रिया हूँ। जिसने आज तक पिता और पिता के वृद्धगणों के अलावा किसी युवा पुरुष को नही देखा, छूना तो दूर की बात है।"

"अब क्या होगा?" श्रीपाल ने सहम कर पूछा।

"मेरे पिता तुम्हें श्राप देंगे। तुमने उनकी बेटी को अपवित्र किया है।" सुप्रिया बोली।

"सुप्रिया, अचानक ही उसके पिता देवता ने आवाज दी। तुम कहाँ हो?"

"अब मै क्या जवाब दूँ। ओह, पिता मुझे पुकार रहे है," सुप्रिया ने कहा- जल्दी करो, तुम मुझे मेरे वस्त्र पहना दो।

श्रीपाल अभी सुप्रिया को वस्त्र पहना ही रहा था, सर पर मुकुट बाँधे समुद्र देवता आ गया। उसने आते ही सुप्रिया से पूछा- "वस्त्र क्यों उतार रखे है? यह सुन्दर युवक कौन है?" सुप्रिया कुछ कहना चाहती थी, पर डर से कुछ न कह सकी। समुद्र देवता चिल्लाया-

"हे सुन्दर युवक तूने मेरी पुत्री को वस्त्रविहिन करके नापाक किया है, मै तुम्हें श्राप दूँगा।"

"पिताश्री," सुप्रिया उठी और श्रीपाल के आगे तन कर खड़ी हो गयी, बोली- "मुझे तो इतना याद है कि मै एक भयंकर आकृति के मगरमच्छ से लड़ रही थी। बाद मे आँखें खुली तो समुद्र में इनके पास वस्त्रविहिन पड़ी थी। इनका कहना था कि तुम्हें होश में लाने के लिए मुझे तुम्हारे वस्त्र उतार कर और शरीर को मसल कर तुममें गर्मी पैदा करनी पड़ी। अगर मै ऐसा नहीं करता, तो तुम मर जाती।"

देवता ने क्रोध में उबलते हुए कहा- "हमारे यहाँ युवा नारियों को पुरुष को देखने की छूट नही है और तुम इसके द्वारा अपने वस्त्रों को उतरवा कर इसके हाथों का स्पर्श पाते हुए इसकी साँसों को भी सुनती रही हो। अब इस अभागे के साथ तुम्हें भी मेरे श्राप का शिकार

होना पड़ेगा।"

"इन दोनों को श्राप दो।" चारों ओर से देवता के गणों की आवाजें आने लगी। वे सब आकर देवता के पास खड़े होने लगे। अर्द्धनग्न सुप्रिया सहम कर श्रीपाल के पीछे जा छिपी और अपने हाथों से श्रीपाल का आलिंगन कर लिया।

"हम निर्दोष है।" श्रीपाल चिल्लाया- "अधर्म को अपना कर श्राप देने की बात ना करो।"

"तुमने मेरी बेटी नापाक की है। देखो वह अभी भी तुम्हारे पीछे दुबक कर तुम्हें पकड़े हुए है।"

"पिताश्री, मै इन्हें चाहने लगी हूँ। हमें श्राप मत दो पिताश्री- हम आपकी प्रतिष्ठा बचा देंगे और विवाह कर लेंगे।" सुप्रिया गिड़गिड़ा रही थी। फिर वह श्रीपाल से हठ करने लगी- "मेरे रघुबीर इन्हें अपनी मर्जी बता दो।"

"अरे हाँ, यह तो मै भूल ही गया था कि इस भोली रूपसी से शादी करके मै देवता के कुल की लाज बचा सकता हूँ। हे समुद्र देवता, मेरी विनती सुनो, आप कर्मों के जालों में उलझे मुझ अभागे को और अपनी प्रिय बेटी को श्राप न दो। हम दोनों अभी और इसी समय विवाह कर लेते है।" यह कह कर श्रीपाल ने अपने अँगूठे से रक्त निकाल कर सुप्रिया की माँग भर दी। माँग की रस्म पूरी होते ही सुप्रिया श्रीपाल के गले का हार बन गई और श्रीपाल से प्रेम प्रसंग करने के लिए वृक्ष के पत्तों में जा छिपी। मायावी समुद्र देवता ने वृक्ष के तने को अपनी माया से भोग विलास की सामग्री सहित एक सुसज्जित कक्ष बना दिया। जिससे उसकी पुत्री श्रीपाल के साथ एकांतवास कर तृप्त हो सके। इसके बाद देवता और उसके गण लौट गये थे।

))X(39)X((

श्रीपाल कई दिन सुप्रिया से प्रेम प्रसंग करता रहा। सुप्रिया को असीम आनन्द की अनुभूति होती रही। उसे लग रहा था कि उसका जीवन अब निरर्थक नहीं रहा और वह सब कुछ पा गयी है।

"प्रेम रोग से मुक्त होकर अपनी मंज़िल पर चल दो," कर्मों ने श्रीपाल के कानों में कहा- "आगे तुम्हारे इन्तजार में कोई प्यासा बैठा

हुआ है।"

श्रीपाल ने कर्मों की बात मान ली और वृक्ष के पत्ते पर अपने खून से लिखा-

प्रिय सुप्रिया,

असीम बल का स्वामी होकर भी मै कर्मों के जालों में फँसा हुआ हूँ। कर्मों ने मुझे कर्म करते रहने को कहा है। मेरी तकदीर समुद्र पार मेरे इन्तजार में किसी के प्राणों को छीने हुए प्यासी बैठी है।

मैने तुम्हें पत्नी के रूप में स्वीकार करके अपना सामीप्य दिया है, यह मै कभी नहीं भूलूँगा और सदा याद भी रखूँगा। तुम्हें सोता हुआ छोड़ कर जा रहा हूँ। यही इसी स्थान पर आकर तुम्हें खोज लूँगा। मुझे पता है तुम समुद्र के देवता की पुत्री हो और मेरी प्रतीक्षा करोगी।

पत्र को लिख कर और सोई पड़ी सुप्रिया के पल्लू से बाँध कर श्रीपाल फिर से अपनी भुजाओं के बल पर समुद्र को पार करने लगा। लहरों को हाथों से कुचल कर आगे बढ़ते हुए उसे एक नये आनन्द की अनुभूति होती रही। कई दिनों बाद उसने देखा समुद्र सकरा होने लगा है और एक विशाल द्वीप के ऊँचे-ऊँचे महल दूर से ही दिखलाई दिए जाते है। श्रीपाल नये द्वीप को देख कर एक नये उत्साह से समुद्र में उछलने-कूदने लगा।

कुछ देर बाद दूर दिखलायी देने वाले ऊँचे-ऊँचे महलों का एक लम्बा सिलसिला पास आ गया था। समुद्र तट से छूती हुई पृथ्वी श्रीपाल को दिखलाई दी, वह उछला और पृथ्वी पर आ गया। उसके हर्ष का ठिकाना नहीं था। वह अपने दांयें-बांयें जिस ओर भी देखता, उधर ही महल ही महल नज़र आते। वे पक्के महल गगनचुम्बी थे और देखने में बहुत सुन्दर थे। भवनों के बीच में चौडी सड़कें थीं। सड़कों के दोनों ओर पैदल पार पथ बने थे।

आकर्षण द्वीप का आकर्षण देखने के लिए श्रीपाल आगे बढ़ा। वह अभी कुछ कदम बढ़ा ही था कि सामने के महल के झरोखे खुले, एक खूबसूरत चेहरे ने उसे देखा और प्रणाम किया।

श्रीपाल को वह सुन्दर लड़की अच्छी लगी और अजीब भी। वह नहीं समझा लड़की उसे कैसे जानती है?

वह चलता-चलता ठिठका और सोचने लगा। नगर में खामोशी क्यों है? लोगों ने अपने महलों के द्वार क्यों बंद किए हुए है?

अचानक ही वह खूबसूरत लड़की किसी अजीब भाषा में जोर से चिल्लायी। उसके चिल्लाने पर महलों के झरोखे खुलने लगे और झरोखे में से कुछ सुन्दर चेहरे श्रीपाल को देखने लगे।

श्रीपाल भी उन सबको देख कर हँसा और हाथ हिला-हिला कर कहने लगा- "मैं तुम्हारा मित्र हूँ। मुझे शहर की इस खामोशी से उब हो रही है। तुम सब निसंकोच मेरे पास आओ। शायद तुम लोग मुसीबत में हो। तुम्हें मेरी मदद लेनी चाहिए।"

श्रीपाल ने कहा और मित्र होने के कुछ इशारे भी किये। इशारे करने से उन झरोखों में से कुछ खूबसूरत चेहरे रोने लगे।

"रोओ मत, नीचे आओ। मैं तुम सबका गम खरीद लूँगा।" श्रीपाल ने उन्हें इशारा किया। झरोखें बंद होने और द्वार खुलने के स्वर आये। देखते ही देखते उसके चारों ओर बूढ़ी और युवा औरतें और छोटे बच्चों का जमघट लगने लगा।

श्रीपाल देख रहा था, वे सब रो रहे थे।

"तुम सब क्यों रो रहे हो?" श्रीपाल ने पूछा।

औरतों और बच्चों के समूह में शरीक उस खूबसूरत लड़की ने इशारे से कहा- "हमारे पिता, भाई सब किले में बंद हैं।"

"किला कहाँ है?" श्रीपाल ने पूछा।

वह खूबसूरत लड़की पश्चिम दिशा की ओर इशारा करने लगी।

"आओ मेरे साथ", श्रीपाल ने उस खूबसूरत लड़की से कहा- "तुम और तुम्हारे सब साथी मेरे साथ चलो।"

उस खूबसूरत लड़की ने अपनी भाषा में न जाने क्या कहा, सब नारी बच्चे हर्ष से उछलने-कूदने लगे और श्रीपाल के पीछे-पीछे चलने लगे। रास्ते में उनके कोलाहल का स्वर सुन कर महलों के दरवाजे खुलते। छोटे-छोटे बच्चे और औरतें घरों से निकलते और श्रीपाल को प्रणाम करके भीड़ में शरीक होकर साथ-साथ चलने लगते।

श्रीपाल के पीछे नारियों और बच्चों का एक विशाल समूह हो गया था और वह खूबसूरत लड़की श्रीपाल को रास्ता दिखलाती हुई एक किले के द्वार पर ले आई थी।

किले का द्वार बंद था। दीवारें भी उसकी ऊँची-ऊँची थी। श्रीपाल ने शत्रु निवारणी विद्या से पूछा।

"किले के अन्दर क्या है?"

"कुमकुमदीप के सैनिक, राजा और पुरुष प्रजक बंदी बने पड़े है। जो औरतें, बच्चे तुम्हारे साथ खड़े है, वे कुमकुमदीप के ही निवासी है।"

विद्या कह रही थी। "इन्हें किसने बंदी बनाया है?" श्रीपाल ने विद्या से पूछा।

"राक्षस भस्मासुर ने।"

"यह भस्मासुर कौन है?" श्रीपाल ने पूछा।

"यह राक्षस एक भयंकर आकृति का खौफनाक दरिंदा है। यह कुन्दनपुर, कंचनपुर और इस कुमकुमद्वीप, तीनों द्वीपों में से प्रत्येक द्वीप से एक-एक जिन्दे व्यक्ति को अपनी भूख शांत करने के लिए लिया करता था और हर रोज तीन व्यक्तियों का राक्षस को आहार देकर तीनों द्वीपवासी सुख से रहा करते थे। यह दोस्ती पिछले कई सालों से चली आ रही थी पर एक दिन अचानक ही एक जैन मुनि आये और कुमकुमद्वीप की राजकुमारी गुणमाला से कहने लगे- तुम बलि मत दिया करो और राक्षस के अत्याचारों को न सह कर अपने पिताश्री को उससे संघर्ष करने को कहो। तुम्हारी सहायता करने के लिए महाबली आने वाला है। वह इस राक्षस को मारेगा। गुणमाला ने यह बात अपने पिता भूमण्डल से कही, राजा भूमण्डल भी हर रोज राक्षस को जिन्दा आदमी खाने के लिए दे देकर तंग आ गया था। जैन मुनि के दर्शन करके और उत्साहित होकर उसने राक्षस को बलि के लिए आदमी देना बंद कर दिया। राजा भूमण्डल की तरह कुन्दनपुर और कंचनपुर के राजाओं ने भी बलि देनी बंद कर दी और राक्षस को कहलवा भेजा- अगर कुमकुमद्वीप का राजा बलि देना शुरू कर दे, तो वे भी बलि देने को तैयार हैं। राक्षस ने सोचा यह सब बदमाशी कुमकुमद्वीप के राजा की है। वह पहले कुमकुमद्वीप के मनुष्यों को खाकर फिर कुन्दनपुर और कंचनपुर के बारे में सोचेगा। यों सोच कर राक्षस कुमकुमद्वीप के सभी मनुष्यों को उठा कर इस किले में ले आया है। यह किला कुमकुमद्वीप के राजा भूमण्डल का ही है, जो वर्षों से राक्षस के कब्जे में है। राक्षस इस किले में सपरिवार रहता है।"

श्रीपाल ने विद्या से कहा- "जाओ, तुम राक्षस को मेरे आने की सूचना दो। मैं किले का द्वार तोड़ रहा हूँ।"

विद्या हवा में तैरती हुई किले में प्रविष्ट हो गयी। श्रीपाल ने

आगे बढ़ कर किले का द्वार तोड़ दिया। तभी उसने राक्षस को अपनी ओर दौड़ कर आते हुए देखा। श्रीपाल ने सिद्ध मंत्र पढ़ कर शत्रु निवारणी विद्या द्वारा अपना आकार बढ़ा लिया और राक्षस को रोक कर कहा- "मूर्ख आदमखोर, क्यों मेरे हाथों से मरना चाहता है? मेरी सलाह मानो और मेरी आधीनता स्वीकार कर लो।"

भयंकर आकृति वाले राक्षस ने उसकी बातों को हँसी में उड़ा दिया और चाहा श्रीपाल को अपने हाथों में उठा ले।

श्रीपाल इस बार और ऊँचा हो गया। सबने देखा, श्रीपाल के सामने विशालकाय राक्षस बौना नज़र आ रहा था।

राक्षस भी उसका बढ़ने वाला रूप देख कर आश्चर्यचकित था। फिर भी वह अपने को शक्तिशाली समझ कर श्रीपाल के पेट और छाती पर घूसे मारने लगा। उसने कई घंटे तक ताबड़तोड़ घूंसे मारे पर श्रीपाल के शरीर पर उनका कोई असर नही हुआ। लोगों ने देखा राक्षस फटी-फटी आँखों से श्रीपाल को देख-देख कर भयभीत हो रहा था और हाँफ भी रहा था।

"मूर्ख राक्षस, क्या तुम थक गये हो?" श्रीपाल ने पूछा- "तुम रुक क्यों गये? चलो मेरे शरीर की कसरत करो।"

"नही मै थका नही हूँ, मै तुम्हें मार डालूँगा, मै तुम्हे चबा जाऊँगा, लो मै फिर तुम पर प्रहार कर रहा हूँ।" राक्षस ने हाँफते हुए कहा और अपने मोटे-मोटे हाथों की मुट्ठी बाँध कर श्रीपाल के पेट पर प्रहार करने लगा।

"और मारा", श्रीपाल ने कहा- "मेरा शरीर वज्रमयी है। तुम कितने ही वार करो, मेरा कुछ नही बिगड़ेगा। अरे मूर्ख, मेरे शरीर पर विष बुझें बाण और चमचमाती शमशीर भी असर नही कर पाती, चाहो तो तलवार को मेरे पेट में घुसेड़ कर देख लो।"

क्रोध में अधे हुए राक्षस ने तलवार उठा कर श्रीपाल के पेट में घुसेड़नी चाही, पर तलवार मुड़ कर पृथ्वी पर गिर गयी। यह देख राक्षस बुरी तरह भयभीत हो गया और लौट कर भागने लगा।

राक्षस को भागते हुए देख कर श्रीपाल ने अपनी विद्या से कहा- "राक्षस को छोटा करो और इसे दो फुट का बौना बना दो। इसके नाखून, दाँत और शरीर पर उगे हुए बाल साफ करके इसे डरपोक रह जाने दो।"

विद्या ने श्रीपाल की आज्ञा पर राक्षस को बौना बना दिया। अब श्रीपाल राक्षस के परिवार की ओर बढ़ा। सूबसूरत लड़की श्रीपाल की अद्‌भुत जादूगरी पर अपनी तालियाँ बजा-बजा कर खुश हो रही थी। उसके साथ दूसरी औरतें और बच्चे भी पेट पकड़े हँसे जाते थे। भीमकाय शरीर वाला राक्षस दो फुट का बौना बना किले में इधर-उधर दौड़ा-दौड़ा फिर रहा था। सैनिक और कुमकुमद्वीप के प्रजक पुरूष बंधन मुक्त हो गये थे और श्रीपाल के पीछे-पीछे चल रहे थे।

श्रीपाल उस ऊँची खोह पर पहुँचा, जहाँ राक्षस का परिवार रहता था। खोह में घुप्प अँधेरा था। यह देख श्रीपाल का माथा ठनका। अपने कद को सामान्य करके उसने अपने हाथों में एक जलती हुई मशाल ले ली और खोह (गुफा) में घुस गया। पीछे-पीछे खूबसूरत लड़की, वहाँ के राजा के सैनिक भी आ रहे थे।

"गुफा कितनी लम्बी है?" श्रीपाल ने विद्या से पूछा।

"काफी बड़ी है। गुफा में कौन-कौन है?"

"राक्षस की भयंकर पत्नी और उसके बहुत से बच्चे हैं।"

"ये लोग मुझसे लड़ना चाहते हैं, जाओ मालूम करो।" श्रीपाल ने कहा- विद्या हवा में उड़ी और लौट आई।

"वे क्या कह रहे हैं?"

"प्राणदान चाहते हैं।"

"ठीक है, राक्षस के परिवार को बंदरों का रूप दे दो। कुमकुमद्वीप में बंदर भी नहीं है।" श्रीपाल ने कहा और लौट पड़ा।

वह गुफा से बाहर आ गया था। खूबसूरत लड़की ने इशारे से राजा का परिचय श्रीपाल से कराया-

"यह मेरे पिता हैं।"

"खूबसूरत लड़की, क्या तुम यहाँ की राजकुमारी गुणमाला हो?" श्रीपाल ने सांकेतिक भाषा में पूछा- "हाँ," वह अपनी शीशे जैसी गर्दन हिला कर हामी भर रही थी।

राजा भूमण्डल ने आगे बढ़ कर श्रीपाल को बाहों में भर लिया और उसका माथा चूमने लगा।

श्रीपाल ने विद्या से राजा के बारे में पूछा, विद्या बोली- "राजा तुम्हें जमाता बनाना चाहता है।"

"और गुणमाला, क्या वह भी मुझे प्यार करने लगी है?"

"हाँ, वह तो तुम्हें प्यार ही नहीं कर रही, दिल भी दे बैठी है।"

राजा ने इशारे से श्रीपाल को साथ चलने को कहा और अपने कुछ सैनिक दांयी-बांयी दिशाओं की ओर दौड़ाये।

विद्या श्रीपाल से कह रही थी- "राजा भूमण्डल तुमसे खुश है वह अपने सैनिकों को कंचनपुर और कुन्दनपुर भेज रहा है। यह बताने की उसकी पुत्री के प्रिय मित्र ने राक्षस को सिर्फ़ दो फुट का बौना बना दिया है। राक्षस का सारा परिवार बंदरों की शक्ल में आँखें मिचमिचा और दाँत किटकिटा कर किले में धमा-चौकड़ी मचाये हुए है।

श्रीपाल ने हँस कर कहा- "बिना खून-खराबा किये पाला मार लिया है। क्या यह खुशी की बात नहीं है?"

अब मै आराम करना चाहता हूँ।

गुणमाला ने श्रीपाल का इशारा समझ कर उसके सोने की व्यवस्था करा दी।

दिन भर और पूरी रात नींद लेकर श्रीपाल ने अपनी थकावट दूर कर ली। सवेरे जब वह उठा तो तरोताजा था। गुणमाला उसके कक्ष के बाहर बैठी पहरा दे रही थी। "क्या तुम सोयी नहीं हो?" श्रीपाल ने गुणमाला से पूछा।

"नहीं, तुम्हें रात भर चाहा है और याद रखा है।" वह सांकेतिक भाषा का सहारा ले रही थी।

पहली बार श्रीपाल ने गुणमाला को गौर से देखा। उसे गुणमाला, मैनासुन्दरी और रैनमंजूषा दोनों का मिला-जुला प्रतिबिम्ब लगी। उसमें सुप्रिया की उमंगें भी थीं। तीन-तीन खूबसूरत औरतों के अस्तित्व को लिए गुणमाला मानो उसके लिए चुनौती थी। वह जब हँसती, तो आकाश के सारे सितारों को इकट्ठा कर लाती। उदास होती तो मानो काले बादलों का घुप्प अंधकार फैला देती। उसकी नीली आँखों में अछूते प्यार का एक ऐसा समाँ था, जिसे देख कर हर किसी को ठिठकने के लिए मजबूर होना पड़ता था। आँखों के आर्कषण के साथ-साथ उसके शरीर के आर्कषण का जादू भी श्रीपाल पर चढ़ आया। वह उसकी शीशे जैसी गर्दन को देख रहा था। जिसकी नसें उसे साफ दिखलाई दे रही थीं। चेहरा, गर्दन, नितम्ब, देखता हुआ वह उसके हाथों और पैरों को देखने लगा और फिर श्रीपाल हँस पड़ा।

गुणमाला ने श्रीपाल से हँसने का कारण पूछा। श्रीपाल बोला- "तुम तो माया हो।"

"मै माया हूँ?"

"हाँ, मुझे हर सुन्दर नारी माया नज़र आती है। क्या रैनमंजूषा, मैना और सुप्रिया की तरह तुम सुन्दरता में कम हो? तुम्हें देख कर लगता है जैसे परिस्तान से कोई परी आ गयी है।"

"स्वामी," गुणमाला ने सिर्फ इतना कहा और फिर शर्म से मानो जमीन में धंस गयी।

"वाह, मैना मुझे कंथ कहती है। रैना, कुँवर जी पुकारती है। सुप्रिया ने मुझे रघुवीर कह कर पुकारा था और तुम मुझे 'स्वामी' कहती हो। तुम सबने मेरे लिए कितने अच्छे सम्बोधन चुने है।"

"हम आपको क्या कह कर पुकारें? द्वार के दोनों पल्लुओं से दो प्यारे स्वर आये। चित्रा, बिला तुम।" गुणमाला ने झट से पहचान कर आवाज दी- "आओ जल्दी से आओ, मै तुम्हे अपने स्वामी से मिलवाती हूँ।"

द्वार कुछ हिले और फिर दो सुन्दर तरुणियाँ दौड़ कर गुणमाला की ओर भागीं। पलक झपकते ही वे गुणमाला से लिपट गयीं।

"तुम दोनों कब आई हो?" गुणमाला ने पूछा। फिर अपने आप ही बोली- "शायद तुम अकेली नही आई हो।"

"नही, हमारे साथ हमारे पूरे परिवार भी आये है। हम दोनों की शादी होगी।"

"कब, किसके साथ, इतनी जल्दी सब कुछ।" गुणमाला नाराज हो गयी थी- "हमें पता नहीं और तुम शादी कर रही हो?"

"शादी तो तुम भी कर रही हो रानी! क्या तुमने हमें अपनी शादी की खबर भेजी है?"

"यह सब तो कल तय हुआ है", गुणमाला ने शरमा कर कहा- "मेरे स्वामी ने भस्मासुर राक्षस को बौना और उसके परिवार को बंदर बना कर मेरा ही नहीं मेरे राज्य के लोगों का भी दिल जीता है।अब तुम्ही कहो, जिसे दिल चाहने लगे, उसे अपने से दूर कैसे किया जा सकता है?"

"नहीं, गुणमाला तुमने एक सही निर्णय लिया है। हमारे पिता की तरह, जो यश, बल में धुरन्धर है। उन्होंने तो हम दोनों के लिए

एक सही वर चुना है और वह भी बिना देखे, हमें उसके नाम पर दान कर दिया है।"

"कौन है वह भाग्यशाली पुरुष, जिसको मेरी दोनों प्रिय सहेलियाँ दान में मिली है।"

"तुम्हारा स्वामी।"

"क्या?" गुणमाला का मुँह खुला का खुला रह गया।

"हाँ प्रिय सखी, हमारे पिताओं ने प्रण किया हुआ था कि जो भस्मासुर का संहार करेगा, वह ही हमारा पति होगा।"

"पर यह प्रण तो मेरे पिताश्री का भी है।"

"अरे रानी, तुम्हारे पिता और हम दोनों के पिता, तीनों ही तो इस राक्षस से भयभीत थे और अब स्वामी के आ जाने पर आनन्दमय है। सुनने में आया है, वह आदमखोर राक्षस नन्हे से बौने की शक्ल में किले में हो-हल्ला मचाये हुए कुछ बन्दरों के पीछे डंडा लिए दौड़ता फिरता है।"

"मुझे पता है उसको बौना कर उसके परिवार को बंदरों की शक्ल मे बदलने वाले मेरे स्वामी ही तो हैं। मुझे यह भी खुशी है कि तुम मेरी प्रिय सखी हो और मेरे स्वामी के पास मेरे साथ रहोगी, पर मै एक बात नही मानूँगी।"

"कौन सी बात नहीं मानोगी?" चित्रलेखा और विलासमती जानना चाहती थी- "मै अपने स्वामी को, स्वामी के नाम से तुम दोनों को नही पुकारने दूँगी।"

"फिर हम क्या कह कर पुकारें?" उन दोनों ने पूछा।

गुणमाला कुछ देर सोचती रही, फिर विनोदी मूड में होकर धीरे से कहने लगी-

"चित्रा तुम स्वामी को लम्बू कहोगी, क्योंकि मेरा स्वामी तुमसे लम्बा है और विला तुम स्वामी को 'राजा' कहोगी राजा, हाय मोरे राजा।" गुणमाला ने नाटकीय मुद्रा में विला को किस तरह राजा कहना है, कह कर बतलाया और हँसी।

श्रीपाल ने उन्हें बारी-बारी से देखा, पर वह निर्णय नहीं कर सका कि उनमें सबसे अधिक सुन्दर कौन है? उसे तीनों ही बहुत सुन्दर परी जैसी लगीं।

तभी वह चौक पड़ा?

चित्रलेखा ने उसे 'लम्बू' कह कर प्रणाम किया और विलासमती ने 'हाय मेरे राजा' कह कर उसकी बाँह पकड़ ली।

"यह सब क्या है?" श्रीपाल ने इशारे से गुणमाला से पूछा।

"दान में आई हुई बीवियाँ है।" गुणमाला ने इशारे से श्रीपाल को समझाया- "अब गुणमाला के साथ-साथ इन दोनों से भी उसे शादी करनी है, यह सोच कर श्रीपाल ने अपना सर पीट लिया।"

))X(40)X((

राजा भूमण्डल अपने साथ कुन्दनपुर के राजा पाहुकेतु और कंचनपुर के राजा वज्रसेन को लेकर श्रीपाल के पास आया। उसने बातचीत शुरू की।

श्रीपाल ने इशारे से कहा- "मुझे आपकी बात समझ में नही आती, अत: दुभाषिये को बुलवाइये, जिससे हम बातचीत का क्रम जारी रख सकें।"

दुभाषिया आया। उसने भूमण्डल की बात श्रीपाल से कही।

राजा कहते है कि आपने भस्मासुर राक्षस को बौना बना कर हम सब पर उपकार किया है। हम आपका उपकार सदा याद रखेंगे। आपको हम तीनों राजा अपनी-अपनी बेटी का कन्यादान करेंगे। आपको हमारी बात माननी होगी।

श्रीपाल ने कहा- "मै कर्मों का मारा हुआ एक परदेसी हूँ। कोटिभट वंश का राजपुत्र हूँ, पर तकदीर आजमाने दिग्विजय पर निकल आया हूँ। कृपया इसके लिए मुझे क्षमा कर दें।"

"हमारी बेटियों का क्या होगा? जो आपको पति स्वीकार कर चुकी है।"

"मेरी पहली ही तीन पत्नियाँ है।" श्रीपाल ने कहा- "पहली पत्नी से कुछ बच्चे भी हैं।" कोई बात नही, ऐसा तो होता ही है। हम राजा लोग बहुपत्नी प्रथा में विश्वास रखते है। आप हमारी पुत्रियों से शादी करें। चाहें तो इसके बाद भी आप राजकन्याओं से शादी करें।

"नही, यह तो धर्म के विरुद्ध कार्य होगा। जब मै दिग्विजय पर निकलूँगा, तो बहुत से राजा मुझे अपनी कन्यायें देकर संधि करना चाहेंगे। हर खूबसूरत नारी को मै अपने यहाँ कैदी बना कर औरतों का

गोदाम नही बनाना चाहता।

"हे पुत्र, क्या तुम पत्नी व्रत लेना चाहते हो?" भूमण्डल ने दुभाषिये द्वारा अपनी शंका का समाधान चाहा।

"हाँ, पर मै आप लोगों की इच्छा पूरी करने के बाद ही पत्नी व्रत लूँगा।" श्रीपाल ने कहा- "अगर आप लोगों की इच्छा है तो मै आपकी पुत्रियों को पत्नी रूप में स्वीकार किए लेता हूँ। क्या आप मेरे बारे में कुछ जानना चाहेंगे?"

"नही, हमें पता है आप उच्च कुल के ऐसे दीपक है जिसकी तुलना सूरज या चाँद से की जा सकती है। हमारे मन में कोई संशय नहीं है। हमारा दिल आपकी बहादुरी और प्यार भरी बातों से भर गया है। आओ हमारे साथ चलो," यों कह कर तीनों राजा श्रीपाल को अपने साथ विवाह मंडप की ओर ले आये। गुणमाला अपनी सखी चित्रा और विला के साथ द्वार की ओट से श्रीपाल को देख-देख कर मंत्रमुग्ध हुई जाती थी। वह अपने साजन की बाहों मे जाने के लिए बहुत उतावली थी और हर बार नारी लाज के कारण श्रीपाल की ओर लपकती हुई रह जाती थी। उसकी इस दशा पर चित्रा और विला खूब हँसती रही और रात में श्रीपाल गुणमाला का स्वामी, चित्ररेखा का लम्बू और विलासमती का राजा बन गया था। उसके गले में तीन-तीन वरमाला पड़ी हुई थीं और तीनों रानियाँ उसे अलग-अलग अपने-अपने शयन कक्ष की ओर खैंचे हुए लिए जाती थी।

))X((41))X((

उसके सर पर कष्टों के बादल मँडरा रहे है। क्या कुछ अनिष्ट होगा। रैनमंजूषा सोचती रही और अपने कर्मों पर विहँसती रही।

उसके कुँवर जी सुरक्षित तो है, पर कब और कहाँ समुद्र से पार होंगे, यह गम उसे बार-बार खाये जा रहा था। समुद्र में तैरते-तैरते वे थक गये होंगे। वे पानी के अथाह समुद्र में क्या खाते-पीते होंगे, कैसे सोते होंगे? बहुत से सवाल थे, जो रह-रह कर उसके मन में आ रहे थे और वह अपने कुँवर जी की मोहब्बत में मरी जा रही थी।

उसका अगर कोई है तो वे कुँवर जी ही तो है, जो अकेले समुद्र की छाती को चीर कर अनजाने शहर की ओर जा रहे है।

उसने जहाजों की रवानगी की सीटी सुनी फिर जहाजों के चलने का स्वर आने लगा। जहाज चल दिए है यह सोच कर वह अपने कक्ष में मसहरी पर आ लेटी। लालटेन की मद्धिम रोशनी भी उसे अखर रही थी, जो उसने उठ कर बुझा दी और फिर से लेट गई, तभी उसे ऐसा लगा जैसे कोई उसके शरीर को छूना चाहता हो।

वह घबरा कर उठ खड़ी हुई और उसने लालटेन के प्रकाश में देखा, धवल सेठ खड़ा था।

पिताश्री, रैनमंजूषा ने पूछा- "चोरों की तरह छुप कर क्यों आये हो?"

"श्रीपाल मेरा पुत्र नहीं था, और न ही मै तुम्हारा पिता हूँ।"

"यही बताने आये हो।" रैनमंजूषा ने पूछा।

"हाँ और यह भी बताने आया हूँ कि मेरे पास अपार धन है। मुझे देश-विदेश में लोग कौशाम्बी का दूसरा राजा कहते है। अपार सम्पदा है मेरे पास, इसको भोगो और राज करो।"

रैनमंजूषा हँसी, फिर बोली- "यह बातें अगर आप किसी कंगली औरत से कहते तो तुम्हारा जादू चल जाता। मै तो एक ऐसे राजा की पुत्री हूँ, जो तुम जैसे लाखों सेठों को खरीद सकते है।"

धवल सेठ ने कहा- "तुनकमिजाजी की बातें न करो, रात गहरी होने लगी है, आओ प्यार की बातें करें।"

"अरे, बदकार तू पुत्री से ऐसी बातें करता है", रैनमंजूषा ने कहा- "अपने ढलते हुए यौवन को तो देख, जिसने तेरे चेहरे पर मौत की चादर बिछा दी है।"

"प्राणप्यारी, तू श्रीपाल के प्यार में पागल है, मुझे पता है पर वह समुद्र में गिर कर मर चुका है। उसकी लाश कोई मगरमच्छ खा गया होगा, या आकाश के गिद्ध उसकी लाश पर मँडराते हुए आपस में लड़-भिड़ रहे होंगे।"

"दुष्ट, तू सती के सुहाग के लिए दुष्ट वचन कहता है, तेरा सर्वनाश होगा।"

धवल सेठ हँसा, बोला- मुझे पता है आज के युग की नारी पति के मर जाने पर भी अपने को सुहागन समझती है, जैसे तुम समझ रही हो। वह कोटिभट राजपुत्र अपने बलवान होने की डींगें मारता था, मेरा सेवक था, जिसे मैने खरीद लिया था। उसका गम भुला कर तुम

मेरी बाँहों में आकर आनन्द से अपनी गमगीन रातों को जवानी के ऐशों आराम में बदल लो। समर्पण करने कराने में ही जिन्दगी का असली लुत्फ है।

"जिस आनन्द की तू बात करता है वह पाप का खेल है, जा इस खेल को जहाजों पर सवार दुराचारिणी स्त्रियों और अपनी सेठानी से खेल। तेरी सेठानी बहुत खूबसूरत और शीलवंती है और ऐसी शीलवंती सेठानी को तेरा जैसा नीच पति मिला है। मै तो कर्मों की सतायी हुई एक ऐसी नारी हूँ, जिसने पति प्रेम के पूरे आठ दिन भी नहीं देखे। अपने पति को समुद्र में संघर्ष करते हुए अपनी बेबस आँखों से देखा है। तू मेरे कुँवर जी का धर्म पिता है, तो मेरा भी धर्म पिता है। बेटी से ऐसी बातें करने से सात जन्म नरक में रहना पड़ेगा, यह जैन धर्म में लिखा है। दुनिया में परनार को बुरा कहा है, क्या परनार पर पाप की दृष्टि डाल कर रावण नरक में यातना भोगने नहीं गया था? मुझे लगता है तू पशु है, निशाचर (राक्षस) है और कमीना भी। कमीने आदमी भी ऐसी हरकतें नहीं करते, जा अपने जहाज पर लौट जा और मुझे परेशान न कर।"

धवल सेठ रैनमंजूषा की बातों पर जोर से हँसा और अपने अचकन की जेब से सुरा की बोलत निकाल कर पीने लगा। यह गटागट एक साँस में ही पूरी बोतल डकार कर कपड़े उतारने लगा और फिर रैनमंजूषा को पकड़ने के लिए दौड़ा।

कुछ देर वह कक्ष में रैनमंजूषा के पीछे दौड़ता रहा। भाग्य की मारी रैनमंजूषा रोती बिलखती कक्ष में दौड़ती रही और फिर थक हार कर उस दरिन्दे की बाँहों में गिर कर बेहोश हो गयी। बेहोश होने से पूर्व उसने अपने शील की रक्षा के लिए आदिनाथ भगवान से प्रार्थना की।

बस, पाप का समय पूरा हो गया था। पुण्य दौड़ता हुआ आ रहा था। धवल सेठ के राक्षसी हाथों को जैसे काठ मार गया। वे हिल-डुल नहीं रहे थे। रैनमंजूषा को धक्का दे वह भय से सिहर कर उठ खड़ा हुआ। उसके हाथ अभी भी निष्प्राण थे। उसने अपने हाथों को खूब हिलाया-डुलाया, पर हाथ तो काम ही नहीं कर रहे थे। ओह, उसने सिर्फ़ इतना ही कहा और भय से सिहर कर जोर से चीखा। "नहीं, नहीं, नहीं।"

42

रैनमंजूषा की धवल सेठ की चीख पर बेहोशी टूट रही थी।

"मुझे क्षमा कर दो। मेरे हाथों को ठीक कर दो बेटी", धवल सेठ रो रहा था, गिड़गिड़ा रहा था।

रैनमंजूषा भी आदिनाथ भगवान की लीला को अपलक निहारे जाती थी। यही धवल सेठ कुछ देर पहले अपने क्रूर हाथों से उसकी अस्मत लूटने पर आमादा हुआ बैठा था और अब उन्ही हाथों की रिहाई चाहता है, यह सोच कर रैनमंजूषा चीख पड़ी- "नही तुम ऐसे ही रहोगे। तुम पापी हो, तुम नारियों के जिस्मी हत्यारे हो, तुम अकेले नारियों पर जानवरों की तरह टूट पड़ते हो। तुम तो मेरा शील भंग करने वाले थे। तुझे तेरे पापों के लिए कर्मों ने ठीक सजा दी है। अब तू अपने इन गंदे हाथों से किसी औरत की इज्जत नही लूट सकेगा।"

"जाओ, तुम्हें यह तुम्हारे पापों की सजा है। तुम्हारे पापों ने तुम्हारा धर्म छीन लिया है।"

"तुम अपने सात जन्मों के हत्यारे हो गये हो। जो किसी पर-नारी पर बुरी दृष्टि डालेगा, वह सात जन्म तक अंगहीन रहेगा, अब रोने से तुम्हें क्या मिलेगा? जाओ अपना रास्ता लो।"

रैनमंजूषा ने कहा और फिर अपना कक्ष बंद कर लिया। तभी वहाँ शंकर आचार्य मुनि की हँसी सुनायी दी।

धवल सेठ ने देखा, वह तो खुले जहाज पर अकेला खड़ा है फिर आचार्य शंकर की यह हँसी कहाँ से आ रही है?

जहाज भी उसका सबसे पीछे की ओर है।

यह उसका भ्रम तो नही। हँसी फिर आ रही थी।

वह पागलों की तरह इधर-उधर डैक पर दौड़ा।

इस बार हँसी के बहुत से स्वर थे। आचार्य और उसके जैन मुनियों के स्वर।

"यह सब क्या है?" धवल सेठ चीखा।

"नही, नही, किसी ने मुझ पर जादू किया है। मै उसे नही छोडूँगा।" धवल सेठ गुर्राया।

उसकी बात पर बहुत से हँसी के ठहाके लगे और फिर मल्लाहों की खुशियों भरी किलकारी आने लगी। अरे दीप आऊ गयो है रे, दीप

आऊ गयो है।

जहाजों की चाल धीमी कर दी गयी। सचमुच ही कोई विशाल द्वीप आ गया था। धवल सेठ नये द्वीप को पाने की खुशी में अपने हाथों को देखना भूल गया, जो मुर्दे की तरह लटक रहे थे।

विशाल द्वीप आ गया था।

जहाजों की गति धीमी हुई और फिर वे द्वीप के तट से लगा कर लाइन में खड़े किये जाने लगे। धवल सेठ अपने प्राणहीन हाथों को शाल से ढाँपे हुए अपने जहाज के डैक पर खड़ा द्वीप के वैभव को देखने लगा।

महाजन और सैनिक द्वीप पर उतर कर हँसते बोलते चारों ओर बिखर गये। रैनमंजूषा ने भी जहाज का काफ़िला रुकता हुआ देखा था। वह कक्ष से बाहर आकर खूबसूरत द्वीप की ओर देखने लगी। अब वह रो-पीट नहीं रही थी और कर्मों के खेल पर आश्वस्त हो गयी थी। तभी उसने शंकर आचार्य को क्रोध में भरे हाथों में शमशीर उठाये अपने जहाज पर चढ़ते हुए देखा।

"आचार्य", हँसी रैनमंजूषा- "मैने तुम्हें शमशीर उठाने के लिए मना किया था।"

"यह शमशीर धर्म की रक्षा के लिए है, मै तुम्हारा जहाज लूटने नही आया हूँ।"

"आचार्य, आप जैन मुनि है फिर मुनियों के आचार्य भी। क्या आपके हाथों में यह खड्ग शोभा देती है?"

"एक सतवन्ती बेटी की इज्जत लूटी जा रही हो और मै चुपचाप माला जपता हुआ यह सब देखता हूँ, नही यह सब मुझसे नही होगा। वह देखो, मेरे पीछे हर जैन मुनि अपने हाथों में शमशीर लिए हुए खड़ा है।"

"यह तो अनर्थ हुआ। अब आपको कर्म सजा देंगे।" रैनमंजूषा बोली।

"कोई बात नहीं, हम यह भी सह लेंगे, पर दिल में एक हसरत तो रहेगी कि हमने अपनी बेटी की इज्जत नही लुटने दी।" आचार्य ने कहा।

"आचार्य, आप साक्षात तीर्थंकर है।" रैनमंजूषा ने कहा और रोने लगी। वह रोकर कह रही थी- "कर्मों की कितनी अजीब लीला

है, लुटेरे रक्षा करने आते है और धर्म पिता, बेटी के रक्षक, बेटी का शरीर नोंचने को तैयार खड़े है।"

"धवल सेठ कहाँ है?" क्रोध में भरे आचार्य पूछ रहे थे।

"वह अपने किये की सजा पा चुका है और ग्लानि में डूबा हुआ कहीं जा छिपा है।"

"क्या उसे सजा मिल गयी, किसने दी?" आचार्य जानना चाहते थे।

"कर्मों ने, उसने मुझे छुने को हाथ बढ़ाये ही थे कि हाथ पंगु हो गये। अब वह अपने पंगु हाथों को लिए लुकता-छिपता फिर रहा होगा।"

"चलो अच्छा हुआ, जो वह अपने पापों की सजा पा गया और हमारा धर्म बच गया।" आचार्य ने यह कह कर अपनी तलवार समुद्र के पानी में फेंक दी। आचार्य की देखा-देखी दूसरे मुनियों ने भी ऐसा किया। फिर वे सब अपने जहाज पर आकर साधना करने लगे। रैनमंजूषा भी अपने बिस्तर पर जा लेटी थी और कर्मों का लेखा-जोखा जोड़ रही थी। धवल सेठ अपने पापों की कहानी छिपाने के लिए हाथों को शाल से ढाँपे खड़ा था और द्वीप के राजा की भेंट थालों में सजा कर उससे मिलने जाने वाला था।

))X((43))X((

धवल सेठ कुमकुमद्वीप के राजा के दरबार में पहुँचा, तो सहमदम रह गया। राजा के दरबार में श्रीपाल सज-धज कर बैठा हुआ था।

धवल सेठ ने राजा को जुहार की और हीरे-पन्नों के भरे हुए स्वर्ण थाल भेंट में दिये। भेंट पाकर राजा खुश हुआ और श्रीपाल से कहने लगा। "कुँवर जी, सेठ को पान का बीड़ा दीजिए।"

"अच्छा महाराज," श्रीपाल ने कहा और पान का बीड़ा सेठ की ओर बढ़ाया। धवल सेठ ने श्रीपाल से कहा- "कुँवर जी, बीड़ा आपको अपने हाथ से खिलाना पड़ेगा।"

"लो सेठ जी, मेरे हाथ से ही बीड़ा खाओ।" श्रीपाल कह कर हँसा। श्रीपाल के हाथ से पान खाकर धवल सेठ ने कहा- "श्रीपाल

तुम यहाँ कैसे आये? तुम तो समुद्र में गिर पड़े थे।"

"सेठ जी, जिन्दगी और मौत इन दोनों को आदीश्वर ने अपने अधिकार में रखा हुआ है। मुझे समुद्र में गिराने वाले ने शायद मेरी तकदीर को नहीं देखा था। यहाँ आते ही मुझे तीन-तीन खूबसूरत रानियाँ मिली है ओर एक ऐसा किला कन्यादान में मिला है, जो तीनों देशों की सरहदों पर बना है, जिसमें करोड़ों सैनिक विश्राम कर सकते है। मै इस किले में अपनी फौजें इकट्ठी कर रहा हूँ और समस्त पृथ्वी पर दिग्विजय घोड़ा छोड़ने वाला हूँ।"

"बड़ी खुशी की बात है श्रीपाल पुत्र, पर तुम्हें मुझसे झूठ नहीं कहना था कि मै राजपुत्र हूँ।"

श्रीपाल हँस कर बोला- "तो क्या मै तुम्हें भांड पुत्र नज़र आता हूँ?"

"कुँवर साहब, आपने मेरे मुँह की बात छीन ली। मै पिछले टापू आगुफारे से एक भांड परिवार को अपने जहाज पर बैठा कर लाया हूँ, जिसका कहना है कि श्रीपाल उनका खोया हुआ पुत्र है। वे लोग तुमसे अपना तरह-तरह का नाता बतलाते है। हो सकता है वे झूठ कहते हों।" सेठ ने कहा और अपने मंत्री के साथ राजा और श्रीपाल को उलझन में छोड़ कर चलता बना।

"क्या कर्मों का खेल अभी अधूरा है।" श्रीपाल सोच रहा था। राजा भूमण्डल को जब दुभाषिये ने उनकी वार्तालाप बतलायी तो वह सोचने लगा कि श्रीपाल ने अपने को कोटिभट वंश का राजपुत्र कह कर उसे ठग लिया है।

"यह तो भांड पुत्र है, जब राजा लोग सुनेंगे तो उसके मुँह पर थूकेंगे। वह तो बिरादरी में नकटा हो गया है। उसके पड़ौसी मित्रों ने भी तो उसके विश्वास पर अपनी-अपनी कन्याओं को श्रीपाल से इसलिए ब्याहा था, क्योंकि वह उच्चकुल का एक बलशाली राजा है, जो शीघ्र ही सारे संसार का विजेता बनेगा।"

"पर यह भांड पुत्र क्या संसार विजेता बनेगा? जादू टोने से समुद्र पार करके एक राक्षस को बौना बना देना क्या एक चक्रवर्ती राजा बनने जैसा है?"

"वह श्रीपाल से अभी पूछेगा। सेठ के जहाजों से भांडों को बुला कर तसदीक करेगा और अगर यह सत्य है, तो श्रीपाल को ऐसा

दंड देगा, जो भविष्य में कोई नीच आदमी राजाओं के मान-सम्मान को कीचड़ में डालने की जुर्रत ना कर सके।" भूमण्डल सोचता रहा और अपने दिल में क्रोध इक्ट्ठा करता रहा।

भूमण्डल को अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। कुछ देर में दरबार में भांड अखाड़ा आ गया और नाच शुरू हो गया। भांड अखाड़ा धवल सेठ के द्वारा उसको फँसाने के लिए आया है। श्रीपाल यह सोच कर मन ही मन हँसा और चुपचाप कर्मों का करिश्मा देखने लगा। भांड अखाड़े में बीसों दिलकश कमउम्री हसीन औरतें थी, जो कपड़े पहने हुए भी अर्धनग्न नज़र आ रही थी। राजा के दरबारी उनके नंगे जिस्मों को घूरते ओर होठों पर अपनी जीभ को फिराते, फिर अपनी इस बेशर्मी और बदनियती को छिपाने के लिए उनके दिलकश नाच की चुटकी बजा-बजा कर तारीफ करते और उन पर अशर्फियों की वर्षा करने लगते।

नाच-गाना चलता रहा। राजा भूमण्डल उन खूबसूरत तितलियों के नाच में दिलचस्पी ले रहा था।

नाच-गाने के बाद उन्होंने मदारियों के कई खेलों-करिश्मों को भी दिखलाया। जैसे मुरादाबादी लोटे से लगातार पानी निकालते रहना, लट्टू को रस्सी पर छोड़ कर दौड़ाना-रोकना, खुले आकाश में रस्सा चढ़ाना, पतली-सी रस्सी पर लड़कियों का नचाना, उनके मुख्य खेल थे। ताश के बावन पत्तों के सभी गुलाम, बेगम, बादशाहों को बुला-बुला कर दर्शकों के सामने पेश करना। देख कर सभी दरबारी मंत्रमुग्ध हो गये थे। ऐसे-ऐसे खेलों को देखता-देखता स्वयं श्रीपाल आनन्दित था और कर्मों के होने वाले खेल से अनभिज्ञ था।

"कुँवर श्रीपाल इन्हें इनाम देकर रुख़सत करो।" राजा ने उनके खेलों का कार्यक्रम पूरा हो जाने पर कहा। राजा की आज्ञा पाते ही श्रीपाल अशर्फियों की थैली लेकर सिंहासन से नीचे आया।

श्रीपाल नीचे आया और भांडों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। एक बूढ़ी स्त्री आगे बढ़ी और अपनी कमजोर बाँहों में श्रीपाल को भरने लगी।

"क्या करती हो माई?" श्रीपाल हकलाया।

"मै तेरी दादी हूँ श्रीपाल, क्या तुम मुझे नहीं पहचानते हो?" कह कर वह रोने लगी।

"भागो रो मत, यह हमें नही पहचानता तो मत पहचानने दो।" एक बूढ़े ने आगे बढ़ कर कहा- "दादा दादी को बुढ़ापे में पहचान लेगा तो सेवा करनी पड़ेगी।"

"श्रीपाल क्या तू मुझे भी भूल गया?" एक अधेड़ स्त्री ने कहा- "मै तो तेरी माँ हूँ। मैने तो तुझे अपनी कोख से जन्म दिया है।"

हैरान-सा श्रीपाल चुप था, मानो उसे काठ मार गया हो।

वह अधेड़ स्त्री आगे बढ़ी... और आगे, और फिर रोकर श्रीपाल के गले से लिपट गयी। श्रीपाल मुझे मत भूल श्रीपाल। गोबरधन भी मर गया है। तेरे पिताश्री पहले ही मर चुके थे। अब मेरा तू ही सहारा है। जब से तू समुद्र में गिरा है, मै पागलों की तरह तुझे तलाश करती फिर रही हूँ। मुझे रोटी-पानी कुछ अच्छा नही लगता, चलो घर चलो। अब मे तुझे यहाँ नही छोड़ूँगी और अपने साथ ले चलूँगी। वह कह रही थी और श्रीपाल के गले लग कर रो भी रही थी।

"भैया, चलो, चलो ना भैया। क्यों चाची को रुला-रुला कर मारे जाते हो।" एक साथ चार-चार सुन्दर लड़कियाँ आकर श्रीपाल से फरियाद करने लगी।

"यह निर्दयी है। तभी तो चाची को छोड़ आया," एक भांड लड़का गुर्राया- "यह अब हमारा नहीं रहा, राजा का जमाता जो बन गया है। अब राजपाट करे है, अरे अब हमें काहे पहचानेगा, हमें पहचानेगा तो क्या नाचना गाना नहीं पड़ेगा?"

"नही ऐसा नहीं हो सकता।" एक खूबसूरत स्त्री कहते हुए आगे आई। उसकी गोद में एक नन्ही लड़की भी थी।

"मुझे तो तुम भूल गये होंगे। लो अपनी निशानी को तो पहचान लो, यह तो तुम्हारा अपना खून है।"

हमें पहचान कर तुम करोगे भी क्या? तुम्हारी पोल-पट्टी खुलेगी। राजा तुम्हें यहाँ से निकाल देगा और फिर तुम्हें हमारे साथ गली-गली नाचना गाना पड़ेगा।"

"भैया चलो, भैया।" एक लड़की श्रीपाल को अपनी ओर खींचने लगी।

"आओ अब गुस्सा छोड़ो श्रीपाल, अपनों से रूठना बुरी बात है।" एक दो भांडों ने मानों सुलह की तुरप मारी।

"ओय सजनवां, तोहे खाय जाय राम जी। हमरे पास से जाय

कर हमारी जोड़ी ही बिगाड़ देई, खूब नाचत है, पर तेरे बिना घुंघरू की वो आवाज नहीं आवत है, जो तेरे साथ नाचने में आती थी। आये अब काहे दीदे मटकाय रहे हो, चलो फटाफट, इधर-उधर क्या देखत हो?" नाचने वाली लड़कियों ने कहा और श्रीपाल को मिल-जुल कर खैचने लगी।

श्रीपाल कर्मों के इस खेल को खेले जाने वाले नाटक की तरह चुपचाप देखता रहा। कभी-कभी विवश होकर वह राजा भूमण्डल को भी देखने लगता था। राजा भूमण्डल ने अच्छी तरह समझ लिया था कि यह भांड परिवार श्रीपाल का अपना परिवार है और अपना राज खुल जाने से वह खामोश है और डरा हुआ है।

एक भांड पुत्र ने उसकी बेटी से विवाह करके उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिला दी, यह सोच कर राजा भूमण्डल ने सैनिकों को आदेश दिया। "श्रीपाल को बंदी बना लो।" राजा के कहने की देर थी, सैनिकों ने श्रीपाल के हाथों में हथकड़ी पहना दी।

))((44))((

"गुणमाला, गुणमाला बेटी!" बांदी ने हाँफते हुए आवाज़ दी- "जल्दी आओ बेटी, एक बुरी खबर है।"

"अम्मा क्या बुरी खबर है?" गुणमाला ने डर कर पूछा।

"तुम्हारा स्वामी, तुम्हारे पिता ने बंदी बना लिया है और उसे सूली देने के लिए ले जाया जा रहा है।"

"क्या?" गुणमाला ने कहा। उसका दिल धक् से रह गया। उसने बांदी से पूछा- "स्वामी को किसलिए बंदी बनाया गया है?"

"मुझे नही मालूम, मैने तो उन्हें सैनिकों के साथ हथकड़ी पहने हुए जाते देखा था।"

"मै अभी स्वामी से मुलाकात करती हूँ।" गुणमाला कह कर अपने घोड़े पर चढ़ी और सीधी कारागृह पहुँची, जहाँ श्रीपाल बंदी बना हुआ खड़ा था।

"स्वामी," गुणमाला ने कहा और रो पड़ी।

"रोओ मत गुणमाला! अशुभ कर्मों का उदय है, जो होना है होने दो।"

"आपको बंदी क्यों बनाया गया है? गुणमाला जानना चाहती है, क्या आपने कोई अपराध किया है?"

"गुणमाला अगर मै उत्तर न देना चाहूँ तो"- श्रीपाल कह कर हँस दिया।

"आप नहीं बोलोगे तो मै यही आपके सामने आत्महत्या कर लूँगी।" गुणमाला ने चेतावनी दी- "मै तो पतिव्रता नारी हूँ। स्वामी को अपने सामने कैसे मरने दूँगी?"

गुणमाला का अपने प्रति अथाह प्रेम देख कर श्रीपाल ने यों कहा- "अशुभ कर्मों से एक परिचित सेठ दरबार में आकर मुझे भांड-पुत्र कह गया। इसके बाद भांडों का दल आया और मुझे अपना कहने लगे। तुम्हारे पिता राजा नाराज हो गये और मुझे कैद करके यहाँ भेज दिया है। सुना है मुझे फाँसी दी जाने वाली है।"

"नही, मुझे पता है आप भांड पुत्र नही है। कह दो स्वामी, आप भांड-पुत्र नही है।" गुणमाला ने कहा- "अगर नहीं कहोगे तो मै अपनी जान खो दूँगी।

"पर मेरे ऐसा कह देने से तुम्हारे पिता मान थोड़े ही जायेंगे।"

"फिर मै क्या करूँ?" गुणमाला ने पूछा- "पिताश्री को हम कैसे राजी करें?"

"मुझे मर जाने दो गुणमाला। मै कर्मों से थक गया हूँ, हार गया हूँ। बस आराम से सुख की नीद सो जाना चाहता हूँ। ऐसी नीद जो मर जाने के बाद ही आती है।"

"नही स्वामी! बदनामी का हार पहना कर मै तुम्हें ऐसे नही मरने दूँगी। मै तुमसे पहले जान दे दूँगी। शायद तुम्हें नही मालूम, मै माँ बनने वाली हूँ। "गुणमाला" श्रीपाल ने सिर्फ़ इना कहा।

"मुझे रास्ता दिखलाओ स्वामी। सत्य को कसौटी पर आने दो। हमेशा धर्म की जीत होती है।"

"यह तो मुझे भी पता है, पर कभी-कभी जीवन से हम समझौता भी कर लेते है। गुणमाला हम सच्ची बात कहने से मुकर जाते है। अपने बल को भूल जाते है और मामूली से आदमी द्वारा पकड़ लिए जाते है।" उसका इशारा शायद अपनी ओर ही था।

"स्वामी दार्शनिक जैसी बाते न करो, वक्त बहुत कम है। आपको सूली देने का समय नियत हो चुका है। मुझे मेरा रास्ता दिखला

दो। मै सत्य और असत्य को अलग-अलग करके देखना चाहती हूँ।"

"जाओ, फिर तुम अपने द्वीप के बंदरगाह पर पहुँचो। वहाँ धवल सेठ के पाँच सौ जहाज खड़े है। उन जहाजों में हंसद्वीप की राजकुमारी का भी जहाज है, जिसका नाम रैनमंजूषा है, वह तुम्हें सब बातें बता देगी। मेरी बातें, अपनी बातें, कर्मों की बातें और धर्म की बातें।"

"मेरे लौटकर आने तक तुम मेरे स्वामी को राज आज्ञा होने पर भी सूली ना देना।" यह कह कर गुणमाला अपने घोड़े पर चढ़ी और बंदरगाह की ओर दौड़ी। वह घोड़े को चाबुक पर चाबुक मार रही थी। घोड़ा चाबुकों की मार खाकर मानो हवा हो गया था। वह लम्हों में ही बंदरगाह पर खड़े जहाजी बेड़े में जा पहुँची और रैनमंजूषा का नाम लेकर पुकारने लगी-

"रैनमंजूषा, बहन रैनमंजूषा!"

"कहीं हो तो बोलो रैनमंजूषा, बहन रैनमंजूषा।" गुणमाला आवाज़ लगा रही थी।

रैनमंजूषा ने आवाज़ सुनी और जहाज की रेलिंग पकड़ कर द्वीप की ओर देखने लगी। उसने देखा एक खूबसूरत तरुणी घोड़े पर बैठी हुई उसे पुकारे जा रही है।

"अब इस दुखिया को उसका नाम लेकर पुकारने यहाँ कौन औरत आई है।" रैनमंजूषा ने सोचा- "जरूर यह भी मेरी तरह कोई दुखियारी रही होगी।"

वह जहाज से उतर कर उसके पास आई और बोली- "मेरा नाम ही रैनमंजूषा है।"

"आप श्रीपाल को जानती हो?" गुणमाला ने उससे पूछा।

"हाँ, रैनमंजूषा ने हाँ की।"

"आप हंसद्वीप की राजकुमारी हो?" गुणमाला ने कहा- "प्रणाम बहिन, मै इस देश के राजा की पुत्री और श्रीपाल की अर्धांगिनी हूँ और श्रीपाल की जात पूछने आई हूँ।"

रैनमंजूषा ने कहा- "सूरज की जात पूछ लो या चंदा की, पर अंगदेश की चम्पानगरी के कोटिभट वंश की क्या जात पूछोगी? कोटिभट राजाओं की तलवार तो दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। मेरे अकेल कुँवर जी निहत्थे होते हुए भी लाखों-करोड़ों को क्षण-भर में मार सकते है। जिन

खूबसूरत मकानों को तुमने मेहनत और बहुत से लोगों के सहयोग से बनाया है, उन्हें मेरे कुँवर जी खिलौनों की तरह उठा-उठाकर समुद्र में फेंक कर तुम्हारा सारा राजपाट चौपट कर सकते है।"

"पर रानी वे ही बलशाली कुँवर जी कर्मों की मर्जी से मेरे पिता के कैदी है, मेरे राजा पिता उन्हें आज ही फाँसी देने वाले है।"

"नहीं, नही यह नही हो सकता। मै अपने कुँवर जी को फाँसी नही होने दूँगी। मै तुम्हारे पिता को श्राप देती हूँ। मै सती हूँ, जो मेरे कुँवर जी को सतायेगा, वह अंधा बनेगा। सतियों के श्राप से मानव क्या सागर और पर्वत भी धूल में मिल जाते है।"

"मेरी बहन, श्रीपाल को कैदी बनाने में भांडों का हाथ है। पिता दोषी तो है, पर वे तुम्हारे कुँवर जी को भांड-पुत्र के रूप में ही जानते है। अगर तुम चाहो तो मेरे पिता से मिल कर हर सच्चे पहलू को पेश कर सकती हो। गुणमाला बोली- "चलो मेरे साथ राजदरबार मे चलो।"

"नही बेटी, मेरी बेटी जहाज छोड़ कर कही नही जाएगी।" अचानक पीछे शंकर आचार्य ने आकर कहा- "मै तुम्हें इस दर्पण में दिखलाता हूँ, लो बेटी गुणमाला कर्मों के पुण्यो को अपनी आँखों से उदय होते हुए देख लो।" यह कह कर आचार्य ने अपने हाथ को गुणमाला के सामने कर दिया।

गुणमाला ने कर्मों का दर्पण देखा। उसके राज्य की इमारतें, चौड़ी सड़कें, राजमार्ग पर बने राजप्रसाद, कोर्ट-कचहरी, सरकारी दफ्तर, दुकानें, फैक्ट्री और चौपड़ बाजार, लोग आ जा रहे है, दौड़ रहे है, हँस रहे है, लड़-झगड़ रहे है।

"यह तुम्हारा गुप्त महल का दृश्य है?" आचार्य ने कहा। गुप्त महल का दृश्य वैसा ही था जैसा उसे पता है और सिर्फ़ इससे राज परिवार ही वाकिफ था, पर आचार्य है कि उसके इस गुप्त महल को अपने हाथ के छोटे से दर्पण में खुलेआम सार्वजनिक-स्थल पर दिखलाये जाते थे।

"मेरे कुँवर जी को ढूँढो।" रैनमंजूषा ने आचार्य से आग्रह किया। वह कह रही थी- "न जाने कुँवर जी पर क्या बीत रही होगी?"

"बेटी हर अँधेरी रात अस्त होने पर पुण्य का सूर्य उदय होता

है। लो कुँवर जी को देखो।" आचार्य ने कहा।

श्रीपाल दर्पण में खड़े हँस रहे थे। फाँसी के तख़्ते पर खड़े हुए श्रीपाल के गले में रस्सी का फंदा सुगन्धित फूलों की माला के रूप मे बदल गया था। जल्लाद और सैनिक घबरा कर राजा से सम्पर्क करने में लगे थे। दर्पण को आचार्य तेज दौड़ने के लिए कहते है फिर राजमहल का दृश्य नज़र आने लगता है। राजा भूमण्डल आँखों पर हाथ रखे हुए चीखते-चिल्लाते नज़र आते है।

महाराज अंधे हो चुके है। आचार्य ने कहा और दर्पणरूपी हाथ नीचे कर लिया। वे कह रहे थे- "यह सती का श्राप है। गुणमाला, जो राजा बिना निर्णय किये आवेश में आकर अन्याय भरे आदेश देते है, उनको कर्म ऐसी ही सजा देते हैं। अब महाराजा कभी नहीं देख सकेंगे? उसने एक ऐसी सती का श्राप पाया है, जो अपने शील पर दृढ़ जैन धर्म की एक सच्ची उपासक है। अच्छी तरह देख लो, तुम्हारे पास ही तो खड़ी है।

"आचार्य, आप तो आदिनाथ भगवान के स्वरूप है।" गुणमाला कह कर रोते हुए आचार्य के चरणों में बिखर गयी।

"रो मत बेटी, तेरे पिता को ज्ञान का प्रकाश देने के लिए मै तुम्हारे साथ चलूँगा। अश्व की सवारी छोड़ कर मेरे साथ पैदल चलो।"

गुणमाला ने अपने घोड़े को खाली लौटा दिया और जूते उतार कर आचार्य के साथ पैदल चल पड़ी। आचार्य के साथ उसका मुनि दल भी था। गुणमाला की प्रार्थना पर रैनमंजूषा को भी आचार्य ने साथ ले लिया था।

आचार्य अपने मुनि दल के साथ जिस रास्ते से गुजरते, नर-नारी नतमस्तक हो जाते। कुछ देर बाद आचार्य राजा के अतिथि गृह में पहुँच गये।

राजा ने आचार्य और उनके मुनियों के लिए स्वर्ण जड़ित तख्त डलवाये, पर आचार्य अपने मुनि दल के साथ ज़मीन पर आसन ग्रहण करके बैठ गये। अंधा राजा बिसुरता हुआ आया और आचार्य के दर्शन पाकर भी आचार्य और मुनि दल को न देख सका, वह सिर्फ़ सुनता रहा और दुखी होता रहा। श्रीपाल भांड पुत्र नहीं है और गले की रस्सी फूलों का हार बन कर गयी है, यह जान कर वह अपनी करनी पर बहुत पछताया कि बेकार में ही उसने श्रीपाल को कष्ट दिया और बंदी

बनाया। अपनी ओर से एक माफी नामा लिखवा कर अंधे राजा ने श्रीपाल के पास भेजा और उसे रिहा करने का आदेश दिया।

गुमसुम-सा श्रीपाल कारावास से सीधा ही अपने किले में चला गया। राजा ने श्रीपाल को नहीं रोका, उसकी ऐसा करने की हिम्मत भी नहीं थी और वह किस मुँह से श्रीपाल को रोक लेता, उसने तो श्रीपाल की सरे बाजार रुसवाई (बदनामी) की थी पर हाँ, जिस धवल सेठ ने और भांडों ने उसको गुमराह किया था, वे बिना देरी के पकड़ कर कारावास भेज दिये गये। सेठ का धन और पाँच सौ जहाज सब जब्त कर लिए गए। सारी रात आचार्य अपने मुनियों के साथ राजा को उपदेश देते रहे और सुबह होते ही एक अनजाने पथ पर निकल पड़े। वे अब धवल सेठ पर निर्भर रहना नहीं चाहते थे।

गुणमाला ने रैनमंजूषा को चित्ररेखा और विलासमती से भी मिलवाया, फिर चारों इकट्ठा होकर किले में पहुँची। श्रीपाल उस समय अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी कर रहा था। एक छोटा-सा यज्ञ वहाँ चल रहा था, जिसमें आहुति देने के लिए कई ब्राह्मण लगे हुए थे। रैनमंजूषा ने यज्ञ में व्यस्त बैठे श्रीपाल को दूर से ही पहचान लिया। श्रीपाल ने रैनमंजूषा को देखते ही उठ कर उसकी ओर आना चाहा, पर रैनमंजूषा ने यज्ञ को पूरा करके आने को कहा। श्रीपाल यज्ञ को पूरा करने में लगा रहा। कुछ देर बाद अश्वमेघ (घोड़े) को अनेकानेक अलंकारों से सुसज्जित करके छोड़ दिया गया। यज्ञ सम्पूर्ण हो गया था। श्रीपाल रैनमंजूषा की ओर दौड़ा।

"प्राणेश्वरी," श्रीपाल ने यह कह कर अपनी बाहें फैला दीं।

"कुँवर जी," रैनमंजूषा ने कहा और अपने कुँवर जी की बाहों में जा समाई। वह अपने कुँवर जी के कंधे से लगी तड़फ और सिसक रही थी। वह बहुत देर तक सिसकती रही और धवल सेठ द्वारा की गई जोर जबरदस्ती की बात भी कहती रही, फिर यह भी बतलाया कि उसके दोनों हाथ पंगु हो गये हैं।

श्रीपाल कर्मों की इन घटनाओं पर आँखों में गुस्सा ले आया। वह बोला- "मुझे पता नहीं था कि धवल सेठ अपने हाथों को गले में पड़े शाल में क्यों ढांपे हुए है? उसने राजा द्वारा पाया पान भी मेरे हाथों से खाया था। सभी के सामने वह मुझे भांड पुत्र कह रहा था और उसने मुझे अपमानित करने के लिए भांडों को सिखा-पढ़ा कर भी

भेजा। वे सरेआम मुझसे रिश्ता कायम कर रहे थे और मुझे कैद करवा कर नौ दो ग्यारह हो गये थे।"

"पाप कर्म नष्ट हो चुके है कुँवर जी, देखो आपकी दासी आपसे आ मिली है।" फिर वे गुणमाला, चित्ररेखा और विलासमती के बारे में पूछने लगी?- "क्या इन सबसे प्यार करते हो या इनके पिताओं का यह विशाल किला और सेना पाने के कारण प्रेम का ढोंग किए जाते हो?"

"वाह कितनी बढ़िया बात कही है। श्रीपाल ने रैनमंजूषा की बातों को सहारा।"

"आपको बंदी बना लेने से मेरा श्राप पाकर राजा नेत्रहीन हो गया। दुष्ट धवल सेठ और सभी भांड राजा की हिरासत में है। कल उनका निर्णय होगा, चलोगे?" रैनमंजूषा ने पूछा।

"चलूँगा।" श्रीपाल ने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

"आज प्यार की बातें होंगी। पूरी रात्रि को अपनी चारों रानियों में बाँट लो।" रैनमंजूषा ने मचलते हुए अपने कुँवर जी से कहा।

"पर मुझे दिग्विजय पर छोड़े गये अश्वमेघ की सुरक्षा के दायित्व का ख़्याल भी तो करना है और सैनिक भी अभी नये है। प्रशिक्षण आज से ही जारी रखना चाहता हूँ।"

"ठीक है, अगर आप सेना की ही बात सोचते है, तो हम चारों को भी अपनी सेना में भर्ती कर लो।" रैनमंजूषा ने कहा और श्रीपाल ने हँस कर रैना और दूसरी रानियों को बाहों में भर लिया।

))X(45)X((

प्रातः होने पर श्रीपाल राजा भूमण्डल से मिला, जो अपने स्वर्ण सिंहासन पर अंधा हुआ बैठा था।

श्रीपाल ने आगे बढ़ कर राजा के चरण छुये तो राजा रोने लगा।

"पिताश्री, जो गुज़र गया उसे याद न करो, आओ गिले-शिकवे भुला दो। मुझे आपसे सहानुभूति है। आप मेरी पूर्व पत्नी के श्राप से नेत्र खो बैठे है।"

"नही, यह श्राप की बात मेरी समझ में नही आती। कर्मों की

इस लीला को तो होना ही था। मै धर्म छोड़ कर बिना निर्णय लिए अपनों पर ही जुल्म कर बैठा था। जिन लोगों ने मुझे बहकाया, वे सब मेरी कैद में है और आज वे फाँसी पाने वाले है।"

श्रीपाल ने इस पर यों कहा- "पिताश्री आपने हर बात को सही तरीके से सोचा, जाँचा-परखा होता तो शायद यह नौबत नहीं आती। शास्त्रों में साफ लिखा है कि क्षत्रिय पुत्र ही समुद्रों को पार करते है। भांड पुत्रों का काम सिर्फ़ गाना-बजाना है। वे समुद्र में तैरना या भयंकर युद्ध करना क्या जाने? क्या आप भस्मासुर का और मेरा युद्ध भूल गये थे। मजबूत किले के द्वार को गिराने में क्या मेरा बाहुबल नहीं था। शक्ति तो उस समय राक्षस को यह बताने गई थी कि चल उठ खड़ा हो, तुझसे युद्ध करने एक राजकुमार आया है। यह माना कि विद्या ने मेरा शरीर बढ़ाया था, पर राक्षस द्वारा किये जा रहे प्रहार क्या मैंने नही झेले थे। राक्षस ने तलवार से मेरे शरीर को काटना चाहा, तो क्या तलवार टूट कर पृथ्वी पर नहीं जा गिरी थी। मै तो अपने कर्मों और आपके न्याय पर मन ही मन हँस रहा था। भस्मासुर को पराजित करने और उसके पड़ोसी देशों को राहत देने वाला एक भांड पुत्र है, यह सोच कर आपने अपनी बुद्धि के साथ भी मजाक किया है। नाचने गाने वाले भांड पुत्र क्या निहत्थे ऐसे लड़ते सुने गये है। न्याय करते समय क्या आपको अपने न्यायाधीशों से सलाह मशवरा नहीं करना था। बिना सोचे समझे एक निर्दोष को आप फाँसी की सजा सुनाने में नहीं हिचके थे, जो कि आपका जमाता था। आपकी पुत्री का सुहाग था, आपके आने वाले नवासे का पिता था। आदरणीय पिताश्री क्या आपको पता है कि मेरी प्रतीक्षा में कोई एक-एक दिन गिन रहा होगा। मेरी माँ की सुनी आँखें दरिया से गुज़रते हुए हर जहाज पर टिकी होगी और मेरे छोटे-छोटे पुत्र अपनी तोतली आवाज़ में तुतला-तुतला कर मुझे पुकारते रहे होंगे। उनकी नन्ही-नन्ही आँखों मे न जाने कैसी चाहत रही होगी? ऐसी चाहत को मिटाना शास्त्रों में महा पाप लिखा है, जिसके आप भागीदार हो गये है।"

अन्धा राजा श्रीपाल की बातें सुन-सुन कर रोता रहा और कराहता भी रहा। इसी बीच सेनापति बंदी भांडों को और धवल सेठ को लेकर आया। जिन्हें श्रीपाल ने राजा से प्रार्थना करके बरी करा दिया। राजा सहमत नहीं था, उसे अपराधियों को इस तरह निर्दोषों की

तरह छोड़ना न्यायसंगत नहीं लगा, पर दया प्रवृत्ति का श्रीपाल अपने कर्मों को दोष देता रहा और इसी जिद पर अड़ा रहा कि ये लोग कर्मों के हाथों विवश थे, इन्होंने जो कुछ किया है, मेरे कर्मों के कहने पर किया है।

हार कर राजा ने श्रीपाल की बात मान ली। भांडों और धवल सेठ को छोड़ दिया गया। धवल सेठ को उसके माल भरे जहाज भी लौटा दिये गये। बंधन मुक्त होते ही भांडों का सारा काफ़िला रोकर श्रीपाल के चरणों में गिर पड़ा। श्रीपाल ने उन्हें सात्वना और स्वर्ण दोनों ही दिये। वे खुशी-खुशी अपने घर लौट गये। अब श्रीपाल के सामने धवल सेठ खड़ा था, जो ग्लानि और अपमान से पृथ्वी में धँसा जाता था। क्या उस जैसा पापी, माफी पाने योग्य है? वह सोचता रहा और दर्द से परेशान होता रहा। धवल सेठ सोच रहा था वह पाप कर्मों में अंधा होकर धर्म को और धर्म पुत्र श्रीपाल दोनों को ही भूल गया था। काश, वह श्रीपाल को अपना धर्म पुत्र बनाये रखता, तो दुनिया में उसका नाम भी रोशन हो जाता और अब वह धर्मपुत्री सती रैनमंजूषा पर पाप दृष्टि डाल कर ऐसे पाप को सर पर लिए हुए है, जो उसका सात जन्मों तक भी पीछा नहीं छोड़ेगा। यह ख़्याल रह-रह कर उसे पीड़ित करता रहा। उसके हाथ तो पहले ही निष्प्राण हो गये थे और सारे जमाने को उसके पाप का पता चलेगा यह सोच कर उसे ऐसा दिली आघात लगा कि वह दर्द से बिलबिलाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। श्रीपाल धवल सेठ की ओर लपका, पर वह लम्हों में ही छाती फट कर मर गया। श्रीपाल उसका शव लेकर कमला सेठानी के पास गया और धवल सेठ का दाह संस्कार अपने हाथों से करके सेठानी से यों बोला।

"मातेश्वरी", पिता अब नहीं है। पुत्र को आज्ञा दो, अगर आप पुत्र से आकाश के सभी तारे तोड़ लाने को कहेंगी, तो भी पुत्र आकाश को खाली करके सभी तारों को लिए हुए लौटेगा।

"पुत्र तुम आयुष्मान रहो और समस्त पृथ्वी पर चक्रवती राजा बन कर राज करो, मेरी तो यही तमन्ना है।"

"मातेश्वरी, क्या पुत्र को सेवा का अवसर नहीं दोगी? मैं चाहता हूँ आप मेरे पास चल कर रहो।"

कमला हँसी- "बोली पुत्र तुम्हारा ऋण नहीं चुका पाऊँगी, ऐसे पुत्र को पाकर कौन माँ धन्य नहीं होगी, जो दिल में दया का अपार

भण्डार लिए हुए है।"

"माँ, श्रीपाल ने ममता का शब्द नन्हा-सा कर दिया। क्या मुझे बाहों में लेकर प्यार नहीं करोगी?"

"हाँ, यह तो मै भूल ही गयी थी।" कमला ने कह कर श्रीपाल को बाहों में भर लिया। फिर वह श्रीपाल की आज्ञा लेकर अपने पाँच सौ जहाजों के साथ अपने देश कौशाम्भी लौट गयी। उसके जहाज के कुछ महाजन और बहुत से सैनिक श्रीपाल के किले में जाकर बस गये थे। श्रीपाल धीरे-धीरे अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाने में लगा रहा। गुणमाला एक पुत्र की माँ बन गई थी। चित्रा, विला और रैनमंजूषा भी प्रसव के करीब थीं। मुनि महाराज ने उन तीनों को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया था। "क्या मुझे एक बेटी भी प्राप्त नहीं होगी?" श्रीपाल सोचा करता और कुढ़ा करता। पर एक रोज पुष्पक विमान में बैठ कर सुप्रिया आ गयी। वह सुप्रिया, जो समुद्र के देवता की बेटी थी और उसके साथ कई रात समुद्र में रही थी। आते ही सुप्रिया ने श्रीपाल की ओर एक नन्हा-सा शिशु बढ़ा दिया।

"यह मेरा बेटा है।" श्रीपाल ने सुप्रिया से पूछा।

"हाँ, बहुत रोता है। इसके रोने को सुन कर मै परेशान हो जाती हूँ। रखो इसे, मैं चली," यों कह कर सुप्रिया जाने लगी।

"तुम जा रही हो?" श्रीपाल ने सुप्रिया से पूछा।

"हाँ, मै निर्मोही लोगों से बात नही करती।" वह शायद नाराज़ थी।

"क्या इनसे नहीं मिलोगी?" श्रीपाल ने अपनी रानियों की ओर इशारा किया।

हँसी सुप्रिया, फिर बोली- "ये तो राजपुत्रियाँ है। मै एक गरीब बाप की बेटी हूँ। तुम्हारी पत्नी जरूर हूँ, पर शादी में न बैंड बाजे बजे है और न मै सोना लाई हूँ।" कहते हुए वह आँखें भर लायी।

"सुप्रिया तेरा सारा बदन ही सोना है।" श्रीपाल ने हँस कर कहा, फिर अचानक ही चौंक कर बोला।

"अरे, इनको तो मै भूल ही गया। ये कौन है?" उसका इशारा सुप्रिया के साथ खड़ी एक खूबसूरत तरुणी की ओर था, जो गोद में एक नन्ही-सी बेटी लिए हुए थी।

"मेरी सखी है।" सुप्रिया ने कहा।

"क्या यह भी समुद्रवासी है?" श्रीपाल ने पूछा।

"नहीं, सहसपट्टन के राजा वज्रसेन, जो मेरे पिता के दोस्त है, उनकी बेटी है। इसका नाम शृंगारगौरी है। मुझे अपने पुष्पक विमान से आपके पास छोड़ने आई है।"

"तुम्हारी सखी की बेटी बहुत सुन्दर है।" श्रीपाल ने शृंगारगौरी की गोदी में बैठी नन्ही लड़की को देख कर कहा और उसको अपने हाथों में लेकर खिलाने लगा।

"सुन्दर तो है, पर है बड़ी बदनसीब।" सुप्रिया बोली- शृंगारगौरी विद्याधर राजा को ब्याही थी, जो कालगति को प्राप्त हो गया और नन्ही नकसा बिना बाप की रह गयी।"

"नहीं, मै बिना बाप की नही हूँ।" नन्ही नकसा ने कहा।

श्रीपाल ने नन्ही नकसा को सर उठा कर देखा।

"मै सच कहती हूँ, मेरे पिता है।"

"कहाँ है?" श्रीपाल पूछने लगा।

"सुप्रिया आंटी कहती है, आप ही मेरे पिता है। अब बोलो क्या आप मेरे पिता नहीं है?"

श्रीपाल को उस नन्ही नकसा पर अनजाना प्यार आ रहा था, उसने नकसा से कहा- "यह तो सुप्रिया आंटी कहती है और माँ क्या कहती है? जरा पूछो तो"- श्रीपाल धीरे से बोला।

"माँ, मेरे पिताश्री क्या पूछ रहे है? जवाब दो ना," नन्ही नकसा मचल कर बोली।

क्या जवाब दे शृंगारगौरी, बस शर्म से सर झुकाये खडी रही। श्रीपाल को देखते ही वह अपना चंचल मन खो बैठी थी।

46

"माँ, पिताश्री से नाराज हो? आप बोलती क्यों नही है?" नकसा का स्वर दुखी होने लगा।

नारी लाज और पति की यादों से पीड़ित शृंगारगौरी कुछ कह न सकी। वह आगे बढ़ी और श्रीपाल के हाथों से नकसा को लेने लगी।

आपने नकसा की बात का जवाब नही दिया।

"नकसा की बात का जवाब मेरे पास नहीं है। मै अपने सौभाग्य को भूल नही पायी हूँ? जिसने मुझसे बेपनाह मोहब्बत की थी।"

"गौरी, अच्छे आदमी याद आते है, मुझे मालूम है पर तुमने नकसा के सवाल के लिए भी तो कुछ सोचा होगा?"

"हाँ, सोचा है। मै अपने चाहने वाले और नकसा को प्यार करने वाले से कह दूँगी, जो मेरे पास था, वह मै नकसा के पिता को दे आई हूँ।"

"गौरी, शायद तुमने मुझे रानियों को गोदाम में अनाज की बोरियों की तरह भरने वाला कोई राजा समझा होगा, पर मै अपनी छः रानियों से ही संतुष्ट हूँ और पत्नी व्रत ले चुका हूँ, पर न जाने क्यों मुझे नकसा ने मोह लिया है।"

"नकसा प्यारी बच्ची है।" सुप्रिया ने कहा और रैनमंजूषा ने भी इसकी हाँ की।

"मुझे जाने दो।" गौरी ने आग्रह किया।

"और न जाने दूँ तो।" श्रीपाल ने हँस कर पूछा।

गौरी ने कहा- "कर्मों के मुझ पर बहुत से आघात है। बचपन में ही माँ मर गयी थी। शादी की रात आई तो भाई चल बसा। नकसा के जन्म पर मै विधवा हो गयी थी।"

"गौरी यह तो शायद पाँच वर्ष पूर्व हुआ होगा। अब तो नकसा पांच वर्ष की हो गई है। वह समझदार भी हो गई है और अपने पिता से मिलना चाहती है।"

"आप कहना क्या चाहते है?" गौरी ने डरते-डरते श्रीपाल से पूछा और उसकी आँखों में झाँकने लगी।

"मै गौरी को अपनी बेटी बनाना चाहता हूँ।"

"पर यह नहीं हो सकता। गौरी नकसा को अपने से कैसे अलग करेगी? नकसा तो गौरी का जीवन है।'

"मै नकसा से तुम्हें अलग कब कर रहा हूँ? आज से नकसा और तुम दोनों ही यहीं रहोगी। लो मै नकसा को पाने के लिए तुम्हारे पैरों में बेड़ी डाल देता हूँ।" यों कह श्रीपाल ने अँगूठे को चीर कर गौरी की सूनी माँग भर दी।

"नही, नहीं। यह पाप है। यह तो पाप हो गया।" श्रीपाल पर अपना मन खो देने वाली गौरी चिल्लाई और रोते हुए अपने पुष्पक विमान की ओर दौड़ी। और नकसा को अपनी बाँहों में लिए श्रीपाल अवाक् हैरान-सा खड़ा था।

))X(47)X((

न जाने गौरी को कितने किस्से कहानियाँ सुना कर सुप्रिया ने समझाया था। रैनमंजूषा और गुणमाला भी उसे नारियों की नियति बता और समझा रही थी-

गौरी, अकेली नारी पुरुष वर्ग से संघर्ष नहीं कर पाती। सुनो, आज नारी युग नहीं है। पुरुषों ने तो हम नारियों को पशुओं का चारा समझ रखा है। हम पुरुषों के पास रह कर भी सुरक्षित नहीं है, फिर तुम अकेले रह कर नकसा को कैसे पालोगी? तुम्हारी खूबसूरती पर जो सुर या असुर फिदा होगा, तो क्या तुम्हें पाना नहीं चाहेगा? फिर बहुत से लोग तुम जैसी नारी को प्रताड़ित करने में लगे रहते है और वे अपना जाल फेंकने के लिए योजनायें बनाते रहते है।

दीदी, क्या यह धर्म विरुद्ध नहीं होगा, गौरी बोली- "यह तो तकदीर से संघर्ष करने-कराने वाली बात होगी। क्या सुख मुझे स्वर्गीय पति नहीं दे सकते थे? मै तो भाग्य द्वारा लुटी हुई बैठी हूँ, फिर अपनी बदनसीबी का साया तुम पर क्यों पड़ने दूँ? कर्मों की मार खाने वाला हमेशा कर्मों से डर कर रहता है, मेरा भी तो यही हाल है। अपने बुरे कर्मों का जो मैने पूर्व भव में किये होंगे, अभी दण्ड मिलना है। मै उस दण्ड में अपने रहनुमा को शरीक करके तुम सबको दुखी नहीं करना चाहती। क्या मैने कुछ गलत कहा है?"

श्रीपाल ने गौरी से यों कहा- "कर्मों को सहने की तुममें शक्ति है, यह तो सर्वविदित है और कर्मों की मार तुम पर अधिक हुई है, यह भी मानने लायक बात है। मैने भी कर्मों के कई करिश्मे देखे है, पर डरा नहीं हूँ। तुम मेरी कहानी सुनोगी?" उसने कहा और अपनी कुष्टी होने से लेकर फाँसी तक की कहानी सुना दी।

कहानी सुनते-सुनते गौरी रोती जाती थी और पास खड़ी रानियों को भी रुलाती जाती थी। एक दर्द से भरा पीड़ित मन ही तो दूसरों के दर्द की पहचान कर पाता है। गौरी ने भी अपने कर्मों को अपने दर्द की पहचान दी थी। कर्मों के पाप-पुण्य ने एक बलशाली कोटिभट राजा को भी नहीं छोड़ा, यह तो उसके लिए आश्चर्य की बात थी। दर्द अपना हो या पराया, दर्द तो दर्द ही होता है और उतना ही पिया जा सकता है, जितनी आदमी की औकात हो। शेष तो खूबसूरत आँखें

आँसुओं की शक्ल में गिरा देती है।" गौरी भी अपनी आँखों से दर्द का पानी बहा रही थी।

"गौरी अब क्या फैसला है?" श्रीपाल पूछ रहा था- "तुमने सिर्फ़ अपने दर्द की पहचान की है, क्या तुम नन्ही नकसा के दर्द से अनजान बनी बैठी हो, जो कभी मुझे पिता समझ कर मेरी बाहों में आ जाती है, तो कभी मुझे गैर समझ कर सहमती हुई दूर जा खड़ी होती है।"

"आपने तो कहा था पत्नी व्रत ले चुका हूँ और अब विवाह करने के पक्ष में नहीं हूँ।"

"हाँ, यह सत्य है, पर कभी-कभी अपने और दूसरे के दुख को इकट्ठा करने के लिए कुछ ऐसा भी करना पड़ता है, जिसे समाज और धर्म स्वीकार नहीं करता और मानवता उसे सहज ही मान लेती है।"

"ठीक है। मैं आपकी पत्नी बन जाती हूँ। पर यह सब दिखावा मात्र होगा, नकसा को पिता मिल जायेंगे, जैसे उसने कल्पना भी नहीं की होगी और मैं नकसा की खुशी को अपनी ही खुशी मान लूँगी कि आप मेरे रहनुमा है और अपना नाम देकर मुझे इज्जत बख्श रहे है।"

"गौरी," श्रीपाल ने उसका नाम लेकर पुकारा और ठिठक गया।

"मेरे रहनुमा, मैं आज भी अपने प्यार को नहीं भूली हूँ। मेरे पति मुझे इतना प्यार दे गये है, जो सारी उम्र के लिए काफी है। वो देखो वो मुझे पुकार रहे है।" गौरी ने कहा और रोने लगी।

श्रीपाल को न सूझा वो क्या करे? गौरी के जख़्मी मन पर क्या बाँधे? उसका सौन्दर्य और धन, उसके मन के नये-नये सपने, सब गौरी के लिए मिथ्या थे। यह गौरी ने कहा तो नहीं था पर जाहिर कर दिया था।

48

अश्वमेघ यज्ञ द्वारा दिग्विजयी होने की बात श्रीपाल के हक में अच्छी रही। श्रीपाल द्वारा छोड़े गये अश्व को पकड़ने या रोक लेने की किसी में हिम्मत नहीं हुई। अश्व जिस द्वीप या राज्य में जाता, वहाँ का राजा श्रीपाल से संधि कर लेता और उपहार में अपने राज्य के सैनिक,

हीरे जवाहरात और सुन्दर नारियों के साथ बहुत सी वस्तुयें भेज देता। भस्मासुर को बौना बना देने वाली बात सबको पता थी। हर छोटा, बड़ा राजा श्रीपाल से दोस्ती करने को आतुर था। उसके विशाल किले के द्वार पर नित्य एक नया राजा मिलने के लिए खड़ा रहता। श्रीपाल ने कभी भी किसी राजा को दबाने या उसके राज्य में दमन करने की नीति नहीं अपनायी। जिन राज्यों में सैनिकों की कमी थी या भुखमरी थी, अकाल पड़े हुए थे, उनकी सहायता की। वह तो हर राज्य और देश को खुशियों से भरा और अमन के सरोवर में डूबे हुए देखना चाहता था। चीन, जापान और गोरों के देश ने भी श्रीपाल की अधीनता स्वीकार कर ली थी। काले लोगों (दक्षिण अफ्रीका) ने श्रीपाल से सशर्त संधि की थी। उनके देश में चारों ओर अकाल के बादल छाये हुए थे, वे इस अकाल की प्राकृतिक बीमारी से छुटकारा पाना चाहते थे। श्रीपाल ने अफ्रीका के राजा से वायदा किया था कि वह इस प्राकृतिक आपदा के निदान के लिए उन्हें हर सम्भव सहायता देगा और इसके लिए उन्हें रसद पहुँचाई गयी और पानी की व्यवस्था के लिए दो झीलों का निर्माण किया गया। वहाँ के लोगों में श्रीपाल देवता के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। लोगों ने श्रीपाल की बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ अपने गाँवों और कबीलों में लगाई हुई थी।

भारतवर्ष को छोड़ कर समस्त संसार पर प्रभुत्व करने वाले श्रीपाल के पास छप्पन करोड़ घुड़सवारों की एक विशाल सेना थी। पैदल पलटन की तो गिनती ही नहीं थी। उसके किले में चारों ओर सेना ही सेना नज़र आती थी। सोने के अपार भण्डार भी उसके पास थे। मैनासुन्दरी को बारह वर्ष का दिया हुआ वचन उसे याद था, जो अब पूरा होने वाला था। यह सोच कर उसने अपनी सेना और रानियों के साथ भारतवर्ष की ओर कूच कर दिया। रास्ते में जो राज्य पड़ता था, वहाँ का राजा श्रीपाल की विशाल सेना को देख कर डर जाता और सन्धि के लिए हीरे जवाहरातों को लेकर आ जाता। श्रीपाल भेंट स्वीकार करके आगे बढ़ जाता। जो राजा उससे अपनी पुत्री को देने का आग्रह करते, उनके प्रस्तावों को श्रीपाल अस्वीकार कर दिया करता था।

अपनी सेना को लिए श्रीपाल बढ़ता रहा। जो लोग उसकी सेना को देख कर डरते और भागने लगते, उन्हें रोक कर श्रीपाल सांत्वना देता और कहता- "हमें देख कर डरो मत, हम तुम्हें लूटने नहीं आये

है। हाँ, अगर तुम्हारा राजा लुटेरा या अत्याचारी है तो हमसे कहो, हम उसे क्षण भर में ही धूल में मिला देंगे। अत्याचारी और अधर्मी शासकों को पृथ्वी से मिटा देने को मै सेना के साथ निकला हूँ। धर्म पर चलने वाले न्यायप्रिय राजाओं को मै बेइंतहा प्यार करता हूँ।

लोग श्रीपाल की बात सुनते और मुग्ध हो जाते। श्रीपाल की सेना को अपने द्वारा तरह-तरह के उपहार देने लगते। उन्हें देख कर खुशी में शोर-शराबा करते, जश्न मनाते। सैनिक भी श्रीपाल के डर से किसी को कुछ ना कहते, चुपचाप बढ़ते रहते या विश्राम करते और उनकी किसी के धन या नारी को लूट लेने की हिम्मत नहीं होती।

श्रीपाल बढ़ता रहा और एक दिन भारत देश, अपने वतन की सीमा पर आ पहुँचा। वहाँ उसकी मुलाकात कौशाम्भी के बूढ़े राजा और युवराज करन से हुई। करन अब बाँका नौजवान नज़र आता था, वह इतना आकर्षक लगता, जैसे कोई स्वर्ग से नन्हा-सा किन्नर आ गया हो।

"तुम सुरसुन्दरी के बेटे हो।" श्रीपाल ने करन से पूछा।

"हाँ", करन ने कहा- "मेरे पिता हरिवाहन थे, जो स्वर्गवासी हो गये है। यह मेरे दादा जी है।" करन ने बूढ़े राजा की ओर इशारा किया, "पर आप मेरी माँ को कैसे जानते हो, मेरी माँ तो निर्मोही है। मुझे कौशाम्भी भेजने के बाद मिलने भी नहीं आयी।" करन कह कर सिसकने लगा।

"प्रिय करन तुम रोओ मत, हम पुरुष नारियों की विवशता को नही जानते और उन्हें दोष देने लगते है। तुम्हारी माँ अब मजबूर है, वह किसी और के पल्लू से बँधी हुई थी।"

कौन है वो, जिनसे मेरी माँ को बंधक बना रखा है, मै उसे एक ही वार में मार डालूँगा।" करन गुर्राया।

"बेटे, तुम्हारे पिता जब स्वर्गवासी हुए, तब तुम नन्हें से थे। नारी की विवशता तुम क्या जानोगे, उन्हें जयदेव से शादी करनी पड़ी।"

करन ने पूछा- "क्या माँ को शादी करने के लिए मजबूर किया गया था?"

"नही करन, ऐसी कोई बात नहीं हुई, जो निर्णय हुआ, उसमें हम भी शरीक हुए थे। क्या तुम जानते नही हो, तुम्हारा एक भाई और भी है?"

"सुना है वह माँ के पास उज्जैनी में रहता है, पर आप मेरे

क्या है। क्या आप मुझे बताना नहीं चाहेंगे?"

"मै तुम्हारा मौसा लगता हूँ और संसार के सभी देशों पर दिग्विजयी होकर लौटा हूँ। अब अपने मुल्क के राजाओं को फतह करना है।"

"ओह, आप जैसा शक्तिशाली राजा मेरा मौसा है, यह कितने हर्ष की बात है। क्या आप मेरा आलिंगन करना चाहेंगे? मुझे मेरे पिता याद आ रहे है।" करन ने कहा और आँखें भर लाया।

"करन," श्रीपाल भी गमगीन होकर बोला- "क्या तुम मुझे अपना पिता मानोगे, मै जब तक जीऊँगा तुम्हें चाहता रहूँगा। आओ मेरी बाँहें तुम्हारा इंतजार कर रही है।" श्रीपाल ने कह कर अपनी दोनों बाँहें फैला दीं।

करन दौड़ा और श्रीपाल की बाँहें मे समा गया। बूढ़े सम्राट की भी आँखे भर आई। वे बोले- "जब मुझे हरिवाहन याद आता है तो कर्मों की लीला पर रोने लगता हूँ। श्रीपाल बेटा, अब तो करन ही मेरी तकदीर का दर्पण है। आओ तुम्हें हरिवाहन की तरह प्यार कर लूँ। करन को पिता और मुझे मेरा बेटा दे दो।" सम्राट कह रहे थे।

"कितना दर्द पाये बैठा है यह बूढ़ा सम्राट।" श्रीपाल ने एक क्षण सोचा, फिर वह आँखे भर लाया। बोला- "सम्राट कौन कहता है, करन का पिता नही है, देखो तुम्हारा पुत्र ज़िन्दा है? तुम्हारा हरिवाहन ज़िन्दा है।"

"तुम, तुम हरिवाहन बनोगे", सम्राट सहसदम थे। उनकी आँखों से टप्-टप् आँसू गिरने लगे।

"हाँ, मै हरिवाहन हूँ। तुम्हारा हरिवाहन," श्रीपाल ने कहा- "मैने भी बचपन में अपने पिताश्री को खो दिया था, पर आज पा लिया है," यह कह कर श्रीपाल रोने लगा। वह रोते हुए बूढ़े सम्राट के चरणों की ओर दौड़ा पर सम्राट की बूढ़ी बाँहों ने उसको रोक कर अपने अंक में भर लिया।

"पिताश्री," करन पुकार रहा था।

श्रीपाल अब सम्राट की बाँहो से छूट कर फिर करन को बाँहों में लेने दौड़ा।

करन श्रीपाल का मिलन हो रहा था। सब देख रहे थे। सैनिक, रानी और वहाँ उपस्थित जनसमूह। श्रीपाल कैसे उदार दिल का राजा है

और श्रीपाल सोच रहा था, उसके बेटे भी बड़े हो गये होंगे। उसे मैना की याद आने लगी, जो एक-एक दिन गिन-गिन कर अष्टमी की इंतजार में पिया मिलन की चाह लिए बैठी होगी। माँ और अब्बू सुनसान रास्ते पर उसे हर रोज ताकते, ढूँढते होंगे।

माँ को याद करके श्रीपाल आँखे भर लाया। कौशाम्भी के बूढ़े और युवा सम्राट को मैनानगरी साथ ले जाने को राजी करके श्रीपाल ने सेना के कूच का ऐलान कर दिया। सिपाहसालार अपने-अपने हथियार संभाल कर भारत की सीमा में प्रवेश करने लगे।

)))((49)))((

बारह वर्ष पत्तों की तरह उड़ गए थे। यह दूसरी बात है कि मैनासुन्दरी ने इस बारह वर्षों को एक-एक दिन गिन-गिन कर रोते हुए काटा था। इन बारह वर्षो में क्या नही बदला था? अब्बू बदल गया था, उसके सर के बाल सफेद हो गए थे। कुन्दनप्रभा माँ की आँखें हर रोज सड़क की ओर देखा करती, आँखों में जैसी शिथिलता आ गयी थी, जब भी वह श्रीपाल की याद मे रोया करती, धनपाल, महीपाल आ जाते और अपनी दादी के बहते हुए आँसू पोंछने लगते। देवरथ और महारथ दूर से ही दादी माँ को रोते देखते और प्रहस्त चाचा से इसका कारण जानना चाहते। प्रहस्त कुछ न कुछ बहाना बना देता और देवरथ तथा महारथ खेलने में व्यस्त हो जाते।

मैनानगरी में भी बहुत कुछ बदलाव आ गया था। प्रजा दिन रात बढ़ती जा रही थी। न्यायाधीश प्रजा के हर रोज के लड़ाई-झगड़े बढ़ते देख कर परेशान हो उठे थे, वे इसका कारण राज की अव्यवस्था को कहते। मैना और कुन्दनप्रभा आख़िर नारी ही तो थी, भला वे कुशल शासक का रोल कैसे अदा करती, फिर भी वे अपनी प्रजा का बहुत ख़्याल रखती थी। पापी, चोरों, हत्यारों को कठोर दण्ड दिलवातीं, निर्दोषों को बरी करा देती। उनके पास पति-पत्नी के झगड़े आते थे, जो तलाक पाने के होते थे, ऐसे मामलों को वे अपनी सूझ-बूझ से रफा-दफा करा देतीं। हत्याओं के मामलों में प्राणदण्ड देने की व्यवस्था थी। लोग चोर-उचक्कों से निश्चिंत थे और खुले दरवाजों वाले कमरों में अपना रुपया पैसा यों ही छोड़ कर सो जाया करते थे।

"माँ तेरा पुत्र कब आयेगा?" मैना पूछा करती- "मैने बारह वर्ष काट दिये है।"

"मेरा पुत्र जरूर आयेगा, वो तुझसे किया वायदा नही तोड़ेगा। अष्टमी को तो आने दो।" कुन्दनप्रभा कहती। उसकी बातों में जैसे अटल विश्वास होता।

"बारह वर्ष चले गये, अब अष्टमी की बात करती हो, तो वो भी आकर चली जाएगी। जो इन बारह वर्षों में नही लौटा, वह क्या दो चार दिन में लौट आयेगा?"

"मैना पुत्री, दिल में धैर्य बनाये रखो। उम्मीद पर तो यह सारी दुनिया टिकी है। मेरा कोटिभट बेटा जरूर आएगा। परदेश में जाने से बहुत-सी मुसीबतें सामने आती है। क्या जाने मेरा पुत्र भी किसी मुसीबत में फंसा हो, मेरा बेटा क्षत्रिय पुत्र है और उस कोटिभट वंश का है, जो अपने वचनों के पक्के होते है। वे अपने वचनों से नही मुकरते, चाहे सूरज और चन्दा चमकना छोड़ दें और बदल जायें, पर मेरा पुत्र अपने वादे से नहीं बदल सकता।"

कुन्दनप्रभा माँ की बात पर मैनासुन्दरी ने कहा- "माँ, तुम तो मुझे कर्मों की मोह माया में फँसाती जाती हो। मै अब और दुख सहना नही चाहती। मै सर पर बँधा यह स्वर्ण मुकुट क्षण भर मे तोड़ डालूँगी और जिन दीक्षा ले लूँगी। अभी तक मै विषय भोगों की चाह में प्रतीक्षा करती रही हूँ और बारह वर्ष मैने यों ही अकारथ खो दिये है। पर अब मै एक पल भी खोना नही चाहती, मुझे तो अपना जन्म सुधारना है। मेरा प्यारी माँ मेरा मन अब विरक्त हो गया है, चलो उठो। श्री मुनि के आश्रम में चल कर मुझे जिन दीक्षा दिला दो।"

कुन्दनप्रभा आँखें भर लायी और कहने लगी- "क्या तुम समझती हो जुदाई का गम अकेले तुम्हारे पास है। वह तेरा पति है तो मेरा पुत्र भी है। अभी अष्टमी को तो आने दो, मेरा मन कहता है, तेरा पति अपने साथ एक बड़ा लश्कर लेकर आ रहा होगा। उसके साथ सोने का अपार भण्डार और बहुत सारी राजपुत्रियाँ होंगी, जो दिन-रात तेरी सेवा किया करेगी। अगर तुम नही होगी, तो वह बहुत दुखी होगा, जो धन उसने बारह वर्षों में इकट्ठा किया होगा, वह उसका क्या करेगा? उसके हर सपने के आगे मेरी मैना तेरी तस्वीर लगी है। उसकी हर चाहत का द्वार तेरे सामने आकर खुलता है।"

माँ, तुम मेरा मन ललचाती हो। तेरा पुत्र तो यहाँ से जाते ही बारह वर्ष पूर्व मुझे भूल गया होगा। उसे, जहाँ वह गया होगा, राजाओं की सुन्दर कन्यायें मिली होगी, उसने ऐशो आराम का सुख पाया होगा। वह भूल गया होगा, कोई प्रतीक्षा में बैठा गम इकट्ठा कर रहा है और अपने शरीर को, मन को तिल-तिल करके गला और जला रहा है। सावन के जब बरसाती महीने आते है और ठंडी हवा के उद्दाम झोंके चलते है, तो मन में अरमान मचलते है। माँ जानती हो, तब प्रतीक्षा करने वालों पर क्या गुजरती होगी, यह भी उसने न सोचा होगा। बारह वर्षों में चार हजार तीन सौ अस्सी रातें होती है और जवान दिल को एक रात की बात समझाना भी आसान काम नहीं है।"

मैना की बातों पर कुन्दनप्रभा ने कहा- "बेटी मन को तेरे जैसी सतियाँ बाँध कर रखती है। मन के घोड़ों को साधना हर नारी के बस की बात नहीं होती। मन को बाँध कर रखा जा सकता है और नारी मर्यादाओं की रक्षा की जा सकती है, तुम इस बात को सत्य का रूप देती आई हो और सुरसुन्दरी इसका अपवाद है। वह तुम्हारी सगी बहन ही तो है, जो पति का घर छोड़ कर भाग आई थी और पति के मनाने पर भी घर नही लौटी। पति मर गया तो उसने जयदेव को फाँस लिया और बिना प्रणय-सूत्र में बँधे उसके बेटे की माँ भी बन गयी थी। यह तो तुम्हारे प्रयास से तेरे अब्बू की इज्जत बच गयी, जो उसने जयदेव से शादी कर ली। ऐसी नारी तो समाज और धर्म को कलंकित करके मुसीबतों के बादल अपने घर परिवार पर ला देती है। बेटी, यह सुरसुन्दरी की बात है। मैने देखा है, तुममें नारी की मान-मर्यादाओं की कमी नहीं है। क्या कुष्ठ रोग से ग्रस्त मेरे पुत्र के गले में तुमने वरमाला नही पहनाई थी और जैन धर्म के सिद्ध मंत्र का जाप करके मेरे पुत्र की काया निरोगी नहीं की, क्या यह भूलाने योग्य बातें है? तुमने मेरे कुल को चार-चार पुत्र रत्न दिये है, मेरी मानो और अष्टमी की प्रतीक्षा कर लो अगर पुत्र अष्टमी की रात में नहीं आया, तो हम दोनों ही मिल कर जिन दीक्षा ले लेगी।

50

अष्टमी का दिन भी आ गया था। मैनासुन्दरी ने अपनी हालत

साध्वी जैसी बना रखी थी। उसने माथे पर बँधा स्वर्ण मुकुट और शरीर पर सजने वाले आभूषणों को उतार फेंका था। रंगीन पोशाक न पहन कर सफेद कपड़े पहन लिए थे। केशों को खोले मैना, कुन्दनप्रभा से जैन आश्रम जाने की जिद कर रही थी।

"माँ को क्या हो गया है?" धनपाल और महीपाल दादी माँ से पूछ रहे थे।

"तुम स्वयं जाकर पूछ लो," कुन्दनप्रभा ने कहा।

"माँ, तुमने आज अपनी कैसी हालत बना रखी है?" धनपाल मैना से पूछ रहा था।

"बेटे यह संसार तो एक माया जाल है। इससे बच कर जाना चाहती हूँ।"

"पर तुम्हें कौन जाने देगा माँ?" धनपाल ने हँस कर कहा- "महीपाल, देवरथ, महारथ और मै सब तुम्हें पकड़ लेंगे।"

"प्रिय पुत्र, मैंने तुम्हारे पिता का बारह वर्ष इंतजार कर लिया है अब और नही करूँगी। तुम्हें प्यार करने के लिए तुम्हारी दादी माँ तो है।"

"कैसी बातें करती हो माँ, क्या हम सब बच्चे तुम्हारे बिना जी सकेंगे?"

"डरो मत, तुम्हारे पिता एक बड़ी सेना का लश्कर और तुम्हारे लिए नयी-नयी माताओं को लेकर आने वाले है। तुम उनसे मेरा प्रणाम कह देना और बता देना, मैंने उनके इंतजार में कितना दर्द सहा और भोगा है।"

"माँ, हम सबसे भाग्य और पिता दोनों ही रूठे हुए है। क्या तुम भी रूठ कर जाना चाहती हो?" धनपाल आँखें भर लाया, महीपाल रोने लगा।

देवरथ और महारथ भी आ गये थे।

मैना ने कुन्दनप्रभा से कहा- "माँ आज अष्टमी है, तेरा पुत्र अष्टमी के दिन आने को कह कर गया था पर मुझे लगता है, वह अपने वचनों से मुकर गया है और कहीं किसी राजपुत्री के साथ अपने रनवास में लेटा हुआ सुख की नींद सो रहा होगा। मैंने न जाने क्यों अपने युवा बारह वसन्त खो दिए। क्या तुम मेरे खोये हुए बारह वसन्तों को लौटा सकती हो? "

कुन्दनप्रभा क्या कहती? वह मैना की सच्ची बात सुन कर सिसकने लगी।

"रोने से और पिछली यादों को स्मरण करने से कलेजे में टीस होती है मेरी प्यारी माँ, चलो मुझे मुक्ति का रास्ता दिखला दो। धर्म करने से पाप के बंधन कट जाते हैं और जब तपस्या करने से पाप बंधन नहीं रहते, तो जीव को मोक्ष मिल जाता है।"

"मैना, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है? क्यों अल्पायु में पाप-पुण्य और मोक्ष की बातें करती हो। मै अभी भी कहती हूँ कि तेरा पति दौड़ा आ रहा होगा, वह क्षण-प्रतिक्षण मैनानगरी के नज़दीक होता जा रहा है।"

"माँ, यह बात तो तुम मुझे हर बार कहती हो। इन बीते हुए वर्षों में जब-जब मेरे मन में तूफ़ान आये है या संसार त्याग देने को मन ने चाहा है, तब-तब तुम मेरे सामने आ खड़ी हुई हो पर आज मेरे सब्र का बाँध टूट गया है, मेरे पास रुक जाने के लिए धैर्य के किनारे नही है। मै अब तुम्हारी कोई बात नही मानूँगी और जिन दीक्षा लेकर अर्जिका बनूँगी। प्रिय माँ, मै तो तुम्हें भी सलाह देती हूँ कि संसार में मोह माया मिथ्या है, जितनी जल्दी इसे त्याग दोगी, अधर्म से छुटकारा पा लोगी और धर्म संचय होने लगेगा। हम कब तक ज़िन्दा है, यह निर्णय कौन कर पाया है पर ज़िन्दा रह कर हमें धर्म प्राप्त करना है। धर्म प्राप्त करना बहुत जरूरी है। धर्म को साथ लेकर जो गये है, उन्हें स्वर्ग मिला है।"

"बेटी, स्वर्ग को पाना अच्छी बात है, पर तुम गृहस्थी सुखों को क्यों भुलाने में लगी हो? पहले गृहस्थ में रह कर अपनी मनोकामनाओं को पूर्ण होने दो। पति का सुख जो तुम्हें पाना है, उसे यों ही छोड़ कर संन्यास लेना बुरी बात है। क्या तुम्हें इन मासूम बेटों से तनिक भी मोह नही है, जो अपनी डबडबाई हुई आँखों से तुम्हें देखते जाते हैं और बहुत कुछ कहना चाह कर भी कुछ नहीं कह पाते। इन बेचारों ने तो अपने पिता को भी नही देखा और सिर्फ़ तुम्हें देख कर हँसते आए है। क्या इनकी हँसी में तुम्हें ऐसे दर्द का एहसास नही होता, जो तुम खुद भी पाए हुए हो? जिस वैभव को प्राप्त करने तुम्हारा पति गया है, उसका उपयोग करके ही तुम संन्यास लेना, अष्टमी का सूरज निकला ही तो है, इसे डूब तो जाने दो।"

"दिन निकला है तो डूबेगा भी। माँ मै सूर्य अस्त होने का इंतजार नहीं करूँगी। तुमने तो मेरे साथ जिन दीक्षा लेने की बात कही थी, पर मै तुम्हें जिनदीक्षा लेने को विवश नही करूँगी। मेरा मन विरक्त हो गया है, मै अब यहाँ एक पल भी नहीं ठहरूँगी।" मैना ने कहा।

अब्बू ने आते ही पूछा- "क्यों मैना आज क्या स्वांग रचे खड़ी हो?"

"जिन दीक्षा लेने जा रही हूँ," मैना बोली।

"क्यों?"

बारह वर्षों की पीड़ा मैना दबा नही पाती। वह रोकर कहने लगती है- "मैने अपने पति का प्यार देख लिया, पति के वायदे देख लिए। अब्बू क्या तुम जानते हो, मैने चार हजार तीन सौ अस्सी रातें आँखों में अनगिन सपने सँजो कर काटी है। जब मेरे सपनों का राजा ही नहीं आया, तो मै इस घर में रह कर क्या करूँगी? बोलो अब्बू जवाब दो, क्या आज कोई किसी का एक रात भी इन्तज़ार करता है। मैने तो बारह वर्ष इन्तज़ार कर लिया है। अब मुझे जाने दो, मेरा रास्ता मत रोकना अब्बू, मुझे ममता के टुकड़े दिखा कर मोह-माया के जाल में कैद ना कर मेरे प्यारे अब्बू, तुझे अपनी प्यारी मैना की सौगंध है।"

क्या कहें अब्बू? कैसे रोक ले अपनी मैना को अब्बू, वह तो सौगंध खाकर मानो लक्ष्मण रेखा से बँध गया था और अपनी दोनों बाहों में अपने चारों नवासों को थामें द्वार से हट कर खड़ा हो गया था।

और मैना पति का घर त्याग कर महल से चल दी।

"रुक जाओ मैना", कुन्दनप्रभा रोने पुकारने लगी, पर शायद आज मैना अपने फैसले पर अटल थी। उसने कुन्दनप्रभा, अब्बू और अपने प्यारे बच्चों के आँसू नहीं देखे, जो सब हिचकी ले ले कर रो रहे थे। वह चलती रही और महल की ड्योढ़ी पार करती रही।

एक, दो, तीन, चार और इस तरह वह महल की बीसों ड्योढ़ी पार कर गयी। जब वह अँतिम ड्योढ़ी पर आई, तो सहमदम रह गयी।

ड्योढ़ी के बाहर उसका प्रियतम श्रीपाल खड़ा था।

"प्रियतम", वह रोकर श्रीपाल की बाहों में बिखर गयी।

"मैना, मैना उठो मैना", श्रीपाल ने आवाज़ दी। बेटे की आवाज़ माँ के कानो तक पहुँची तो वह भी बाहर की ओर दौड़ी।

"बच्चों, आओ तुम्हारे पिता आये है"। अब्बू ने कहा और

बच्चों को बाहों में समेटे बाहर की ओर दौड़ा। प्रहस्त भी अपने साथी सात सौ वीरों को बुलाने दौड़ पड़ा था। मैनानगरी में ढिंढोरा पीटा जा रहा था, मैनानगरी वालों अपने-अपने घरों में रोशनी कर लो, आज तुम्हारे राजा आये है। लोगो मे हलचल-सी मच गयी। पूरी नगरी में दीपमालायें जल उठीं।

श्रीपाल हर्ष से मूर्छित अपनी मैना को बाहों में उठाये महल की ड्योढ़ी पर ड्योढ़ी पार करता जा रहा था। उसे सबसे पहले मैना को जगाना था। अपनी तकदीर बनाने वाली मैना को, जिसने उसकी बारह वर्ष यादें सही थीं।

"उठो मैना", श्रीपाल मैना को जगा रहा था।

"नहीं, मै आपकी बाँहों में ही सोये रहना चाहती हूँ। प्रियतम, मैं तुम्हारी इंतजार में प्यासे पपीहे की तरह हूँ, जो जल की एक-एक बूँद को तरसता रहता है।"

))X(51)X((

"मैना उठो और उठ कर मुझे क्षमा कर दो।" श्रीपाल ने कहा।

मैनासुन्दरी बोली- "तुम अभी तक कहाँ रुके हुए थे, क्या मेरी याद नहीं आती थी?"

"आती थी, पर कर्मों की लड़ाई जारी थी, कैसे लौटता?"

"क्या आपको सफ़र मे मुसीबतें उठानी पड़ी?" मैना पूछ रही थी।

"हाँ, मैंने कितने कष्ट सहे हैं। सुनो", और श्रीपाल सबके सामने अपनी कहानी सुनाने लगा।

अपनी और रैनमंजूषा की कहानी। धवल सेठ और शंकर आचार्य की कहानी। गुणमाला और सुप्रिया की कहानी। वह शुरू से आख़िर तक अपनी कहानी सुनाता रहा। कहानी सुनते हुए कभी मैना हँस देती तो कभी रोकर श्रीपाल की बाँहों में बिखर जाती। अब्बू और कुन्दनप्रभा भी भरी हुई आँखों से कहानी सुन रहे थे। धनपाल, महीपाल, देवरथ और महारथ भस्मासुर के बौने होने की बात पर हँसने लगे। वे नन्हीं नकसा और दूसरे छोटे भाइयों के बारे में पूछ रहे थे। श्रीपाल एक-एक बात का जवाब दिये जाता था।

कहानी पूरी होने पर मैना श्रीपाल की बाँहों में फिर बिखर गयी और रोने लगी।

माँ, श्रीपाल ने कुन्दनप्रभा के चरणों को छुआ और फिर अब्बू की ओर बढ़ा।

"मैं तुमसे नाराज हूँ।" अब्बू बोला।

"नाराज तो मैं भी हूँ, अब्बू। क्या तुम मैना को रोक नहीं सकते थे? अगर मैं एक पल भी न आया होता, तो मेरे प्राण महल छोड़ चुके होते।" उसका इशारा मैना की ओर था।

"बेटा श्रीपाल इंतजार की एक सीमा होती है।"

"पर प्यार की कोई सीमा नहीं होती अब्बू", श्रीपाल ने कहा।

"क्या तुमने किसी को यौवन के बारह वर्ष लुटाते हुए देखा है?"

"अब्बू, आप बारह वर्षों की बात करते हैं? प्यार करने वाले तो पूरी जिन्दगी लुटा देते हैं।"

"क्या तुम मेरी मैना की इस प्रेम साधना को नहीं मानते?" अब्बू नाराज हो गया था।

"मानता हूँ। सुनो पहले मैं मैना से प्यार किया करता था और अब प्यार के साथ-साथ अपनी मैना की पूजा भी करूँगा।" श्रीपाल आँखें भर लाया। मैंने जो कुछ पाया है, वह मैना की तकदीर से ही तो पाया है। मैना तो मेरी तकदीर है।"

"नहीं, प्राणनाथ। मुझे इतना अहंकारी न बनाओ, मैं तो तुम्हारे चरणों की दासी हूँ।"

"मैना मैं ऐसा नहीं मानता, जैसा तुम कहती हो। हमें जो कुछ मिलता है, वह कर्मों से ही मिलता है, यह सही बात है, पर संयोग बनना भी एक ऐसी माया है, जिसे हम तुम झुठला नहीं सकते और उसे भी कर्मों का करिश्मा मान कर चलते हैं।"

अब्बू ने कहा- "क्या तुम मुझसे गले मिलोगे?"

"हाँ", श्रीपाल हँसा और अब्बू की बाहों में समा गया।

"क्या-क्या लाये हो?" अब्बू पूछ रहा था।

"सेना, सोना और बहुत-सी रानियाँ लाया हूँ"- श्रीपाल ने अब्बू से ठिठोली की- "जो चाहो पसन्द कर लेना।"

"शर्म करो, यहाँ मेरी समधन, बेटी और चार-चार नवासे बैठे

हुए हैं।" अब्बू ने श्रीपाल को डाँटा। फिर बोले- "मैंने समझा था मेरे लिए कोई अमूल्य वस्तु लाये होगे, या कोई सुखद संदेश लाकर दोगे।"

"एक शुभ समाचार तो है, सुनोगे?"

"हाँ, हाँ, जल्दी कहो।"

"करन आया है, उसके दादा जी भी साथ आये हैं।"

"करन कहाँ है?" अब्बू ने उतावला होकर पूछा।

"सेना का संचालन करता आ रहा है। सेना के साथ-साथ कुछ अपने भी हैं, जिन्होंने मेरे कर्मों को बनाया सँवारा है।"

"करन अब कैसा लगता है?" अब्बू पूछ रहे थे।

"अच्छा लगता है, पर वो सुरसुन्दरी को निर्मोही कर रहा था।"

करन ने ठीक कहा है- "सुरसुन्दरी निर्मोही नहीं है, तो और क्या है?" अब्बू बड़बड़ाया- "पुत्री प्रेम में डूबा हूँ। न जाने मन क्यों नहीं मानता, अन्यथा उसे देश निकाला दे देता।"

"जयदेव कैसे हैं?"

"वे नहीं रहे। अस्वस्थ हुए और चल बसे।" अब्बू ने कहा- "वह दुखी हो गया था।"

"क्या?" श्रीपाल को सदमा-सा लगा। "यह कब हुआ?"

"पिछले वर्ष की बात है। जयदेव को महीनों ज्वर रहा और वह ज्वर में ही चल बसा।"

"ओह", श्रीपाल ने आह भरी। फिर बोला- "निरंजन कहाँ है, क्या वो जयदेव पर गया है?"

"हाँ, निरंजन बिल्कुल जयदेव जैसा लगता है और सुरसुन्दरी फिर कोई नया षड्यंत्र रच रही है।" अब्बू कह रहा था।

श्रीपाल अब्बू का इशारा समझ गया। "सुरसुन्दरी नये पति की तलाश में है। एक ही पिता की दो पुत्री, अलग-अलग रास्तों पर हैं। कितनी अजीब बात है, मैना जितना पुण्य बाँटती है, सुरसुन्दरी उससे अधिक पाप कमा लेती है।"

कुछ देर बाद करन आ गया। उसके साथ अपने पुत्रों को लिए श्रीपाल की रानियाँ भी थीं। गौरी नकसा का हाथ पकड़े हुए सबसे पीछे चल रही थी।

करन ने श्रीपाल से कहा- "प्रहस्त चाचा सेना को किले की ओर ले गए हैं और मैं इन्हें लेकर यहाँ आ गया हूँ?" उसने रानियों

की ओर इशारा किया।

"तुम्हारे दादा जी कहाँ है?" श्रीपाल पूछ रहा था।

"किले की ओर सेना के साथ गये है। मैनानगरी मे आज पहली बार आये हैं। सब कुछ देख लेना चाहते हैं।"

करन से बात करता हुआ श्रीपाल नकसा की ओर घूम गया "शहर कैसा लगा?"

"बहुत अच्छा है। बड़ी माँ भी बहुत अच्छी हैं", उसने मैना की ओर इशारा किया।

"अच्छा, मैं तुम्हें अच्छी लगती हूँ।" मैना ने नकसा से कहा- "चलो मेरे पास आओ।"

नकसा दौड़ कर मैना के पास आ गयी।

"तुम्हारी माँ का नाम क्या है?" मैना पूछने लगी।

"गौरी।"

"पर मेरा नाम तो मैना है। मै तुम्हारी माँ कैसे हो सकती हूँ?"

"ये सब मेरी माँ हैं।" नकसा ने चारों ओर अंगुली उठाई, "बस यहाँ एक मेरी दादी माँ हैं।" नकसा कुन्दनप्रभा की ओर अंगुली हिला रही थी।

"क्या दादी माँ को प्यार नहीं दोगी नकसा", कुन्दनप्रभा ने कहा तो नकसा कुन्दनप्रभा की ओर तिरछी हो गई और इस तरह दादी माँ ने नकसा के नन्हें गालों पर प्यार का एक रिश्ता कायम कर दिया।

अब्बू तो हर नये आये राजपरिवार के व्यक्ति से मिलना चाहता था, उसने अपनी आई हुई सभी राज बेटियों से उनके नाम पूछे, उनके बच्चों को ले लेकर खिलाया और हो-हो करके देर तक हँसता रहा। वह वहशी दरिन्दे की तरह हँस रहा था। उसे ही क्या, किसी को क्या पता था कि उसे आज इतनी खुशी मिलेगी, जो आँखों में ठहरा हुआ गम खुशियों में जा बदलेगा। संसार पर विजय पाने की बात सुनते ही तो जैसे वह दीवाना हो गया। उसने इस विजय के सपने को साकार करने के लिए अश्वमेघ घोड़ा भारतवर्ष में भी छुड़वा दिया। अश्वमेघ के पीछे एक सैनिक टुकड़ी भी भेज दी गई, जो अश्व के बारे में सूचना देने के लिए तैनात की गई थी।

पूरे दिन श्रीपाल माँ और मैना के गिले-शिकवे सुनता और दूर करता रहा। सूर्य अस्त होने पर रात अपनी जवान साँसों को लिए आ

पहुँची। यह रात श्रीपाल ने मैना के लिए और अपने प्यारे बेटो (मैना के चारों पुत्र) के लिए रख छोड़ी थी। अपने पिता की चौड़ी छाती से लगे धनपाल, महीपाल, देवरथ और महारथ सो गये थे। मैना अभी जाग रही थी। मन में दबी वर्षों पुरानी उमंगों के तूफ़ानी बादल घिर आये है, तो वह दौड़ कर श्रीपाल की बाँहों में जा दुबकी और प्यासे मन को तृप्त करने के लिये मचल उठी।

"मेरे कंथ, मै आज प्यासी नहीं रहना चाहती, मुझे तृप्त कर दो।" मैना कह रही थी।

"हाँ मैना, मै भी तो अपनी मैना का प्यासा हूँ, मैं तो जन्म-जन्म तुम्हारे साथ रहता आया हूँ। क्या तुम्हें पता भी है? हम पिछले जन्मों में साथ-साथ पैदा होकर प्यार के सरोवर में डूबे और साथ-साथ मरते रहे हैं। हमारा यह मिलन तो पिछले जन्मों से चलता आया है।"

"हाँ कंथ जी", मैना ने कहा और श्रीपाल को कस कर पकड़ लिया। श्रीपाल जानता है आज मैना का यह ऐसा मिलन है, जिसमे सावन की बहुत-सी सूनी रातों का दर्द भरा है। वह इस दर्द से मुक्ति पाना चाहती है और प्यार के रिश्ते को एक नया नाम देना चाहती है।

52

अगले रोज अब्बू सुरसुन्दरी और निरंजन को ले आया। करन को देखते ही मानो सुरसुन्दरी की ममता जाग उठी। पुराना टूटा हुआ मोह उमड़ आया, वह करन को बाँहों में भरने लगी।

"आप कौन हैं? मैं तो आपको जानता ही नहीं हूँ।" करन कह कर पीछे हटा।

"मैं तुम्हारी माँ हूँ करन! क्या तुम मुझे भूल गये हो?" सुरसुन्दरी रोने लगी।

बीते वर्षों में अपने बेटे से मिल कर कोई पहचान दी होती, तो शायद मेरे मन में यह रहा होता कि मेरी अपनी भी कोई माँ है। पर माँ तुमने तो मुझे कुन्ती के करन की तरह अपनी ज़िन्दगी से निकाल फैंका था। पर मैं कुन्ती के करन की तरह तो पैदा नहीं हुआ था, जो तुम्हें मुझसे मिलने आने में नारी मर्यादाओं के चले जाने का डर रहा

होता। क्या तुमने मुझसे इतने सालों दूर रह कर अपने को निर्मोही कहलाने की कोशिश नहीं की?" करन पूछ रहा था।

सुरसुन्दरी ने पुत्र से अपने को निर्मोही सुना तो रोने लगी।

"मुझे मुआफ कर दो।" सुरसुन्दरी गिड़गिड़ा रही थी।

"माफ तो मैं अपने को भी नहीं कर पाता हूँ।" करन बेरुखी से बोला- "काश पिता जिन्दा होते और मैं तुम्हारी ओर से उनसे क्षमा माँग लेता।"

"क्या तुम्हें सब कुछ बता दिया गया है?" सुरसुन्दरी पूछ रही थी।

"हाँ, मुझे पता है। मेरे पिता भिखारी बन कर भी तुम्हारा प्यार न पा सके और मन ही मन घुट-घुट कर मर गये। जिस माँ ने मेरे पिता को इतना सताया हो, मैं उससे मिलना भी पाप समझता हूँ।"

"क्या करन पाप-पुण्य को समझने लगा है?" मैनासुन्दरी सोच रही थी और दूर खड़ी सुरसुन्दरी के भाग्य पर अचरज किये जाती थी, जो दो-दो बार विवाह रचा कर भी विधवा बनी उसकी सामने खड़ी थी।

"करन, माँ से मैं भी दुखी हूँ। मेरा नाम निरंजन है, क्या आप मुझसे गले मिलेंगे। मैं तुम्हारा भाई जरूर हूँ पर हमारे पिता अलग-अलग हैं।"

"मैं भी तुमसे मिल कर एक निर्णय करना चाहता हूँ। अच्छा हुआ तुम खुद ही आ गये, वरना मुझे उज्जैनी आना पड़ता।"

निरंजन हँसा- "करन भैया आप मेरे बड़े भाई हैं। जो आज्ञा दोगे, मैं सहर्ष स्वीकार कर लूँगा।"

"तो सुनो, माँ का साथ छोड़ दो। माँ का नाम अपने साथ लेकर हम कैसे जीयेंगे, माँ तो भोग, ऐश्वर्य की ओर दौड़ रही है।"

"आप ठीक कहते हैं, भैया! क्या आप मुझे अपने साथ ले चलेंगे, मैं आपके साथ चलूँगा। मेरे साथ मेरे दादा जी भी होंगे। हम दोनों अपने-अपने दादाओं के प्यार में पिताओं को भूले रहेंगे।"

"निरंजन! क्या यह तुम्हारा अटल निर्णय है?" सुरसुन्दरी पूछ रही थी।

"हाँ, मुझे पता है। पिता तुमसे कभी खुश नहीं रहे, तुम मेरे पिता को हमेशा छोटा समझती रही। मेरे पिता तुम्हारे यहाँ नौकरी किया

करते थे, इसलिए ही वे कुछ नहीं कह पाते थे।"

"निरंजन!" अब्बू निरंजन को डाँटने लगा, "छोटे-मुँह से बड़ी बात नहीं कहते।"

"नाना जी। आप हमेशा मुझे ही डाँटते हैं और माँ को कुछ नहीं कहते। आपने माँ को अपने लाड़-प्यार में बिगाड़ा हुआ है।" निरंजन ने कहा और रोने लगा।

"हम यहाँ एक पल भी नहीं रुकेंगे।" करन ने तेज स्वर में कहा- "निरंजन जाओ। अपने दादा जी को ले जाओ। तब तक मेरे दादा जी भी आ जाएँगे।"

निरंजन उज्जैनी चला गया था। अब्बू नहीं जानता था कि आज क्या हो रहा है और सुरसुन्दरी थी कि रो-रो कर अपना बुरा हाल किए जाती थी।

)))(((53)))(((

करन गुस्से में तना हुआ इधर-उधर घूमता रहा, फिर धनपाल और महीपाल के साथ खेलने बाहर निकल गया। श्रीपाल ने देवरथ और महारथ से पूछा- "क्या करन अत्यधिक क्रोध में है?"

"हाँ, करन कहता है अगर माँ सुरसुन्दरी ने मुझे बेटा भी कहा तो अनर्थ हो जायेगा।" वह गुस्से में काँप रहा था।

"क्या तुम माँ-बेटे की सुलह नहीं करा सकती हो?" अब्बू ने मैनासुन्दरी से कहा।

"नहीं, यह कार्य तुम अपने जमाता को सौंपो तो अच्छा रहेगा। करन उनको बहुत मानता है।"

अब्बू ने करन और श्रीपाल की घनिष्टता जान कर सुलह कराने को श्रीपाल से कहा। श्रीपाल इस विषय पर देर तक सोचता रहा।

"क्या सोच रहे हो?" अब्बू पूछ रहा था।

"करन का मुझ पर प्यार और विश्वास दोनों हैं, पर वह मुझे हमेशा बागी नज़र आया है। मैं सोच रहा हूँ, करन कहीं मुझे तुम लोगों की ओर लुढ़कते हुए देख कर मुझसे अपना प्यार और विश्वास दोनों ही ना माँग ले। मैं उसे प्यार भी करता हूँ और उससे संबंध भी बनाये रखना चाहता हूँ।"

"ओह, अगर तुमसे भी करन नहीं माना तो सुरसुन्दरी का क्या होगा, करन ने तो उसका दूसरा बेटा भी बहका लिया है।"

"अब्बू, यह सब कर्मों की बात है। मेरी राय से तुम करन को अपनी मनमर्जी करने दो। कर्म में जो होगा, होने दो, सब देखा जाएगा।"

कर्मों की बात पर अब्बू ने यों कहा- "जब तुम पहली बार उज्जैनी आये थे, तो सुरसुन्दरी ने तुम्हें देख कर मन में बहुत कुछ सोचा था, दो-दो पति बदल कर भी सुरसुन्दरी विधवा है। काश, सुरसुन्दरी सौभाग्यवती होती!"

क्या जवाब दे श्रीपाल, वह तो स्वयं भी सुरसुन्दरी के पक्ष में नहीं था। सुरसुन्दरी ने अभी तक अधर्म का रास्ता जो पकड़ा था पर उसे नापसंद करने पर भी वह उसके दुखी मन को अपने कटु शब्दों से और दुखी नहीं करना चाहता था।

अब्बू ने कहा- "क्या मै तुमसे कुछ माँग सकता हूँ?"

"कहो अब्बू।" श्रीपाल ने मानो अब्बू को प्रोत्साहित किया- "ठिठकना बुरी बात है।"

"सुरसुन्दरी को अपने रनवास में मिला लो। वह तुम्हें पाकर अपना दर्द भूल जायेगी।"

"नहीं अब्बू, नहीं, यह नहीं हो सकता। मैं तो धर्म का हिमायती हूँ। मैने तो पत्नी व्रत लिया है। अगर पत्नी व्रत भी ना लिया होता तो भी मैं सुरसुन्दरी को पाना नहीं चाहता। अब्बू मुझे पता है, करन ने एक सही फैसला किया है।"

श्रीपाल की सच्ची बात पर मैनासुन्दरी को मन ही मन आत्मिक शान्ति मिली पर बहन होने के नाते वह रोती-बिलखती सुरसुन्दरी को चुप कराने में लगी रही।

))X(54)X((

सुरसुन्दरी लौट रही थी।

"जा रही हो?" मैनासुन्दरी बोली- "कैसे जिओगी?"

"मैं आज और अभी जिन दीक्षा ले लूँगी।" सुरसुन्दरी ने कहा- "करन द्वारा मेरे निरंजन को छीन लेने से मेरी आँखों से सांसारिक सुखों का भ्रम जाल टूट गया है।"

"मैंने तो सुना था कि तुम यौन सुखों में सर से पाँव तक डूबी हुई हो और नया पति तलाश कर रही हो?"

"वह कल की बात है, जिस कहानी का तुम्हें पता है, वो तो रात के अँधेरे में कहीं खो गयी है। अब तो ज्ञान का सूर्योदय हो चुका है।"

"संयम निभा सकोगी?" मैना पूछ रही थी।

"क्या पापियों ने धर्म पाकर उसकी रक्षा नहीं की। मुझे रात में रैनमंजूषा ने समुद्री लुटेरे शंकर की कहानी सुनायी थी, जो आज अपने पुण्य के प्रताप से मुनियों के आचार्य बने बैठे हैं। वे अपने ज्ञान का प्रचार घर-घर करते घूमा करते हैं।"

"काश, यह विरक्ति तुम पहले पा गई होती", मैना ने कहा- "जाओ वक्त तुम्हारा इन्तजार कर रहा है।"

सुरसुन्दरी ने सुना तो वह तेजी से श्री जैन मुनि के आश्रम की ओर चल दी, अब्बू को पता चला, तो वह यह खबर देने करन और निरंजन के पास आया।

"प्रिय पुत्रों, सुरसुन्दरी जैन अर्जिका बनने श्री मुनि जी के आश्रम की ओर जा रही है। जाओ, उससे एक बार मिल तो लो। देर करने से माँ-पुत्र का मिलन नहीं हो सकेगा।"

"अब्बू ऐसी खबर देंगे, करन को विश्वास नहीं था।" वह निरंजन को लेकर जैन आश्रम की ओर दौड़ा। अब्बू भी पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

"माँ, सुनो माँ।" करन ने आवाज देकर आश्रम में प्रवेश करती सुरसुन्दरी को रोकना चाहा। "रुक जाओ माँ, निरंजन भी आवाज़ दे रहा था।

अब्बू ने देखा, सुरसुन्दरी जानबूझ कर सुनी-अनसुनी कर रही थी और आश्रम में दाखिल हो गयी थी।

करन और निरंजन जब तक आश्रम के द्वार पर आये, सुरसुन्दरी ने अर्जिकाओं के वस्त्र धारण कर लिये थे और वो केस लोच करने बैठ गयी थी। माँ से तिरस्कृत पुत्र करन और निरंजन, अब्बू के साथ द्वार पर खड़े रोने लगे। सुरसुन्दरी माँ उन्हें इस तरह सता कर छोड़ेगी, यह तो करन ने कल्पना भी नहीं की थी।

रोता-बिलखता करन, निरंजन को बाँहों में भरे दो-दो दादाओं के संरक्षण में कौशाम्भी लौट गया। अब्बू ने मैना से आकर कहा-

"सुरसुन्दरी ने अर्जिका होने के बाद भी करन से, निरंजन से और मुझसे मिलने के लिए मना कर दिया है और साधना पर बैठ गयी है।"

अब्बू से इन बातों को सुन कर मैनासुन्दरी ने खुशी के कितने आँसू बहाये थे, इसका वर्णन करना आसान नहीं है।

))X(55)X((

सुख वैभव में श्रीपाल राज-काज करने लगा। दूसरी रानियों के पुत्र अभी छोटे थे। श्रीपाल ने मैना से उत्पन्न अपने पहले दो ज्येष्ठ पुत्रों को सात समुद्र पार अपने विशाल किले पर शासन करने के लिए भेज दिया था।

मैनानगरी से समस्त संसार पर शासन करना आसान ही नहीं असम्भव भी था। धनपाल और महीपाल अपने पिता श्रीपाल की तरह बलशाली और युद्ध करने में निपुण थे। अल्पायु में ही वे अब्बू द्वारा दक्ष योद्धाओं की तरह युद्ध करना सीख गये थे।

भारतवर्ष पर विजय पाने के लिए अश्वमेघ घोड़ा पहले ही छोड़ दिया गया था। एक बड़ी सेना अश्वमेघ घोड़े की रक्षा के लिए पीछे-पीछे चला करती थी। श्रीपाल को इस तरह संतुष्टि नहीं थी। उसने मैनानगरी राज्य का संचालन देवरथ और महारथ को सौंपा और खुद भारत को दिग्विजय करने चल पड़ा। वह जहाँ भी जाता, राजा उसके सामने संधि प्रस्ताव रख देते और उसे अपना सम्राट मान लेते। कश्मीर से कन्याकुमारी तक वह विजय उल्लास से भरा दौड़ता रहा और अंत में चम्पानगरी की सीमा पर आ पहुँचा। उसने अपने विशाल लश्कर के डेरे सीमा पर गाड़ दिये और अश्वमेघ घोड़े को चम्पानगरी की ओर भेज दिया।

उसे पता था, चाचा बीरदमन उसकी शक्ति के सामने संधि प्रस्ताव रखेंगे और वह बिना खून-खराबा किये अपनी मैनानगरी को लौट पड़ेगा। संसार विजेता श्रीपाल की चम्पानगरी के शासन में विशेष दिलचस्पी नहीं थी पर पृथ्वी का चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिए चम्पानगरी को जीतना बेहद जरूरी था। अगर वह ऐसा नहीं करता है तो उसे चक्र नहीं मिलेगा और न ही सारी पृथ्वी के राजा उसको चक्रवर्ती सम्राट के रूप में जानेंगे, प्रणाम करेंगे।

56

"यह किसका घोड़ा है, बहुत सुन्दर है।" राजा बीरदमन ने कहा और फिर उस पर लगे इश्तहार को पढ़ कर सहसदम रह गया।

यह तो दिग्विजय पर छोड़ा गया अश्व है। जरूर यह श्रीपाल ने छोड़ा होगा। बीरदमन ने अपने आपसे कहा और सोचने लगा। आज पापों का प्रायश्चित करने का समय आ गया है। वह अतीत में आ पहुँचा। अपने बीते हुए पिछले वर्षों में जब वह युवा था और अपने भाई को बदनाम करने के लिए पाप के रास्ते पर दौड़ा करता था, तब भाई के स्वर्गवासी हो जाने और भतीजे को कुष्ठ हो जाने पर उसने देवी जैसी भाभी माँ को कारावास में डाल कर राज्य में अत्याचारों का सिलसिला शुरू कर दिया था। लोग उसके कोटिभट वंश की प्रतिष्ठा को भूल कर उसे अत्याचारी शासक के रूप में जानने लगे थे। उसने वह सब किया जो एक अत्याचारी राजा भी नहीं करता, वह शराब के नशे में धुत होकर अपने राज्य की सड़कों पर निकलता और युवा नारियों को पकड़ कर अपने महलों में ले जाता और उनके साथ बलात्कार करता। उसकी हवश, दिन-प्रतिदिन बढ़ रही थी। चम्पानगरी में औरतें सूर्य अस्त होते ही अपने घरों के दरवाजे बंद कर लेती। एक रोज वह एक जैन साध्वी की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसे आश्रम से उठा लाया, वह साधना में लीन बैठी हुई थी। राजमहल में ले जाकर जब उसने साध्वी का शील भंग करना चाहता, तो साध्वी के श्राप से उसके सभी पुत्र मर गये। हीरे-जवाहरातों के खजाने खाली हो गये। उसके रनवास में एक से एक सुन्दर रानियाँ थी, जो सबकी सब कुरूप हो गयीं। खजाने खाली हो जाने पर आधी से अधिक सेना ने नौकरी छोड़ दी और वे लोग अपनी खेती बाड़ी करने लगे। यह सब देख बीरदमन को दिली आघात लगा। उसके मन से काम वासना की बातें जाती रहीं। वह गुमसुम-सा पुत्र शोक में डूबा रहने लगा। उसने चम्पानगरी की सड़कों पर भी निकलना कम कर दिया। उसके अत्याचारों से पीड़ित होने से प्रजा के लोग उसका दुख बाँटने भी नहीं आये और अपने शोक को अकेले सहने के लिए वह अकेला रह गया। वह माँ तुल्य भाभी कुन्दनप्रभा और भाई के पुत्र श्रीपाल को उनका राज्य सौंप कर जंगल में जाकर रहना चाहता था। पर वह किस मुँह से मैनानगरी जाये, यह

सोच नहीं पाता था। श्रीपाल पुत्र ने उसे मैनासुन्दरी के उद्घाटन पर बुलाया तो था, पर तब न जाकर उसने मानो घर परिवार के रिश्तों को तोड़ लिया था। पुत्र श्रीपाल की समुद्र पार दिग्विजयी होने की खबर उसे पहले ही मिल गयी थी। भारतवर्ष को जीत कर श्रीपाल चक्रवर्ती सम्राट बनना चाहता है। यह सोच कर बीरदमन हर्ष में भर उठा और अश्वमेघ घोड़े के साथ श्रीपाल के डेरों की ओर पैदल ही दौड़ पड़ा।

"चाचा बीरदमन घोड़े के साथ निहत्थे आये हैं।" यह सुन कर श्रीपाल ने रास्तों पर सुगन्धित फूलों को बिछवा कर, स्वागत द्वार बनवा दिये और उनके पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगा।

))X(57)X((

अश्वमेघ घोड़े की रास थामे बीरदमन राजा पैदल ही आ रहे थे। पथरीले ओर काँटेदार रास्तों से निकलने पर उनके पैरों में जख़्म हो गये थे। खून से पृथ्वी लाल हुई जाती थी।

"संसार मिथ्या है", वे कहते।

"ठहरो राजा, हम भी तुम्हारे साथ चलेंगी।" पुत्र शोक में डूबी रनवास की सैकड़ों रानियाँ यो कहते हुए अपने कुरूप चेहरों को आँचल में ढाँपे बीरदमन के पीछे-पीछे दौड़ी।

कर्मों से बीरदमन ने कितना खिलवाड़ किया था और कर्मों ने उसको क्या सजा दी, यह तो सर्वविदित था। सैकड़ों पुत्रों का पिता आज एक भी पुत्र का पिता नहीं था। रनवास की सुन्दर रानियाँ काली-कलूटी हो गयी थी। सोने के भरे खजाने खाली हो गये थे। जो राजा कभी पृथ्वी पर पाँव नहीं रखता था और सोने के रथ में बैठा हुआ घूमा करता था, वही राजा बदहवास-सा नंगे पैरों काँटों और पत्थरों से गुजरता हुआ चला जाता था, ये सब कर्मों की कैसी अजब लीला थी?

श्रीपाल के गुप्तचर बीरदमन के बारे में सूचनायें दिये जा रहे थे। अपने चाचा को नंगे पैरों अपने लश्कर की ओर आते हुए देख कर श्रीपाल समझ गया, चाचा जीवन से विरक्त हो गये है और जैन भिक्षु बनना चाहते है। यह सोच कर श्रीपाल भी निहत्था पैदल ही दौड़ा। चाचा और भतीजा दोनों एक दूसरे से मिलने के लिए आतुर हुए दौड़ रहे थे। जहाँ वे एक दूसरे से मिले, वहाँ आज भी जैन धर्म का एक

स्तूप बना हुआ है। एक दूसरे को बाँहों में भर कर वे रोने लगे और एक दूसरे के दुख-सुख की बातें करने लगे। श्रीपाल का समस्त संसार पर प्रभुत्व हो गया है, यह सुन कर बीरदमन बड़ा आनन्दित हुआ, उसने अपने अधर्म की बातें सुनाते हुए साध्वी के श्राप की बात कही। अपने चाचा के सभी पुत्रों की अकाल मृत्यु सुन कर श्रीपाल सिसकने लगा। बीरदमन के रनवास की रानियाँ भी आ पहुँची थी, जो रो-रो कर अपनी व्यथा श्रीपाल से कहे जाती थीं। श्रीपाल उनको कर्मों की निन्दा न करने की सलाह देकर सांत्वना देता रहा।

बीरदमन ने कहा- "चम्पानगरी में अश्वमेध घोड़ा भेजने की क्या जरूरत थी? यह राज्य तो तुम्हारा अपना है। मैं तो तुम्हारी अमानत तुम्हें सौंप देने की प्रतीक्षा कर रहा था। अपना राज्य लो और मुझे वन की ओर जाने दो।"

श्रीपाल ने कहा- "चाचा जी हर चीज का अंत है, मुझे पता है, जिस माया जाल का त्याग आप मेरे लिए किये जाते हो, मैं ही उसमें रह कर क्या करूँगा।"

"बेटा, तुम ठीक कहते हो, पर अभी तुम्हें चक्रवर्ती राजा बन कर राज्य करना है। स्वर्गीय भैया के सपनों को पूरा करना है। इसलिए हे पुत्र, मैं तुम्हें अपना राजमुकुट पहनाता हूँ।" यों कह कर बीरदमन ने अपने स्वर्ण राजमुकुट को श्रीपाल के माथे पर बाँध दिया। चम्पानगरी की प्रजा ने जब श्रीपाल की वापसी सुनी, तो वे सब अपने युवा राजा के दर्शनार्थ जंगल की ओर दौड़ पड़े।

बीरदमन अपनी सभी रानियों के साथ जिन दीक्षा पाकर वन को गमन कर गया। क्षोभ और ग्लानि से ग्रस्त श्रीपाल सेना के साथ चम्पानगरी की ओर चल पड़ा।

जैसे-जैसे श्रीपाल अंगदेश की इस नगरी की ओर बढ़ता, पतझड़ ऋतु की कमर टूट कर बिखर जाती और सावन के बरसाती महीने वहाँ हरियाली के चित्र बना जाते। वन में मोरों ने नाचना शुरू कर दिया और कोयल कूकने लगी। हिरण कुलाँचे भने लगे। सूखे झरनों में पानी का कोलाहल होने लगा। सूखे और खामोश पड़े आकाश में रंगीन बादल इकट्ठे होने लगे, वे रिमझिम वर्षा करने लगे। सुहावने मौसम को अपने हाथों में लिए श्रीपाल सेना के साथ चम्पानगरी में प्रवेश करने लगा। आज प्रजा के लोग जो कभी उसके शरीर की दुर्गन्ध के डर से भागने

लगते थे, तेज वर्षा में भी सड़क के दोनों ओर समूह बनाये खड़े थे और अपने राजा पर फूलों की वर्षा किये जाते थे।

चम्पानगरी पहुँच कर अपने संदेश वाहक द्वारा खबर भेज कर श्रीपाल ने माँ, मैना और पूरे रनवास को चम्पानगरी में बुलवा लिया। मैनानगरी का राजकाज मैना के पुत्र देवरथ और महारथ देख रहे थे। श्रीपाल उनकी ओर से निश्चिंत था, क्योंकि वहाँ पर उसका प्रिय मित्र सेनापति प्रहस्त जो था और वहाँ उसके बेहद लड़ाकू सात सौ वीर भी तो थे, बुजुर्ग होने के बावजूद भी राजकाज की सूझ-बूझ रखने वाला उसकी मैना का अब्बू था। मैना ने चम्पानगरी में आकर कहा- "मेरा अब्बू हमें आने देना नहीं चाहता था। वह खूब रोया है, विश्वास ना आता हो तो माँ कुन्दनप्रभा से पूछ लो।"

"नहीं, इसमें अविश्वास की कौन सी बात है, अब्बू भावुक दिल का बेताज बादशाह है, मुझे अच्छी तरह पता है।" श्रीपाल ने मैना से कहा।

58

श्रीपाल चक्रवर्ती सम्राट के रूप में चम्पानगरी के सिंहासन पर बैठा। संसार विजेता हो जाने पर भी वह कर्मों से डरता रहा और धर्म में लगा रहा। उसने अपने अधीन किसी भी राजा के साथ बुरा सलूक नहीं किया और न ही किसी राज्य में लूटपाट की। अपनी प्रजा में वह एक कुशल प्रशासक और देश-विदेश के राजाओं में एक कुशल सम्राट के रूप में जाना जाता रहा।

चम्पानगरी में उसने प्रजा के हित के लिए बहुत से कार्य किये। जगह-जगह औषधालयों, ठंडे पेय के कुँओं, राहगीरों के लिए आरामगाहों और कई नये न्यायालयों की स्थापना की। जो कृषक भूमि लगान के भार से दबे हुए थे, उनको कर्ज मुक्त किया और पृथ्वी के इन राज्यों से लगान न लेने को कहा। उसने अपने अध्यादेश में व्यापारियों से कर वसूल करके राज-व्यवस्था चलाने की बात लिखी, जिसे सभी राजाओं को मानना पड़ा।

रनवास में सभी रानियाँ प्रेमपूर्वक रहती और आपस में वैमनस्य की स्थिति पैदा ना होने देती। उनका प्यार देख कर ऐसा लगता, जैसे

वे दूर-दराज देशों की रहने वाली न होकर सब सगी बहनें हों। उनके सभी पुत्र निडर और बलवान थे। समुद्र पार राज्य की व्यवस्था देखने में सब बारी-बारी आया करते। धनपाल का वहाँ दिल नहीं लगता था। वह वहाँ से लौट आया था पर महीपाल वहीं रहने लगा। कभी-कभी श्रीपाल को पता चलता, महीपाल वहाँ की किसी रूपसी में दिलचस्पी ले रहा है, पर श्रीपाल के पत्र के उतर में महीपाल इसका खंडन कर दिया करता।

एक रोज श्रीपाल ने अपनी सभी रानियों को माँ के सामने इकट्ठा करके मैनासुन्दरी के सर पर ताज रख दिया। वह ना-ना करती रही पर श्रीपाल नहीं माना। मैनासुन्दरी पटरानी बना दी गयी। वह श्रीपाल के साथ दरबार में जाती और राज-काज में भी दिलचस्पी लिया करती। मैना के कहने पर श्रीपाल ने चम्पानगरी में ही नहीं भारत व बाहर के सभी मुल्कों में बहुत से जैन मंदिर बनवाये। इन मंदिरों में संगमरमर की दीवारों पर शिल्पकला की अद्भुत नक्काशी की गई थी, जो उसे देखता तो देखता ही रह जाता। पूरे संसार पर जैन धर्म का प्रचार करने वाला श्रीपाल पहला चक्रवर्ती सम्राट था। उसके समय के बने हुए जैन मंदिर, गैर हिन्दू मुल्कों में भी है जो जैन धर्म की पौराणिक यादें ताजा करते है। श्रीपाल द्वारा भेजे गए प्रचारक उन दिनों दूर-दूर तक समुद्री यात्रा करके जैन धर्म का प्रचार किया करते थे, ऐसा जैन ग्रन्थों को पढ़ने से पता चलता है।

राज सुख भोगते श्रीपाल की चम्पानगरी में एक बार जैन मुनियों के आचार्य आये। उनके साथ हजारों मुनि, जैन साध्वी (अर्जिकायें) भी थीं। श्रीपाल अपने परिवार सहित आचार्य के सामने प्रणाम करके जा बैठा। श्री मुनि आचार्य को देखते ही श्रीपाल पहचान गया, वे उसके पूर्व परिचित शंकर आचार्य थे, जिनके साथ बीरदमन मुनि और सुरसुन्दरी अर्जिका भी थीं।

श्रीपाल से शंकर आचार्य ने कहा- "हे महाबली चक्रवर्ती सम्राट अब मोह माया के भ्रम को तोड़ कर संन्यास ले लो। तुम्हें समय पुकार रहा है, तपस्या करके तुम इसी भव से मोक्ष जाने वाले हो।"

"आचार्य, मै भी जिन दीक्षा लेने की सोच रहा हूँ, पर अपनी शंका का समाधान चाहता हूँ। क्या आप मेरे कर्मों पर कुछ प्रकाश डालेंगे। मैने इस भव में जो कुछ किया, अच्छा किया, फिर भी मुझे

अनेक कष्ट और मुसीबतों का सामना करना पड़ा। क्या इस शंका का निराकरण नहीं करेंगे?"

आचार्य हँसे, अच्छा पिछले भव का दर्पण देखना चाहते हो। लो सुनो, पिछले भव में इसी आर्यखण्ड में रतन संचय पुर एक नगर था, जिसका राजा विद्याधर श्रीकंठ था। उसकी अनन्त गुण रखने वाली श्रीमती नाम की एक रानी थी, जो जैन धर्म मानने वाली थी। एक बार वह मुनि के दर्शनार्थ अपने मिथ्यावादी पति को भी साथ ले गयी। श्री मुनि के एक उपदेश को सुन कर राजा बहुत खुश हुआ। श्रावक के व्रत स्वीकार करके लौट आया, पर मिथ्यावादी राजा ने कुछ दिन बाद श्रावक के व्रत छोड़ दिये और जैन धर्म की निन्दा करने लगा। राजा जैन मुनियों का उपहास उड़ाता और अपने कर्मों मे पाप की गाँठ लगाता रहा। एक बार वह अपने सात सौ सैनिकों को लेकर जंगल से गुज़र रहा था। रास्ते में उसने एक जैन मुनि को तपस्या मे लीन देख कर उसका उपहास किया और कोढ़ी कह कर समुद्र में फेंक दिया और फिर समुद्र में कूद कर मुनि को समुद्र में डूबने से बचाया और बाहर निकाल लाया। मुनि ने फिर भी राजा को कुछ न कहा। राजा ने मुनि को डराने के लिए तलवार निकाल कर मारने का नाटक किया। इसके बाद वह हँसता हुआ अपने महल की ओर लौट आया।

जैन धर्म की अनुयायी रानी को अपने राजा की करतूतों का पता चला, तो वह खूब रोई और अन्न जल त्याग कर उपवास पर जा बैठी। रानी उसके पापों का अपने उपवास द्वारा पश्चाताप कर रही है, यह जान कर राजा श्रीकंठ को आत्मग्लानि हुई। उसने रानी से क्षमा माँगी और आगे मुनि-साधुओं की निन्दा करने या उन्हें प्रताड़ित न करने की कसम ली। रानी को साथ लेकर राजा वन मे मुनि के पास भी गया और रोकर उनके चरणों में गिर पड़ा।

श्री मुनि महाराज बड़े दयालु थे, उन्होंने राजा को सिद्ध चक्र का व्रत देकर पांच अणुव्रत दिये, जिनका राजा नियमपूर्वक पालन करने लगा। राजा ने अपने पाप कर्मों को नष्ट करने के लिए आठ वर्ष अणुव्रत किये, इसके बाद भाव सहित उद्यापन किया। आठ वर्ष बाद तो राजा जैसे मोह पाया से विरक्त हो गया। इसके बाद वह मुनि हो गया, अभी वह कुछ दिन ही मुनि रहा कि उसकी अकाल मृत्यु हो गयी। पुण्य कर्मों से वह स्वर्ग में देव हुआ। यौवन अवस्था मे आया था, पर वहाँ भी

अपने पाप-पुण्य न भोग सका और अकाल मृत्यु हो गयी। फिर मृत्युलोक में चम्पानगरी में कोटिभट वंश में श्रीपाल के रूप में पैदा हुआ। उसकी श्रीमती पटरानी उज्जैनी के राजा पहुपाल के यहाँ मैनासुन्दरी बन कर पैदा हुई।

प्रिय राजपुत्र, तुमने जो किया, वही तो पाया है। रैनमंजूषा, सुप्रिया, गुणमाला, चित्ररेखा और विलासमती सब तुम्हें पुण्य से प्राप्त हुई है। यह वैभव, चक्रवर्ती साम्राज्य रानियों का रनवास और सैकड़ो पुत्रों द्वारा मिलने वाला सुख सब तेरे पूर्व कर्मों का फल है।

"यह गौरी कौन है? जो नकसा के साथ मेरे दिल से आ बँधी है।" श्रीपाल ने आचार्य से शंका व्यक्त की।

"पूर्व जन्म में मिली स्वर्ग की अप्सरा पत्नी, जो तुम्हारे वियोग में पुत्री सहित मर कर तुम्हें इस भव में पाने आई है।"

"पर यह गौरी का विद्याधर पति कौन था? जिससे गौरी को नकसा की प्राप्ति हुई थी।" श्रीपाल की शंका बढ़ती जा रही थी।

"गौरी के पीछे लगा स्वर्ग से पूर्व जन्म का प्रेमी पति, जिसे तुम्हारे संयोग होने से अधूरी-यात्रा पर निकलना पड़ा, क्योंकि गौरी को तुम्हारे संयोग में आना था।"

"ओह, यह लोभ, मोह, माया, तृष्णा, अज्ञान, यश, अपयश सब मनुष्य के पतन का कारण है। यह संसार तो मिथ्यावादी है, दुखों से भरा है।" श्रीपाल ने कहा और माँ कुन्दनप्रभा से यों कहने लगा-

"माँ, क्या तुम मुझे संन्यास लेने की सलाह नहीं दोगी?;;

"हाँ पुत्र, सुख ऐश्वर्य पाकर धर्म को भी याद रखना चाहिए। मै स्वयं भी चाहती हूँ, तुम जिन दीक्षा लेकर मुनि बनो और सारे संसार का कल्याण करो।"

माँ की बात सुन कर श्रीपाल के मन में वैराग्य भर आया। वह मैनासुन्दरी की ओर घूमा। मैना के मन में भी वैराग्य भरा हुआ था, वह बोली।

"प्राणेश्वर, अपनी माया की बात मानोगे। इसी समय मोह-माया का त्याग कर दो। मै भी तुम्हारा साथ दूँगी।"

"माया, त्याग की बात करती है।" श्रीपाल हँसा।

"मेरे प्यारे कंथ, मुझे हर्ष हो रहा है कि मेरा पति मोक्षगामी जीव है। मै आपको अपनी माया के झमेले में नही उलझाना चाहती।

मै खुशी से तुम्हें मुनि बनने की आज्ञा दे रही हूँ।"

श्रीपाल ने रैनमंजूषा, सुप्रिया, गुणमाला, चित्ररेखा और विलासमती से भी पूछा- "क्या तुम भी मुझे मुनि बनने की आज्ञा दोगी?"

"हाँ कुँवर जी", रैनमंजूषा ने सभी रानियाँ की ओर से कहा- "आप जो निर्णय करेंगे, हमें मंजूर है, पर हम सब आपके बिना नहीं रह सकती। हम सब भी अर्जिका बनेंगी।"

श्रीपाल शृंगारगौरी की ओर बढ़ा और बोला- "गौरी मै तुम्हें इन रानियों के साथ संन्यास नही लेने दूँगा।"

"क्यों रहनुमा? क्या आप इन संसारिक सुखों से मेरी मुक्ति नही चाहते", उसकी उदास आँखें श्रीपाल से पूछ रही थी।

"चाहता तो हूँ। पर तुम मेरी पत्नी बन कर भी अछूती रही हो, आज मै तुमसे कुछ पाना चाहता हूँ।" श्रीपाल यों कह कर आँखें भर लाया।

"बोलो रहनुमा, दासी का सर्वस्व तुम्हारा है।" गौरी ने गर्व से कहा।

"मेरे संन्यास लेने के बाद तुम्हें दो कार्य करने है, बोलो करोगी?"

"हाँ करूँगी", गौरी बोली।

"नकसा की शादी कौशाम्भी के युवराज करन से कर देना, वह अच्छा लड़का है, नकसा को बहुत खुश रखेगा और जब तक जियो चम्पानगरी में धनपाल की संरक्षक बन कर रहना। वह अभी नादान है। पूरे विश्व पर शासन करने के लिए उसे तुम्हारी जरूरत पड़ेगी।"

हँस दी गौरी- "इतना लम्बा बंधन देते हो। मनुष्य को अपना क्षण मात्र का भी पता नही है। मौत तो हर समय मुँह बायें खड़ी रहती है।"

"गौरी तुम सत्य कहती हो, पर कुछ काम दुआओं और उम्मीदों पर भी चलते है, शायद तुम यह भूल गयी हो? श्रीपाल ने कहा और ज्येष्ठ पुत्र धनपाल को आवाज़ दी।

धनपाल उठ कर श्रीपाल के पास आया। श्रीपाल ने अपना राजमुकुट उतारा और धनपाल के माथे पर बाँध दिया।

आज से धनपाल चक्रवर्ती राजा है। श्रीपाल ने अपने सेनानायक से कहा, फिर वह उठा और कुन्दनप्रभा के चरण छू कर बोला-

"माँ, क्षमा करना, मै तेरी कुछ सेवा नही कर पाया हूँ। तुम जैसी माँ भाग्य से प्राप्त होती है। काश् तुम हर जन्म मे मेरी माँ हो और मै तुम्हारा बेटा। ऐसी माँ को पाकर कौन बेटा खुशी में नही झूम उठेगा।"

"प्रिय पुत्र, तुम भी ऐसे पुत्र हो, जिसकी माँ बनने के लिए हर नारी अपने को सौभाग्य वाली मानेगी।"

माँ से मिलकर श्रीपाल मैना और दूसरी रानियों से मिला। सबसे हँस बोल कर वह आचार्य के सामने आ बैठा।

"मुझे दीक्षा दो आचार्य।" श्रीपाल ने कहा- "देर न करो। मोह माया कब मन को विचलित कर दे, इस बारे में क्या कहा जा सकता है?"

"दीक्षा तुम्हें बीरदमन मुनि देंगे।" आचार्य ने कहा- "जो महिलायें अर्जिकायें बनना चाहें, वे जैन साध्वी सुरसुन्दरी के सामने आसन ग्रहण करें।"

श्रीपाल हर्षित होता हुआ मुनि बीरदमन के सामने जा बैठा। कुन्दनप्रभा, मैना, रैना और दूसरी रानियाँ सुरसुन्दरी के सामने पंक्तिबद्ध होकर जा बैठीं। दीक्षा संस्कार शुरू हो गया था। श्रीपाल ने देखा उसका प्रिय मित्र प्रहस्त भी सात सौ वीरों के साथ उसके पीछे पंक्ति में आ बैठा था।

59

श्रीपाल दीक्षा लेकर दिगम्बर मुनि हो गया और पृथक रहने लगा। एक रोज एक चिरपरिचित चेहरा सामने आया। मुनि श्रीपाल ने देखा, वह उसका अपना अब्बू था।

अब्बू प्रणाम करके पृथ्वी पर बैठ गया।

"कहो कैसे आये हो?" मुनि श्रीपाल ने पूछा।

"मुनिवर, मुक्ति पाना चाहता हूँ। पर नवासों के प्यार में उलझा हुआ हूँ।"

"प्यार तो मिथ्या है।" मुनि श्रीपाल ने कहा।

"मुनिवर मुक्ति का रास्ता दिखला दो।" राजा फिर बोला।

"राजा मुक्ति का द्वार हर समय खुला रहता है। हिम्मत करो और उसमें घुस आओ।"

"नकसा करन के साथ सुखी है।" राजा फिर कह रहा था- "मेरा करन बाप बन गया है। "

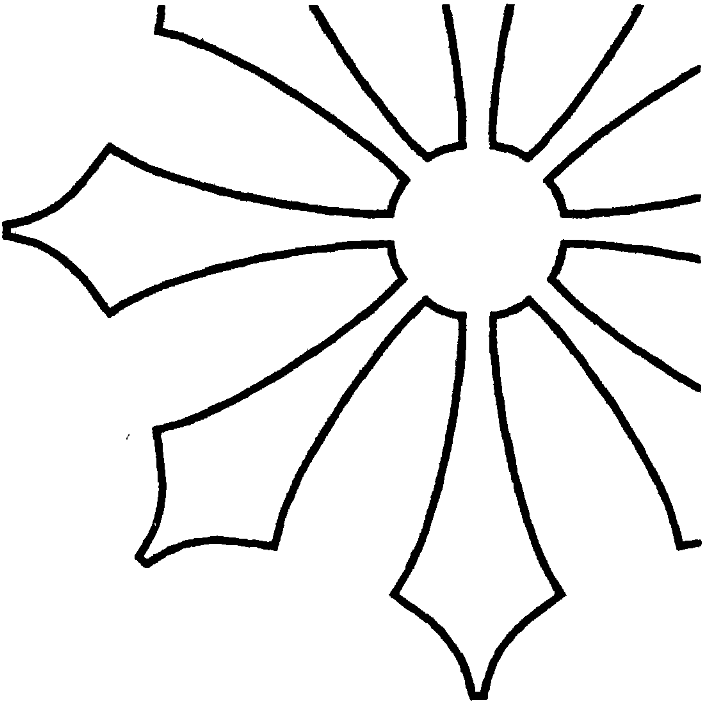
"राजा इस चाहत में उलझ कर ही तो तुम रह जाते हो और मुक्ति का द्वार भूल जाते हो। तेरा, मेरा यही तो मोह का पिटारा है। प्यार के अंदर तृष्णा का मीठा समुद्र है। मनुष्य जितना प्यार करता है, तृष्णा उसे उतना ही दबोच लेती है। तुम सर से पाँव तक मोह में डूबे हुए हो। धर्म को, ईश्वर को और अपने आपको भूल गये हो? नया जन्म पाने से पूर्व तुम्हें कुछ धर्म संचय करके रखना था, जो तुमने नहीं किया। बुढ़ापा तो आदीश्वर की साधना का पैगाम है। आदीश्वर तुम्हें सद्बुद्धि दें, तुम्हारा कल्याण करे।"

60

जैन शास्त्रों में श्रीपाल के बारे में लिखा है कि उन्होंने अकेले निर्जन वनों में घोर तपस्या की और उसी भव से मोक्ष प्राप्त किया। मुनि श्रीपाल ने केवल ज्ञान प्राप्त करके समस्त संसार को जैन धर्म का संदेश देकर कहा था।

"जियो और जीने दो। अहिंसा परमो धर्मः", यह उनका लोकप्रिय नारा था। उनका कहना था- "किसी को अपने कटु वचनों से सताना, सताते हुए देखना और सताते हुए सुनना, सब पाप है। हमें अपने पापों से बचना चाहिए और दूसरों को भी जीने का अधिकार देना चाहिए।"

●●●



'अनुभव प्रकाशन'

द्वारा प्रकाशित

प्रख्यात उपन्यासकार

राजबहादुर जैन 'जैनी साहब'

की

दो प्रमुख पुस्तकें

मैनासुन्दरी

लाखा मण्डप का पीर

प्रख्यात लेखक

राजबहादुर जैन 'जैनी साहब'

के

शीघ्र प्रकाश्य

उपन्यास

०००

सपनों के दीये

दिप्पी के चौदह साल

माटी के पुतले

दिल तो आइना है

Anubhav Prakashan

E-28, Lajpat Nagar, Sahibabad, Ghaziabad-201 005 [India]
Delhi Office : B-73, SurajMal Vihar, Delhi-110 092 [India]
Phone : 0120-4112210, 2630699, 2635277
Cell : 09811279368, 09911179368, 09911379368
e-mail : anubhavprakashan@gmail.com